नारी-चरितावलीका तिसरा ग्रन्थ

लेखक—

पं० शिवशंकर मिश्र ।

प्रकाशक—

निहालचन्द एण्ड कम्पनी ।

नं० १, नारायणप्रसाद बाबू लेन,

कलकत्ता ।

तीयबार १००० } सम्बत १९८२ { मूल्य सादी २)

रेशमी जिल्द २॥)

प्रकाशक—

निहालचन्द वर्म्मा।

१, नारायणप्रसाद बाबू लेन, कलकत्ता।

मुद्रक—

दयाराम बेरी।

"श्रीकृष्ण प्रेस"

१, नारायणप्रसाद बाबू लेन, कलकत्ता।

यह ग्रन्थ क्यों लिखा गया ?

हिन्दी साहित्यमें इस समय ऐसा कोई भी ग्रन्थ नहीं है, जिसके पढ़नेसे एक साथ अनेक प्राचीन महापुरुषोंके वृतान्त दृष्टि गोचर हों। जबतक किसी साहित्यमें ऐसे ग्रन्थ न हों, जिन्हे पढ़कर मनुष्य अपना मानव-जीवन सुधार सके, तबतक वह साहित्य अधूरा ही रहता है। इसी लिये इस ग्रन्थके लिखनेकी अवश्यकता हुई।

इस ग्रन्थके लाभ

अपने पूर्व महापुरुषोंका जीवन-वृतान्त पढ़नेसे प्राचीन कीर्त्तिकी अनोखी छटा मनुष्यकी आंखोंके सामने घूमने लगती है। उनकी अच्छी चाल चलन, उनकी उत्तम रीति-रसम, उनका पवित्र पारिवारिक प्रेम, उनकी महान वीरता, उनका विशुद्ध विश्व-प्रेम, उनकी अटल प्रभु-भक्ति, उनकी अनोखी तर्कशैली, उनकी अकाट्य युक्तियां, उनका सच्चा विज्ञान, उनकी अतिउत्तम नीति आदिका हाल पढ़नेसे, मनुष्यका मन उत्तम तरंगोंसे भर जाता है। यदि उन महापुरुषोंका वृतान्त मननकर, मनुष्य उनका अनुसरण करे, तो मानव-सृष्टिमें अपने आपको ऊंचे आसनपर बैठा सकता है, यही इस ग्रन्थके पढ़नेसे लाभ है।

दूसरा संस्करण

परमात्माकी अपार अनुकंपासे आज वीर-चरितावली ग्रन्थ
मालाके तीसरे ग्रन्थ "भारतके महापुरुष" का दूसरा संस्क
आपलोगोंके सम्मुख उपस्थित है। इस ग्रन्थ-मालाके दो ग्र
"लव कुश" और "परशुराम" को हिन्दी-जगतने इतना मान दि
है, कि ६-७ महीनेके अन्दर ही हमें लवकुशका दूसरा संस्कर
करना पड़ा था और अब तीसरेकी बारी है। परशुरामका
दूसरा संस्करण हो रहा है। इस तीसरे ग्रन्थमें ३८ महापुरुषों
जीवनचरित्र दिये गये हैं। यदि हम प्रत्येक जीवन चरित्रमें एक प
चित्र भी देते तो ३८ चित्र देने पड़ते जिससे ग्रन्थका मूल्य कम
कम २) और बढ़ जाता। हमने ऐसा करना उचित न समझा क
कि ऐसे उपकारी ग्रन्थ सुलभ मूल्य रखकर ही प्रकाशित कर
चाहिये। इसी लिये इस ग्रन्थमें चित्रोंको स्थान नहीं दिया गय
केवल एक बहुरंगा दर्शनीय चित्र जिसमें ७ महापुरुषोंके बड़ेही मन
हर चित्र एक साथ हैं, बनवाकर, इस ग्रन्थके मुख्यपृष्ठपर लग
दिया गया है, जिससे ग्रन्थकी शोभा चौगुनी बढ़ गई है। इसग्रन्थ
दूसरे भागमें भी, एक सुन्दर बहुरंगा चित्र दिया गया है। ग्रन्थ
वलीका पांचवां ग्रन्थ चित्र आदिसे सुसज्जित कर, बड़े ठाट-बाट
साथ प्रकाशित किया जायेगा। जिस प्रकार पाठकोंने वीर-च
तावलीके ग्रन्थोंको अपनाकर हमारा उत्साह बढ़ाया है, आश
है, उसी तरह, निकलनेवाले पांचवें ग्रन्थको भी अपनाक
अपनी उदारताका परिचय देंगे।

प्रकाशक
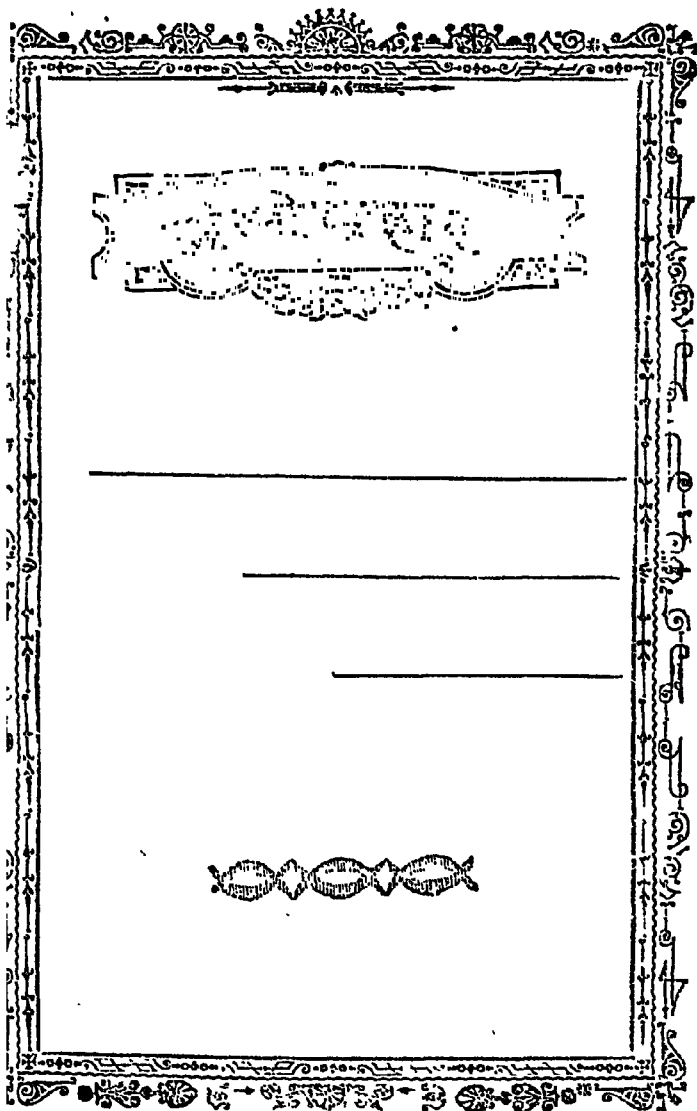
जगतमें आदर्शही सब कुछ है। किसीको बनानेकी सामग्री आदर्श है। सुधारनेकी सामग्री आदर्श है, उन्नत करनेकी सामग्री आदर्श है तथा भविष्य जीवनको सुख-मय शान्तिमय बनानेकी सामग्री भी आदर्शही है। चिन्तासे हृदय व्याकुल हो रहा है, हृदय पर घनघोर कालीघटाके समान निराशा छा रही है, संसार असार, जीवन निरर्थक, शरीर वृथा मालूम होता है, बुद्धि चञ्चल हो रही है, मन चञ्चला रूपी वेग-वती सरिताके समान हो रहा है, इसी समय यदि एक आदर्श-जीवनकी कोई बात, कोई कर्यावली, कोई घटना ध्यानमें आ जाती है, निराशा भाग जाती है, संसार असार नहीं प्रतीत होने लगता, मन अध्यवसायसे पूरित हो जाता है, वह चञ्चलता जो जीवनको मरुभुमि बना रही थी, न जाने कहाँ गायब हो जाती है—मनमें अध्यवसायकी लहर उठने लगती है, कार्यतत्प-रता भर जाती है, वही संसार जो भार मलूम होता था, निरर्थक प्रतीत होता था, असार बोध होता था—क्षणभर बादही कर्म-पटुताका खजाना मालूम होने लगता है। इच्छा होती है—हम

भी क्यों न कुछ कर जयें, क्यों न कुछ छोड़ जायें। इसी लिये कहते है, आदर्शही सब कुछ है और इसी लिये, जब जब संसारमें पापाचारकी धारा बहती है। जब अनाचारका आश्रम बनने लगता है, अविवेकका अखाड़ा पैदा होने लगता है तथा जन समाजकी मति गति शुद्धताको त्यागकर घोर तमोमय असत् पथकी ओर अग्रसर होती है, उस समय परमात्मा एक न एक ऐसा आदर्शउत्पन्न कर देता है, जो उल्टी धाराको फिरसे सुराह पर ला देता है, फिरसे वही सुखशान्तिका धारा प्रवाह दिखाई देने लगता है और मानवजाति अपनी भूली हुई वृत्तीको फिरसे ग्रहण करनेके लिये प्रस्तुत हो जाती है। देश समाज अथवा जाति उन्नत उठने लगती है, वह अज्ञानान्धकार जो कालकी भाँति ग्रास करने चला आता था, आदर्श-जीवनकी उज्वल छटासे भाग जाता है।

भारत आदर्शकी खान है। समस्त देशोंका इतिहास ढूंढ डालिये—इतने आदर्श कहाँ हैं? यह श्रेय भी इस रत्नगर्भा भूमिकोही प्राप्त है, दूसरेको नहीं। जिसने ऐसे ऐसे बेजोड़ आदर्श जीव उत्पन्न कर दिये, जिन्होंने अपनी गुणावलीसे संसारको भर दिया—जिनके जोड़का आदर्श जीवन कहीं दिखाई ही न दिया, जो गुणमें गौरवमें; विद्यामें, कलामें, धीरतामें, वीरतामें, कर्मकुशलतामें, त्यागमें लौकिक कार्योंमें, पारलौकिक तत्वके अनुसन्धानमें—कहाँ तक कहें सभी विषयोंमें, वह उत्कर्ष दिखा गये, वह आदर्शछोड़ गये, जिनका पदानुसरण तो बहुत बड़ी बात है, जिनका चिन्तवन भी यदि होता रहता, तो आज

यह भारत दरिद्र, हीनकर्मा, दुर्गुणोंका खज़ाना न कहलाता। आज वास्तमें हम हीन इसी लिये कहलाते हैं, कि हमने उन आदर्श जीवनोंका चिन्तन, मनन और अनुसरण छोड़ दिया है। हम अपने आदर्श भूल गये। अपने लक्ष्यसे दूर हट गये, अपने ध्रुवताराको भी निमम हृदय होकर त्याग दिया—इसी लिये आज हम दीन, हीन, पराधीन हो रहे हैं।

यह सर्व मान्य है, कि पुर्वकालमें भारतने उन्नतिकी पराकाष्ठा प्राप्त की थी। क्यों ऐसा हुआ था? इसी लिये, कि यहाँ आदर्श पुरुषोंका पदानुसरण होता था। स्वदेशीय तथा स्वजातीय आदर्शको ग्रहण कर—ठीक उसका अनुकरण कर भारतवासी अपना लक्ष्य बनाते थे। अध्यवसाय पुर्वक उस लक्ष्य तक पहुंचनेकी चेष्टा करते थे, लक्ष्य भ्रष्ट होना महापाप समझा जाता था—इसी लिये भारत उन्नत था, भारतवासी उन्नतमना थे, देश धन-धान्य, समृद्धिसे पूर्ण हो रहा था।

एक श्रीरामचन्द्रके जीवन परही ध्यान दीजिये—कौनसा आदर्श नहीं मिलता? मर्य्यादाकी किस बातमें त्रुटि दिखाई देती है? भगवान रामचन्द्र आदर्श पुत्र, आदर्श भ्राता; आदर्श पति, आदर्श लोक-सेवक, आदर्श मित्र, आदर्श नीतिज्ञ, आदर्श वीर, आदर्श द्रढ़प्रतिज्ञ, आदर्श राजा और आदर्श शरणागत वत्सल दिखाई देते हैं। इसी लिये उनका नाम मर्यादा पुरुषोत्तम पड़ा है। अब श्रीकृष्णके जीवन चरित्र पर ध्यान दीजिये, मालूम होता है, इतना बड़ा ज्ञानी शायदही कोई दूसरा हो। गीता जैसा सुन्दर उपदेश जिसके मुंहसे वहिंगत हुआ है, महाभारतमें

जिनकी नीतिज्ञता पद-पदपर दिखाई देती है, कर्मयोगका आदर्श जिन्होंने समुज्वल रूपसे दिखा दिया है, उनका—आदर्श-जीवन एक विशेष चिन्तनीय और आदरणीय है। इसी तरह इस भारतमें लक्ष्मणसा भ्रातृ वत्सल, भरतसा त्यागी, जनकसा कर्मयोगी, कपिलसा ज्ञानी, दत्तात्रेय जैसे विरागी, भीष्म जैसे दृढ़ प्रतिज्ञ, हरिश्चन्द्र जैसे सत्यवादी प्रभृति कितनेही ऐसे महापुरुष हो गये हैं, जिन्होंने अपने जीवनकी घटनाओंसे दिखा दिया है, अपने कर्मद्वारा बता दिया है, कि इस संसार सागरकी उबलती, हुई तरंगोंके बीचमें रहकर भी किस तरह आदर्श जीवन व्यतीत किया जा सकता है और सब कुछ कर-धर कर भी किस तरह जीव अपने अन्तिम ध्येय मोक्षपदका अधिकारी हो सकता है।

पहलेही कह चुके हैं, कि आदर्श जीवनका चिन्तन भी उन्नत करनेकी एक सामग्री है। पर चिन्तन हो कहांसे? जिन महात्माओंने अपने देशको सर्वगुण सम्पन्न बनानेमें अपना समस्त जीवन, यहाँतक शरीर भी लगा दिया था—इस पश्चिमीय शिक्षाके प्रभावसे हम उन्हें भूल गये। हमारी शिक्षाकी धारा कुछ ऐसी उलटी बही, हम कुछ ऐसी स्वार्थपर नीतिसे पढ़ाये जाने लगे, कि हममें वह गुणोत्कर्ष हो ही नहीं सकता। जो जीवन हमारे लिये आदर्श है, जो भारतवासियोंका ध्येय ह। जिसने भारतको उन्नत शिखर पर पहुंचाया था—जो हमारे जातीय साहित्यके उज्वल विषयोंके परमोज्वल रत्न थे—वे हमारी दृष्टिसे छिप गये—पाठ्य पुस्तकोंमें उनका जीवन दिखाई

न देने लगा, उनके बदले एक नयी ही चमक दमक दिखाइ देने लगी! उस चमकने हमें चकाचौंध कर दिया, हम भूल गये, कि यह चमक दमक बाहरी है, यह निःसार है, इससे हमारा उद्देश्य, हमारा लक्ष्य ठीक नहीं रह सकता, बस अपने ध्येयतक नहीं पहुंच सकते। बात यह है कि जिस भाषामें यह साहित्य रत्न छिपा था, जहाँ उन आदर्श जीवनोंका खजाना था, यह मृत भाषा (Dead language) समझी जाने लगी, उसका पठन पाठन बन्द हो गया, फिर वे बातें कहाँसे मिलें, वह जीवन कहाँ दिखाई दे? उस आदर्श रूपी सुन्दर पुष्पकी सुगन्ध किस तरह मस्तिष्कमें पहुंचे। हमारे सामने निरन्तर अन्य विषय रहनेके कारण हमने उन्हें विस्मृतिकी ओटमें डाल दिया। फल मिला—वही फल जो होने वाला था। हम अवगुणकी खान हुए। हम असली तत्वसे दूर जा पहुंचे। अन्तमें हम गुलाम हो गये। पाठक! अपने आदर्शको दूर हटानेका कैसा भीषण, कितना विषम फल हुआ। जीवनका ध्येय स्वतन्त्रता है—उसके बदले मिली परतन्त्रता, जो देश रत्नोंका खजाना था वह दरिद्रताका आगार बन गया। हम भूखों मरने लगे, आलसी, निरुद्यमी, अज्ञानी बन गये। केवल एक आदर्श चिन्तन और आदर्श जीवनोंका अनुसरण न करनेके कारण हमारी यह अवस्था हो गयी।

बहुत दिनोंसे हमारी इच्छा थी, कि जिन्होंने भारतको प्रकृत भारत बनानेमें अपना सब कुछ न्योछावर कर दिया है, जिन्होंने इस भारतमें अपना आदर्श इस भाँति छोड़ा है, जो कभी मिट

नहीं सकता, उनके आदर्श जीवनका संग्रह कर हिन्दी प्रेमियोंकी सेवामें अर्पण करें। स्कूल पाठशालाओंके पाठ्य विषय चुननेके तो हम अधिकारी नहीं हैं, पर जो हमारा अधिकार है, उसको हम क्यों त्यागें? इसी लिये हमने यह भारतीय महापुरुषोंके जीवन-चरित्र एक गुजराती पुस्तकके सहारे संग्रह कर पाठकोंकी सेवामें रखे हैं, कि इसे वे स्वयं पढ़ें और अपने बालक बालिकाओंको पढावें, क्योंकि भारतका भविष्य उनपर निर्भर करता है। आशा है इससे वे अनेक आदर्श प्राप्त करनेमें समर्थ होंगे।

इस पुस्तकके हमने चार खण्ड किये हैं। प्रथम खण्डमें ईश्वरावतार, द्वितीयमें देवांशी महापुरुष, तृतीयमें महान् ब्रह्मर्षि और चतुर्थमें महान नृपतियोंकी जीवनियां और कार्य-कलापोंका संग्रह है। इस तरह एक ही पुस्तकमें अनेक आदर्श पुरुषोंका पदानुसरण करनेका मसाला अर्पण किया है। लाभ उठाना या न उठाना पाठकोंके अधिकारकी बात है।

अब कुछ अपने विषयमें कहना भी आवश्यक है। यद्यपि हमने आदर्श चरित्र चित्रणकी चेष्टा की है, और भारतके महापुरुषोंकी जीवनियां आपको अर्पण कर रहे हैं तथापि आपलोग यदि यह समझें, कि इससे आपको पूरी पूरी मनस्तुष्टि हो जायगी, तो यह भयानक भ्रम होगा। क्योंकि मुझे न तो विद्याही है, न उतना अध्यवसाय बलही है, जो कार्यको सुन्दर और सुसज्जित बना देता है। अतः इस बातकी इच्छा रखकर नहीं, कि एक सुशिक्षित सुपठित और सुशिल्पी साहित्यककी पुस्तक हम

पढ़ रहे हैं और इसमें भाषा सौष्ठव, रचना कौशल, भाव-गाम्भीर्य दिखाई देगा, बल्कि यह ध्यानमें रखकर, कि एक साहित्यसे अनभिज्ञका यह संग्रह हम देख रहे हैं, यदि यह पुस्तक पढ़ेंगे तो सम्भव है, कि इसकी त्रुटियाँ देखकर आप ऊब न जायें और कुछ न कुछ इसमेंसे ग्रहणही कर लें क्योंकि।

"महाजनस्य संसर्गः कस्यनोन्नति कारकः।"

"क्षुद्रोपि तनुते तात तेजस्तेजस्विसङ्गतः।
अर्क संपर्कतः पश्य दर्पणो दहन द्युतिम्॥"

आपका—

शिवशंकर मिश्र

प्रथम खण्ड ।

द्वितीय खण्ड ।

तृतीय खण्ड ।

विषय— पृष्ठ

चतुर्थ खण्ड।

भारतके महापुरुष।

प्रथम खण्ड।

ईश्वरावतार

श्रीरामचन्द्र।

इस सूर्य्यवंशी रघुकुल-तिलक दैवी पुरुषके पराक्रमोंको कौन नहीं जानता, जिनके अव्यर्थ वाण, अद्वितीय राज्य-शासन, एक वचन, एक पत्नीव्रत और निष्कलङ्क-नीतिने उसे अद्वितीय बना दिया है। जिसके चरण-रजके स्पर्शसे अनेकोंका उद्धार हुआ है, जिसका नाम-स्मरण भी मुक्ति दायक, कार्य्यसिद्धकारक तथा संकटका निवारक महामन्त्र समझा जाता है। वही साक्षात् विष्णुरूप लीलावतारी राम,

वाल्मीकि प्रभृति महात्माओंके कथनानुसार, रावणादि पापी पुरुषोंका संहार, साधुजनोंका उद्धार तथा धर्म और नीतिकी स्थापना करनेके लिये अयोध्यामें महाराजा दशरथके यहाँ पुत्र-रूपमें उत्पन्न हुए थे। उनका जन्म त्रेता युगमें हुआ था। उनकी माताका नाम कौशल्या था। प्रथम रामने उन्हें अपना चतुर्भुज रूप दिखाया था; फिर मायाका आवरण डाल बाल-रूप हो गये थे। इस प्रकार उनका जन्म अयोनिसम्भव है। वह माताके संरक्षणमें प्रतिपालित हुए थे और उन्होंने वशिष्ठ मुनिके निकट वेद, उपवेद, धर्मशास्त्र, न्याय, नीति, तत्वज्ञान और धनुर्वेदका आरम्भिक अध्ययन किया था। उनकी आकृति भव्य और भुजायें आजानुलम्बित थीं। मुख चन्द्रके समान निर्मल, तेजपूर्ण तथा नेत्र विशाल थे। कान्ति श्यामवर्णकी छटा युक्त थी। उनका चित्त लोक-हित और माता पिताकी सेवामें लगा रहता था। वे धीर, वीर, नम्र, न्याय-नीतिज्ञ और उत्तम विचारों से परिपूर्ण थे। वह सीताके अतिरिक्त अन्य स्त्रियोंको माताके समान मानते थे। उसके अङ्गमें अलौकिक सामर्थ्य था। वह देखनेमें सामान्य पुरुष प्रतीत होते थे, परन्तु मर्य्यादाके अवतार परम पुरुष थे। भाषण करनेमें वह अति प्रौढ़ थे। धर्म्मानुसार नित्य नैमित्तिक कर्म्म करनेमें वह सदा दृढ़चित्त रहते थे। शैवीदीक्षा आनन्दस्वरूप परमात्माकी उपासनाकी दीक्षा, उन्होंने अगस्त ऋषि द्वारा ग्रहण की थी। वह हाथी, घोड़े तथा रथा-दिक वाहनोंपर आरूढ़ होनेकी कलामें परम प्रवीण थे। इन सब

सद्गुणोंके कारणही वह निर्मल चन्द्रकी भाँति राजा दशरथ और अयोध्याकी प्रजाका प्रेम सम्पादन कर सके थे।

शिक्षा और सङ्गति—दशरथके राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न इन चार पुत्रोंमें राम सबसे बड़े और सर्वगुण सम्पन्न थे। शुक्ल पक्षके चन्द्रकी भांति, उनके गुण, शौर्य्य, औदार्य्य, और रूप उत्तरोत्तर बढ़ते जाते थे। सब भाइयोंमें परस्पर बड़ा ही प्रेम था। राम और लक्ष्मण एक दूसरेको प्राणके समान चाहते थे। किसी समय भी राम लक्ष्मणसे पृथक न होते थे। उनकी अनुपस्थितिमें उनको भोजन भी न भाता था और निद्रा भी न आती थी। राम अश्वारूढ़ हो, शिकार खेलने जाते तो लक्ष्मण धनुष लेकर उस अश्वकी लगाम पकड़ आगे चलते। दोनोंमें ऐसा ही घनिष्ट प्रेम था। वास्तवमें वह दोनों एकही रूप थे। केवल देखनेमें उनके पार्थिव शरीर भिन्न थे। भरत और शत्रुघ्न भी ज्येष्ट बन्धु रामकी आज्ञाके अधीन रहते थे, उनपर प्रेम रखते थे। वह कभी भी रामसे विमुख न होते थे और राम भी अपने लघु भ्राताओंके प्रति कर्तव्य-पालनमें कभी त्रुटि न होने देते थे। भाइयोंमें परस्पर ऐसा स्नेह और सौहार्द क्यों था, इसका कारण यह था कि, महात्मा वशिष्ट जैसे सुयोग्य गुरू द्वारा उन्होंने उच्च कोटिकी शिक्षा ग्रहण की थी और अपना समय ज्ञानी तथा विद्वान पुरुषोंकी सङ्गतिमें व्यतीत किया था। उन्होंने बहुत कुछ देखा, सुना और सीखा था। उत्कृष्ट शिक्षा और सत्सङ्गतिका ही यह प्रताप था।

अवतारका हेतु—राम पूर्ण ज्ञानी और तेजस्वी थे। जिसमें ईश्वरी तेज व्याप्त है, वह बालक हो तब भी क्या! "होनहार बिरवानके होता चीकने पात" रामके अद्भुत पराक्रम बाल्यावस्थासे ही प्रकट होने लगे थे। उनके शैशवावस्थाके ही बलको देखकर सब लोग चकित हो जाते थे। ऋषि, मुनि और नरेश-मण्डलीमें उनकी प्रशंसा होने लगी थी। उनके आत्मिक-ज्ञानसे महात्माओंको ज्ञात हो गया था, कि, वे ईश्वरावतार हैं। उनकी अगाध शक्ति और कलाके विषयमें उनलोगोंको पूर्ण विश्वास था। उनकी तेजोमय मुख-मुद्राको देख समस्त प्रजा हर्षित हो उठती थी; दुष्ट समुदाय कांप उठता था और सज्जन वृन्द प्रफुल्लित हो उठते थे। पिता दशरथ, माता कौशल्या और अयोध्याकी प्रजाको वह प्राण-समान प्रिय थे। उनके जन्मकालसे ही वह नगरी स्वर्ग समान सुहावनी प्रतीत होती थी। जहां साक्षात ईश्वरी तेज प्रकाशमान हो, वहाँ न्यूनता किस बातको? जब पृथ्वीपर अधर्म बढ़ जाता है, दुर्जन सज्जनोंको कष्ट पहुंचाते हैं, प्रजा परिपीड़ित होती है, चारों ओर त्राहि त्राहि मच-जाती है, तब साक्षात करुणा-निधान मंगलमय प्रभु दुष्टोंका संहार कर साधुओंको सुखी करनेके लिये अवतार ग्रहण करते हैं। अनेक शास्त्रोंमें इसका प्रमाण पाया जाता है। गीतामें श्रीकृष्णने स्वयं कहा है कि, "मनुष्योंका कल्याण करनेके लिये ही मैं समय समय पर जन्म ग्रहण करता हूं" यह सत्य है। भगवान उस समय अपने केवल शुद्ध चैतन्यको दूसरे किसी

मनुष्यके जीवात्मामें मिला देते हैं। यही कारण है, कि अवतारी पुरुषोंने अन्यजीवात्माओंकी भांति नर-लीलाका विस्तार किया, फिर भी शुद्ध चैतन्यके प्रभावसे सत्य धर्मकी स्थापना करनेमें वे समर्थ हुए। रामावतार पूर्ण कहा जाता है; क्योंकि उन्होंने शुद्ध चैतन्यकी श्रेष्ट प्रबलता प्रदर्शित कर साधु और धर्मात्माओंकी रक्षा की थी। दुष्टात्माओंका संहार और सत्य-धर्मकी स्थापना की थी। अवतारोंकी बात प्राचीन और अद्भुत योग विद्याके अन्तर्गत है, इसका रहस्य वही समझ सकते हैं जिनको उस गुप्त विद्याके तत्वोंका यथार्थ ज्ञान हो।

राम तथा अन्य महापुरुषोंपर विष्णु किम्वा शुद्ध चैतन्यका प्रतिविम्ब पड़नेसे वे अवतार माने गये हैं। इस पर निष्पक्षपात और सत्य-शोधक विद्वान को यथार्थ परीक्षाकरनेसेही विश्वास होगा। विश्वामित्र, वशिष्ठादि ऋषि और मुनियोंने अपनी दिव्य-दृष्टिकी शक्तिसे यह जान लिया था, कि राम साक्षात् ईश्वरावतार हैं। उनकी अद्भुत शक्तिपर उनका विश्वास था। रामकी अवस्था केवल पंद्रह वर्षकी थी, परन्तु विश्वामित्रको यह ज्ञात था, कि वह राक्षसोंको मारकर यज्ञ-रक्षा करनेके लिये समर्थ हैं। यह जानकर ही उन्होंने राजा दशरथकी सभामें कहा था,—"राजन्! जिस समय मैं दीक्षा ग्रहण कर यज्ञका अनुष्ठान करता हूं और यज्ञकी समाप्तिका समय निकट आता है, उस समय मारीच और सुबाहु नामके राक्षस रुधिर इत्यादि अपवित्र वस्तुओंकी वर्षाकर उस यज्ञ-वेदीको दूषित कर देते

हैं! उनके इस कृत्यसे निरुत्साह हो, मुझे उस तपोभूमिका परित्याग करना पड़ेगा। मैं अपने शापसे ही उनको जलाकर भस्म कर सकता हूँ, परन्तु यज्ञ करते समय शाप देना धर्म-विरुद्ध है। यही कारण है कि, मैं निरुपाय हूँ और चाहता हूं, कि आप अपने ज्येष्ठ पुत्र रामको इस कामके लिये मेरे साथ कर दें। राम अपने तेज और मेरे अनुग्रहके प्रभावसे उन राक्षसोंका नाश करनेमें समर्थ होंगे। मुझे इस बातका विश्वास है, कि राक्षस रामको कदापि नहीं पा सकते। रामके प्रभावको जैसा मैं जानता हूं वैसाही गुरु वशिष्ठ भी जानते हैं।"

यज्ञ-रक्षा—यह सुनकर दशरथने कहा—"भगवन् रामकी अवस्था अभी पन्द्रह वर्षसे भी कम है। मुझे रामका वियोग असह्य प्रतीत होता है। फिर, राम अभी बालक हैं, वह युद्ध-विद्या क्या जानें? राक्षस कपट-कलासे युद्ध करते हैं। पुलस्त्यका पौत्र रावण ब्रह्मदेवसे वर प्राप्तकर मत्त हो गया है। उससे तीनों लोक त्रसित हैं। वह बड़ा शक्तिशाली है। कुबेरका भाई है, राक्षसोंका राजा है और विश्वविख्यात है। वही मारीच और सुबाहु इत्यादिको इस कुकर्मके लिये भेजता है, इसमें कोई सन्देह नहीं। मैंने यह भी सुना है, कि रावणसे जो युद्ध करता है, उसका सामर्थ्यही नष्ट हो जाता है।" इस प्रकार कहकर उन्होंने रामको भेजना अस्वीकार किया, परन्तु वशिष्ठादि ऋषि-योंके समझाने पर मान गये और रामको विश्वामित्रके साथ कर दिया। लक्ष्मण भी उन्हींके साथ चले। ये सुकुमार बच्चे

क्षुधा और तृषासे पीड़ित और पथ-श्रमसे श्रमित न हों, शीत किंवा प्रखर सूर्य्यतापसे उनके वर्णमें अन्तर न आ जाय, पराक्रम, बुद्धि और बलकी वृद्धि हो, सूर्य-समान तेजस्वी प्रतीत हों, राक्षसादि दुष्टोंके सन्मुख विजयी हों, इसीलिये अद्भुत चमत्कार पूर्ण 'बला' और 'अतिबला' नामक विद्याओंका विश्वामित्रने उन्हें उपदेश दिया। राम राजकुमार होनेपर भी विश्वामित्रके प्रेम पूर्ण वचनोंको सुन, चुभनेवाली तृणशय्या पर भी सानन्द सो रहते थे। नित्यकर्मों से निवृतहो, वह प्रतिदिन उनको प्रणाम करते, उस मार्गमें जो प्रदेश और आश्रम मिलते, विश्वामित्र उनका विस्तृत वृत्तान्त कह सुनाते थे। मलय और करुष नामक दो सम्पन्न प्रदेशोंको मारीचकी माता ताड़िका नामक राक्षसीने उजाड़ डाला था। वहां पहुंचकर विश्वामित्रने उसका नाश करनेके लिये रामसे धनुष टंकार करनेको कहा। उस टंकारकी प्रचण्ड ध्वनिसे चारों दिशायें प्रतिध्वनित हो उठीं। ताड़िकाने उसे सुना और वह क्रुद्ध होकर दौड़ पड़ी। जिसके दर्शन मात्रसे कापुरुषोंका हृदय काँप जाता था, ऐसी कालरूपा, मायावती राक्षसी ताड़िका रामपर प्रहार करनेके लिये दौड़ पड़ी; परन्तु रामके एकही बाणने उसको निर्जीव कर डाला। वह एक चीख मारकर भूमिपर गिर पड़ी रामका यह विक्रम देख, विश्वामित्र और देवतागण अत्यंत प्रसन्न हुए। इस स्थान पर विश्वामित्रने रामको अनेक प्रकारके शस्त्रास्त्र प्रदान किये। वहांसे वह सिद्धाश्रम पहुंचे और यज्ञका अनुष्ठान करने लगे। रामने राक्षसोंका निवारणकर यज्ञकी रक्षाकी।

मिथिलापुरी गमन—यज्ञ समाप्त कर, राम लक्ष्मण सहित, विश्वामित्रने मिथिलापुरीके लिये प्रस्थान किया। मार्गमें रामकी चरण-रेणुके प्रतापसे, अहिल्याका उद्धार हुआ। मिथिलापुरीमें राजा जनकने यज्ञका अनुष्ठान किया था। उसी समय सीताके स्वयम्वरकी भी योजना की गयी थी। वहाँ अनेकानेक राजवंशी राजे, महाराजे, राजकुमार और ऋषि, मुनि एकत्र हुए थे। जनकने प्रतिज्ञा की थी कि, विख्यात शिव-धनुष पर जो प्रत्यंचा चढ़ा देगा, उसीके साथ सीताका परिणय होगा। यह महोत्सव देखने और अपना अपना पराक्रम दिखा कर सीताके समान सुन्दरीका पाणिग्रहण करनेके लिये लालायित होकर दूर दूरके कितनेही नरेश आ उपस्थित हुए थे। उस विख्यात धनुषकी प्रत्यंचा चढ़ानेकी सामर्थ्य देवता और राक्षसोंमें भी न थी, मनुष्योंकी कौन कहे? राम, लक्ष्मण तथा विश्वामित्रको रखकर राजा जनकने उनका यथोचित आदर किया था। रामकी सुशोभित और माधुरीमूर्तिको देख लोग पुलकित हो उठे! पूछने पर विश्वामित्रने दोनों भाइयोंका परिचय दिया। परिचय पाकर जनक भी सीमातीत प्रसन्न हुए।

सीताका स्वयम्बर—स्वयम्वरकी शोभा अपूर्व थी। मण्डप सभाजनोंसे परिपूर्ण था। बीचमें वीरोंकी परीक्षाके लिये सदाशिवका विशाल और भारी धनुष रक्खा हुआ था। उसके चारों ओर नरेश-मण्डली और ऋषिगण सुशोभित थे। जनकके मन्त्रीने सभाजनोंको संबोधित कर कहा—"जो इस धनुष-

की प्रत्यंचा चढ़ा सकेगा, उसे ही जनकनन्दिनी जयमाल पहनावेंगी।" यह सुनकर क्रमशः रावणादिक अनेक राजवंशी उठे और उस धनुषपर प्रत्यंचा चढ़ानेके लिये उठानेका उद्योग करने लगे। परन्तु जिस प्रकार कामी पुरुषोंके वचनसे सतीका मन चलायमान नहीं होता, उसी प्रकार वह धनुष भी चलायमान न हुआ, और जिस प्रकार वैराग्यशून्य संन्यासी उपहासके पात्र होते हैं, उसी प्रकार वह लोग भी निस्तेज और उपहासके पात्र हुए। वीर पुरुषोंकी यह दशा देख, जनक रोष पूर्वक कहने लगे, कि—"शोक! प्रत्यंचा चढ़ाना दूर रहा; कोई उसे उठा भी नहीं सका। अब कोई अपनेको वीर और आत्माभिमानी न समझे। मैंने जानलिया कि, पृथ्वी वीर-विहीन हो गयी है! प्रतीत होता है कि, कोई नर-रत्न वीरकी उपाधिसे विभूषित हो—यह दैवकी इच्छा नहीं है। सीता भले ही कुमारी रहे, आपलोग अपने अपने घर लौट जाइये, मैं अपना प्रण नहीं छोड़ सकता।"

जनकके यह हृदय-वेधक और तिरस्कारपूर्ण शब्द लक्ष्मणके अन्तरघटमें बाणके समान लगे। उनके नेत्र लाल हो गये। वह रामको प्रणाम कर कहने लगे—"जिस सभामें एक भी रघुवंशी उपस्थित हो, उस सभामें ऐसे शब्द कहना उनका अपमान करना है। इस पुराने धनुषकी कौन कहे, मैं ब्रह्माण्डको गेंदके समान उठा सकता हूँ और मेरुको भी मूलीकी तरह तोड़ सकता हूँ। इसी समय रघुवंशियोंका बल दिखाकर सभा-

जनोंको विश्वास दिला सकता हूँ कि, वसुन्धरा वीर-विहीन नहीं हुई है।" राम उनके वीर वचन सुनकर प्रसन्न हुए उन्होंने उनको शान्त किया। फिर विश्वामित्रको प्रणाम कर उनकी आज्ञा प्राप्त की और उठ खड़े हुए। पन्द्रह वर्षसे भी कम अवस्थावाले इस सुन्दर और सुकुमार बालकको कटिबद्ध होते देख, अन्य राजवंशी चकित और विस्मितसे हो उठे। जिस प्रकार सूर्योदयके समय नक्षत्र निस्तेज होते हैं, उसी प्रकार उनके अन्य प्रतिद्वन्द्वी नरेश उनको उठते देखकर निस्तेज हो गये। ऋषि मुनि प्रसन्न होने लगे। राम उस धनुषकी ओर अग्रसर हुए। अनेक स्त्री पुरुषोंके चित्तमें चिन्ता होने लगी, कि इतना छोटा यह श्यामसुन्दर सुकुमार बालक यह विशाल धनुष कैसे उठा सकेगा? राम धनुषके समीप जा पहुंचे और जिस तरह गरुड़ सर्पको उठा लेता है, उसी तरह उन्होंने धनुषको उठा लिया। चपलताके साथ उसकी प्रत्यंचा चढ़ाई और उसे इतने जोरसे खींचा, कि वह कड़कड़ाकर दो टूक हो भूमीपर गिर पड़ा। सब लोग यह देखकर चकित हो गये। देवता पुष्प वृष्टि करने लगे, चारों ओर जयजयकारकी ध्वनि गूंज उठी, सुन्दरियां मङ्गल गीत गाने लगीं और मनोहर वाद्योंका घोष सुनायी पड़ने लगा। सखियोंसे घिरी हुई सीताने स्नेह-जयमाला रामके कण्ठमें डालदी और सभी रामके पराक्रमकी प्रशंसा करने लगे।

परशुराम भेंट—परन्तु इसी समय पृथ्वीको इक्कीस-वार निःक्षत्रिय और वीरविहीन करनेवाले परशुराम वहां आ

पहुंचे। शिव-धनुषको भङ्ग देखकर उनकी भृकुटी चढ़ गयी, शरीर क्रोधसे थर थरकांपने लगा—आंखोंसे मानो आगकी चिनगारियां निकलने लगीं। उन्होंने गरजकर कहा—"किसने यह शिव-धनु तोड़ा है? किसे अपना प्राण भारी हुआ है? साथही वे अपनी वीर-गाथा भी कितनीही सुना गये। लक्ष्मण को उनकी कटुक्तियोंपर क्रोध आ गया। उनमें और परशुराममें खूब नोक झोंक हुई। अन्तमें परशुरामने अपना धनुष देकर रामकी परीक्षा ली। अब वे भी समझ गये कि राम साधारण पुरुष नहीं हैं—इनमें ईश्वरका कुछ विशेष अंश है। अतः वे विनम्र हो पड़े। परशुरामका ज्ञात हो गया कि राम ईश्वरावतार है अतएव वह उनको गले लगाकर मिले। फिर कोई उपद्रव न हुआ। यह शुभ समाचार अयोध्या भेजा गया और वहांसे दशरथादिकका आगमन हुआ। बड़ी धूमसे राम और सीताका परिणय समाप्त हुआ, फिर सब लोग सकुशल अयोध्या जा पहुंचे। रामने वशिष्ठके निकट, धनुर्विद्याका विशेष ज्ञान प्राप्त किया। वह पिताकी आज्ञानुसार राजकाजमें योग देने लगे। उनकी कार्य्य शैली और सदाचरण देख मंत्रिमंडल और समस्त जनता अतीव प्रसन्न हुई। प्रजाका प्रेम दिन प्रतिदिन बढ़ता गया। उनकी कीर्ति दिगन्तमें व्याप्त हो गयी। पति और पत्नी—सीता और राममें भी परस्पर बड़ा प्रेम था। वे परस्पर एक दूसरेके अनुकूल आचरण करते थे। रामने एक पत्नीव्रत धारण किया था। और इससे उनकी कीर्त्तिमें विशेष वृद्धि हुई थी।

एक पत्नीव्रत—एक पत्नीव्रतकी महिमा महान है। जो एक पत्नीव्रत धारण नहीं करता उसके जप, तप, ध्यान, दान, श्रवण, मनन, स्वाध्याय और ईश्वर-भक्ति इत्यादि व्यर्थ हैं, इन सबसे वह फल नहीं प्राप्त हो सकता जो केवल एक पत्नी-व्रत पालनसे होता है। वेद, शास्त्र, पुराण और इतिहासोंमें एक पत्नी व्रतकी बड़ी प्रशंसा की गयी है। इस व्रतकी उपासनाका फल सभी लोग जानते हैं। इसके पालनकी जितनी उपेक्षा की जाती है, उतनाही उसका अनिष्ट फल प्राप्त होता है। एक पत्नी-व्रत रूपी कल्पवृक्षकी अवहेलना करनेवाले कितनेही राजा राज्य और कितनेही अपना प्रताप खो बैठे हैं। कितनेही दरिद्रावस्थाको प्राप्त हुए हैं और कितनेही इतने पतित हुए हैं, कि राहके रोड़े भी उनकी हंसी उड़ाने लगे हैं। एक पत्नीव्रत सर्वोत्तम सुखका साधन, विजयका मूल और उन्नतिका कारण है। इसीसे यशरूपी अमृतकी प्राप्ति होती है। इस महाव्रतके अखण्ड पालनसे राजा नल पुनः स्वराज्य प्राप्त कर सके थे और आपत्तियोंसे पार हुए थे! इसी व्रतको अखण्ड रखनेके लिये कैलाश विहारी श्री त्रिपुरारिने सतीके देहत्याग देनेपर बारह वर्ष पर्यन्त तीर्थाटन किया था। इसी व्रतके संरक्षणसे महाराजा पुरूरवा उर्वशीके अन्तर्ध्यान होनेपर विह्वलताको प्राप्त हुए थे। महाराजा चिन्तामणि और ऋतुध्वज इत्यादिने इसी व्रतको अखण्ड रखनेके लिये संसारका त्याग कर बीहड़ वनकी राह ली थी। सृष्टिके आरम्भसे लेकर आज तकके इतिहास

पढ़ जाइये, आपको यही ज्ञात होगा कि, जो लोग महात्मा माने गये हैं, जो जो पुण्यश्लोक गिने गये हैं और जो बड़े बड़े यशस्वी नरेश हुए हैं, उनकी उन्नतिका एक प्रधान कारण एक पत्नीव्रत है। जहाँ इसका अभाव है वहां अक्षय धन-भाण्डार, प्रवीण मंत्रियोंकी प्रबलता, और शौर्यशक्ति निसीम होने पर भी बड़े बड़े पृथ्वीपति पतित दशाको प्राप्त हुए हैं। उनका ऐश्वर्य्य नष्ट हो हो गया है और उनका देश उजड़ गया है। खोज करनेसे यही ज्ञात होगा कि, इसका कारण एक पत्नीव्रतकी उपेक्षा है।

श्रीरामचन्द्रके समान पवित्र पुरुषने एक पत्नीव्रत पालन कर संसारको यह दिखा दिया है, कि पुरुषोंका एक पत्नीव्रत पालन ही परम कर्त्तव्य है।

सदाचार—विवाह होनेके बाद बारह वर्ष पर्यन्त रामने साँसारिक सुख भोग किये। वह सदा शान्त रहते थे। उनके भाषणमें कोमलता देख पड़ती थी। उनसे कोई कठोर वचन कहता तब भी वह उसे उसी प्रकार कोमल उत्तर देते। कोई लेश भी उपकार करता, तो वह उससे सदैव प्रसन्न रहते और किसीके अनेक अपकार करनेपर भी वह उसका विचार न करते थे। राज-काज और विद्याध्ययनसे जब उन्हें अवकाश मिलता, तब वह विद्वान और सुशील लोगोंसेही संभाषण करते थे। उनसे कोई मिलने जाता तो उसे वह विवेकसे बुलाते और आदर सत्कार करते थे। महान् पराक्रमी होनेपर भी, उनको किंचित अभिमान न था। वह स्वप्नमें भी असत्य न

बोलते थे। वृद्ध और ब्राह्मणोंका बड़ा सम्मान करते थे। क्षात्र धर्मपर उनका बड़ा प्रेम था और वह निषिद्ध कर्मोंसे दूर रहते थे। दुखी लोगों पर बड़ी दया रखते थे। वह जितेन्द्रिय थे और धर्म-विरुद्ध बातोंमें रुचि न रखते थे। युक्ति पूर्ण संभाषण द्वारा अपनी बातको सिद्ध करने वाले मनुष्यकी परीक्षा करनेमें वह बड़े निपुण थे। अवसर पर वह कभी न चूकते थे। राजकीय कार्योंके लिये, वह सर्वथा योग्य कर्मचारियोंको ही नियत करते थे। क्रोध और प्रेमको वह नियमित और उचित सीमासे अधिक न बढ़ने देते थे। न्याय करनेमें वह बड़ेही प्रवीण थे और प्रजाको कष्ट न प्रतीत हो, ऐसे चातुर्यसे राजस्व ग्रहण किया करते थे। आयका चतुर्थांश और अत्यावश्यक प्रसंग आनेपर अर्ध भाग, इससे अधिक व्यय कदापि नहीं करते थे। प्रायः सभी प्रचलित भाषाओंका उन्हें ज्ञान था। उनके सुख-भोगसे धर्मार्थ को हानि न पहुँचने पाती थी। वह समस्त कलाओंमें प्रवीण थे और उनका अभिप्राय बिना बतलाये कोई नहीं समझ सकता था। हाथी और अश्वादिक वाहनोंको शिक्षा देने में वह दक्ष थे। धर्म, यश, सुख और सज्जनोंका स्नेह संपादन करनेमें वह दत्तचित्त रहते थे। व्यूह रचनामें भी वह परम प्रवीण थे। वह ऐसे वीर और युद्ध-विद्या-निपुण थे, कि विजय उनकी दासीके समान रहती थी। पराये गुणोंमें वह दोषारोपण करना जानतेही न थे। वह पराई सम्पत्तिको देख द्वेष न करते थे। रूपमें कामदेव, बुद्धिमें बृहस्पति और पराक्रममें इन्द्रसे भी विशेष

थे। राम सर्वगुण सम्पन्न और सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति थे। राम राजा हों यह देखनेकी प्रजाको बड़ी उत्कंठा थी। राजा दशरथको भी वैसीही इच्छा हुई। उन्होंने प्रजाकी एक सभा निमंत्रित कर लोक-मत जाननेकी इच्छा प्रकट की।

युवराज पद—सभामें दशरथने कहा—"प्रजाजनो! मेरे पूर्वज इस राजकी प्रजाको पुत्र समान मान, पालन करते रहे हैं। मैं भी उनकाही अनुसरण और यथा शक्ति प्रजा-पालन तथा लोकहित करता रहा हूं। आपलोग यह भली भांति जानते हैं। अब मेरा शरीर जीर्ण हो गया है। और मैं राज काजका महान भार उठाते उठाते थक गया हूं। आपलोग कहें तो राम-चन्द्रको युवराज बनाकर मैं शान्त जीवन व्यतीत करूं।" यह सुनकर सभाजन हर्षनाद कर उठे और कहने लगे—"महाराज! रामचन्द्रने अपने गुणवान, नीतिवान और ज्ञानवान होनेका पूरा पूरा प्रमाण दे दिया है! वह आजतक किसी रणक्षेत्रसे पराजित होकर नहीं लौटे। जब वह कहीं बाहरसे आयोध्याको आते हैं। तब जैसे पिता पुत्रसे कुशल सामाचार पूछता है उसी प्रकार वह हम लोगोंसे प्रश्न करते हैं। राममें किसी प्रकारका दुर्व्यसन नहीं पाया जाता। पुरुषोंकी कौन कहे वृद्ध और युवती स्त्रियां भी मनाती हैं कि राम युवराज हों। राम सत्यवादी, जितेन्द्रिय और सदाचारी हैं। वह नीति और न्याय जानते हैं और सर्वदा विद्वानों काही संग करते हैं। हमलोग उनके इन गुणों पर मुग्ध हैं और हृदयसे चाहते हैं कि वह युवराज हों। धन्य है! ऐसे

राजाको प्रजा क्यों न चाहे? अपनी प्रजाकी सम्मति प्राप्त कर राजा दशरथने रामको युवराज पद प्रदान करना स्थिर किया।

पिताका उपदेश—राम कल युवराज होंगे—यह बात सारे नगरमें फैल गयी। प्रजा हर्षित होने लगी। और जोरोंके साथ अभिषेककी तैयारियाँ होने लगीं। राजाने रामको बुलाकर कहा—"हे पुत्र! तुम सब भाइयोंमें बड़े हो और सर्वगुण सम्पन्न हो। समस्त जनता तुम्हारे सद्गुणोंके कारण तुमसे प्रेम करती है। मैं कल तुम्हें युवराज बनाऊंगा। तुम स्वयं समझदार हो, तुम्हें कुछ बताने और सिखलानेकी आवश्यकता नहीं है। फिर भी स्नेह वश मैं तुमसे यही कहना चाहता हूँ, कि इस समय जितनीनीति और धर्मसे तुम काम लेते हो भविष्यमें उससे भी अधिक नीतिसे काम लेना और सदा जितेन्द्रिय रहना। द्यूत, स्त्रीप्रसङ्ग, मद्यपान, आदि धर्मको हानि पहुँचानेवाले कर्मोंका सर्वथा त्याग करना। प्रजाको सदा प्रसन्न रखनेका उद्योग करना। राजा और प्रजामें परस्पर प्रेम हो, उनमें किसी प्रकारका मनोमालिन्य न हो, तो राजा निर्विघ्न और दीर्घ काल पर्य्यन्त राज कर सकता है।" रामको दशरथने इसी प्रकारके धर्म और नीतिपूर्ण समयोचित कितनेही उपदेश दिये।

रामकी स्वाभाविक राजनीति—राम प्रजाकी भली भाँति रक्षा और पालन करने योग्य थे। अपने सदाचारसे वह प्रजाको सदाचारी बनानेका प्रयत्न करनेवाले थे। गो ब्राह्मण

प्रतिपालनमें उत्साह रखते थे। प्रजाके आचार विचार व्यवस्थित रखते थे। वह किसीका जी नहीं दुखाते थे। वह समझते थे, कि प्रजाका असन्तोष राजाका सर्वनाश है। यथा राजा तथा प्रजा, जैसा राजा वैसी प्रजा। प्रजाका आचरण राजाके आचरण पर अवलम्बित है। यदि राजा नीतिमान हुआ तो प्रजा स्वयं नीतिमान बन जाती है। राजाकी अनीति एक महान दूषण है, वह राजा प्रजा उभयके लिये दुःखप्रद है! इसके कारण शत्रुओंकी वृद्धि और शक्तिका क्षय होता है। जो राजा नीतिको छोड़ स्वेच्छाचार करता है, वह अन्तमें दुखी होता है। स्वेच्छाचारी और निरंकुश नरेशकी सेवा करना तलवारकी धारपर चलना है। नीतिमान नृपतिकी सेवा सहर्ष ही की जा सकती है। जो नीतिमान और शक्तिशाली होते हैं उनको अनायास ही लक्ष्मी प्राप्त होती रहती है। राजाको ऐसी नीति धारण करनी चाहिये, कि जिससे समस्त प्रजा बिना किसी प्रेरणाके उससे प्रेम करने लग जाये। जो नरेश अनीतिसे काम लेते हैं और प्रजाको कष्ट देते हैं, उनके राज्यके मनुष्य देश विदेश अथवा किसी अन्य प्रदेशमें जा बसते हैं। उनका सैन्य-बल भी अव्यवस्थित रहता है और मन्त्री-मण्डल भी मनमें भेद-भाव रखने लगता है। निसन्देह ऐसे नरेश अति-शीघ्र पदच्युत हो जाते हैं। जो अपनी प्रजाका भली भांति लालन पालन करते हैं, उनको सब प्रकारकी सिद्धि प्राप्त होती है। राजाके लिये, प्रजाको सन्तुष्ट रखनेमेंही सिद्धियोंका

निवास है। प्राचीन विद्वानोंका कथन है कि, पृथ्वी कामधेनु है। उससे यदि मनोवाञ्छित फल प्राप्त करना हो, तो सर्व प्रथम प्रजारूपी उसके बछड़ेको तृप्त करना चाहिये। प्रजाके दुःखसे दुखी होना, सुखसे सुखी होना और निरन्तर उसकी हित-चिन्तामें मग्न रहना—यही नरेशोंका कर्त्तव्य है। इन्हीं बातोंको देखकर रामकी राजनीति सर्व श्रेष्ट मानी गयी है।

हर्ष तरङ्ग—पिताका उपदेश श्रवण कर रामने उनको प्रणाम किया। फिर यह संवाद सुनानेके लिये वह अपनी माताके निकट गये। देवी कौशल्या पवित्र पट परिधानकर देवार्चन कर रहीं थीं। सीता भी वहीं उपस्थित थी। सुमित्रा और लक्ष्मण भी वहीं जा पहुँचे थे। रामने माताओंको सविनय प्रणाम किया और अभिषेककी बात कह सुनायी। पासमें बैठे हुए लक्ष्मणको देख वह कहने लगे—"मैं अपने लिये नहीं, किन्तु तुम्हारेही लिये जीवित हूँ। यह सारा ऐश्वर्य भी तुम्हारेही लिये है। तुम्हीं मेरे वास्तविक प्राण हो" इत्यादि। धन्य है ऐसे ज्येष्ट बन्धुको! बन्धु हो तो ऐसाही हो। अभिषेकके शुभ समाचारसे राजसमाज, अन्तःपुरकी स्त्रियाँ और प्रजा-जनोंमें हर्षकी हिलोरें उठने लगीं। कैकेयी विमाता होने पर भी हर्षोन्मत्त हो गयी। उसने यह संवाद मन्थरा नामक दासीसे सुना था। उसने अपना रत्नहार मन्थराको उपहारमें दे दिया। फिर भी उसे अप्रसन्न देख वह कहने लगी कि—"मन्थरा! अप्रसन्न न हो। तूने मुझे आज जो शुभ-संवाद सुनाया है, उससे मैं अतीव प्रसन्न

हुई हूं। तुझे जो चाहिये मांगले मैं देनेको तय्यार हूं—मैं राम और भरतमें कुछ भी अन्तर नहीं मानती। रामके अभिषेककी बात सुनकर मुझे बड़ा हर्ष होता है। राम सर्व गुण सम्पन्न हैं। वह भाई,सेवक और प्रजाका पिताकी भाँति पालन कर सकते हैं। वह सब भाइयोंमें बड़े हैं, इसलिये उनकाही युवराज होना उचित है।" कैकेयीकी यह बातें सुन लेनेपर मन्थराने अपना परिताप प्रकट किया, परन्तु कैकेयीने पुनः यही कहा कि—"मन्थ-रा! राम अपनेही समान अपने भाइयोंको मानते हैं। रामको जो राज्य मिलेगा, वह भरतकाही राज होगा। मुझे राम भरत-से भी विशेष प्रिय हैं। यह तो एक प्रकारका अभ्युदय हुआ है। इससे भविष्यमें कुछ भलाही होनेकी सम्भावना है। रामके अभिषेकको सुन तेरे जीमें व्यर्थही जलन होती है। यह तेरे स्वभावका दोष है।"

रङ्गमें भङ्ग—मनुष्यका मन चञ्चल होता है। वह नीच लोगोंके संग और कुशिक्षाके प्रभावसे चलायमान और भ्रष्ट हो जाता है। दासी मन्थराका स्वभाव अच्छा न था। उसने बारम्बार कैकेयीसे विपरीत बातें कहीं। अन्तमें कैकेयीका मन चलायमान हो गया और उसकी मति पलट गयी। एक बार राक्षसोंसे युद्ध करते समय कैकेयीने दशरथको सहायता दी थी। वास्तवमें उसके पराक्रम, बुद्धि और साहाय्य-बलसे दशरथको विजय प्राप्त हुई थी। प्रत्युपकारमें उस समय राजाने उसे दो वरदान मांग-नेको कहा था। कैकेयीने कहा था "अभी नहीं, आवश्यकता पड़नेपर

मांग लूंगी" राजानेभी कहा था "तथास्तु।" मन्थराके समझानेपर उन हितकर वचनोंका कैकेयीने इस समय उपयोग करना निश्चय किया। दशरथके आनेपर उसने उन वचनोंकी स्मृति दिलायी और कहा कि रामको चौदह वर्षके लिये वनवास और भरतको अभिषेक—यह दो वरदान दे, अपनी प्रतिज्ञा पालन कीजिये। राजाके समझाने बुझानेपर भी उसने अपना दुराग्रह न छोड़ा। वृद्ध दशरथ मूर्च्छित होकर गिर पड़े और चैतन्य आनेपर वह शोकसे क्रन्दन करने लगे। "हा राम!" कहते हुए वह आहें भरने लगे और ज्वराक्रान्त बूढे हाथीकी तरह सहमकर गिर पड़े। पुनः एक बार वह बोल उठे—"कैकेयी! यह अनर्थकी बात तुझे किसने सिखायी? कहते हुए तुझे लाज क्यों नहीं आती? इस प्रकार तेरे स्वाभावकी नीचता आजही देखी गयी। यदि तू चाहती है कि भरत और उसके साथही साथ संसारका भी भला हो तो तू ऐसे वरोंकी याचना न कर! भरत धर्मात्मा है, वह रामसे छुड़ाकर राज्य नहीं कर सकता। हाय! मैं नहीं जानता था, कि मेरी आस्तीनमें सांप मौजूद है! मैं रामसे यह बात क्योंकर कहूं, उसने अबतक अध्ययन, ब्रह्मचर्य्य, गुरुसेवा और मुझे सहायता देनेमें कष्ट ही कष्ट उठाये हैं। अब उसे सौख्यकालमें भी कष्ट दूं, यह कैसे हो सकता है? रामका स्वभाव मैं जानता हूं। वह मेरी बात तुरत मान लेता है। मेरे कहतेही वह वनवासके लिये तैयार हो जायगा। हाय! यह कैसी विपरीत घटना है! हे कैकेयी! तुझे धिक्कार है! ऐसी बात कहते तेरी जीभ क्यों

न खण्डित हो गयी ? तू पानीमें मर, अग्निमें जल जा, विषपान कर ले या धरतीमें समा जा ! मैं तुझे अब जीवित दशामें देखना नहीं चाहता । देख ! अब भी कहा मान और दुराग्रह छोड़ दे ।" इस प्रकार दशरथने बहुत कुछ कहा; परन्तु कैकेयी इससे प्रसन्न न हुई । राजाने समस्त रात्रि तड़प तड़पकर व्यतीत की । दूसरे दिन, प्रभातसेही चारों ओर धूम मचने लगी और अभिषेककी तैयारियां होने लगीं । सभा-भवन नियमित समयके पूर्वही सभाजनोंसे भर गया । सब लोग दशरथकी मार्ग-प्रतीक्षा करने लगे । परन्तु अन्तःपुरमें उनकी क्या दशा है, यह किसीको ज्ञात न था ।

नित्य नियमानुसार सुमन्त्र अन्तःपुर :गये और महाराजसे चलनेकी प्रार्थना की, यह सुनतेही राजा दशरथका शोक सीमातीत बढ़ गया और वह कुछ भी न बोल सके । यह देखकर कैकेयीने कहा—"रामको बुला लाओ !" परन्तु सुमन्त्र महाराजकी आज्ञा प्राप्त करनेके उद्देश्यसे वहीं अटक रहे । दशरथ शोक सागरमें डूब गये थे । उनका मुख निस्तेज हो गया था । जैसे तैसे उन्होंने कहा—"सुमन्त्र ! मैं रामको देखना चाहता हूं । उनको ले आओ ।" विचारा मन्त्री कुछ भी न समझ सका । उसने तुरन्त रामको सूचना दी । राम उसके साथही चल पड़े । मङ्गल मनाती हुई सीता उन्हें द्वारतक पहुँचा गयीं । बाहर लक्ष्मणसे भेंट हुई । राम रथारूढ़ हुए और लक्ष्मण चँवर ले पीछे खड़े रहे । रथके आस पास शस्त्र सज्जित अश्वारोही चलने लगे और वीर पुरुष सिंहनाद करने लगे । विविध प्रकारके वाद्योंका घोष

होने लगा और वन्दी जन विरदावली गाने लगे। अट्टालिका-ओंसे सुन्दरियां पुष्प वृष्टि करने लगीं और लोगोंमें भांति भांतिकी चर्चा होने लगी—राम राज्यमें किसीको दुःख न होगा और सबकी कामनायें परिपूर्ण होंगी, इसमें किसीको संदेह न था। वृद्धोंके आशीर्वाद सुनते, दीनों पर दया दिखाते और देवस्थानोंको प्रणाम करते हुए राम, उस राजप्रासादमें जा पहुंचे, जहां कैकेयीके निकट शोकातुर और उदासीन दशामें दशरथ बैठे हुए थे। रामने नित्य नियमानुसार ही अविचलित भावसे उनको प्रणाम किया। दशरथ उनको देखकर विह्वल हो गये। उनके नेत्रोंसे अश्रुधारा वहने लगी। वह 'राम' इन दो अक्षरोंके अतिरिक्त कुछ भी न बोल सके। उन्होंने शिर नीचा कर लिया और आहें भरने लगे। पिताको इस प्रकार संतप्त और दुःखी देख राम कैकेयीसे पूछने लगे—"माता! पिताजी इस प्रकार शोकातुर क्यों हैं? मुझसे कोई दोष तो नहीं हुआ? क्या वह मुझसे अप्रसन्न हैं? मैं पिताजीको इष्टदेवके समान मानता हूं। उनको अप्रसन्न किंवा असंतुष्ट कर मैं जीवित नहीं रहना चाहता। मैं उनकी आज्ञाका उल्लंघन नहीं कर सकता। जन्मदाता-पिता पृथ्वी पर प्रत्यक्ष देवता स्वरूप हैं। उनकी इच्छाके प्रतिकूल आचरण करना पाप है।"

कैकेयीका उत्तर—यह सुनकर कैकेयीने कहा—"महाराज तुमसे अप्रसन्न नहीं हैं। वह कुछ कहना चाहते हैं परन्तु तुमपर उनका सीमातीत प्रेम है। इसीसे अप्रिय कह नहीं सकते

उन्होंने मुझे एक समय दो वरदान देनेका वचन दिया था, परन्तु इस समय वह देना नहीं चाहते हैं। सत्यही धर्मका मूल है। केवल तुम्हारे स्नेह-बन्धनसे कर्तव्यविमूढ़ हो रहे हैं, पर क्षात्र-धर्म परित्याग करना अनुचित है। महाराज असमंजसमें पड़े हुए हैं। वह स्वयं इस समय कुछ भी न कहेंगे"। रामने कहा—"यदि पिताजी नहीं कहेंगे तो आपही कहिये, मैं निःसन्देह उनकी इच्छानुसार-कार्य्य करूंगा। मैं जो कुछ कहता हूं, ठीक समझिये। इसके विपरीत कुछ भी नहीं हो सकता।" यह सुनकर कैकेयीने कहा—"मैंने महाराजसे ये दो वर मांगे हैं, कि भरतका अभिषेक हो और राम चौदह वर्ष पर्य्यन्त वनमें निवास करें।" विमाता कैकेयोके यह शब्द रामके हृदयको आघात पहुंचानेके लिये पर्य्याप्त थे, परंतु रामको जराभी खेद न हुआ। उनका मुख-मंडल जैसाका तैसा उज्वल बना रहा। अभिषेककी बातसे न उन्हें हर्ष हुआ था न वनवासकी बातसे शोक। कैकेयीकी इस कुटिलता और रामकी सरलताको देख, दशरथका परिताप और भी बढ़ गया।

आज्ञा पालन—रामने कहा—"मैं केवल आपहीके कहनेसे भरतको सर्वस्व दे सकता हूं। पिताजीके कहने पर भी न दूं तो आश्चर्यकी बात है। मैं माता पिताकी आज्ञा उल्लङ्घन नहीं कर सकता। मैं अब किसी प्रकारके प्रलोभनमें पड़ अयोध्यामें न रहूंगा। पिताकी आज्ञा शिरोधार्य्य करनाही पुत्रका परम धर्म्म है। मैं पिताको प्रसन्न रखनेके लिये प्राण भी त्याग सकता हूं और आपकी आज्ञासे भी वन जा सकता हूं।

मेरे तन-मनपर पिताके समानही आपका भी अधिकार है। मुझे आज्ञा दीजिये, थोड़ासा समय दीजिये, माता कौशल्याकी आज्ञा ले आऊं और सीताको समझा आऊं। मैं आजही यहांसे प्रस्थान करूंगा। भरत प्रजा पालन और पिताजीकी सेवा-में यत्नवान हों—इसका आप ख्याल रक्खें।" रामके इन वचनों-को सुनकर दशरथ विलाप करने लगे और मूर्च्छित हो गये। राम कैकेयीको प्रणाम कर अन्तःपुरसे निकल पड़े।

माताको रामका आश्वासन—रामकी मुख-मुद्रा ज्योंकी त्यों थी। राज्य मिलनेकी बातके समय जो तेजस्विता थी, वही इस समयभी वर्तमान थी। इस आकस्मिक घटनासे दुखी न होकर पूर्ववत् मधुर वचन कहते और बड़ोंका सम्मान करते हुए वह कौशल्याके पास गये। कौशल्या इस समाचारको सुन करके हुए कदली वृक्षकी भाँति भूमि पर गिर पड़ी और हाय हाय कर विलाप करने लगी। राम उनको समझाने लगे और बोले—"जो मनुष्य धर्मको अवहेलना कर अर्थ किंवा काम संपादित करता है उसकी संसारमें निन्दा होती है। पिता काम क्रोध लोभ किंवा स्नेह-वश जो आज्ञा दें वह पुत्रको माननीही चाहिये। मैं राज्यके लिये यशको त्याग करना नहीं चाहता। मैं इस अल्पायुमें यशको छोड़ राज्यके प्रलोभनमें नहीं पड़ सकता। आप शोक और रोषका परित्याग करें। माना-पमानके विचारको छोड़ दें और धैर्य्य धारण करें। मैं जटा और मृगचर्म धारण कर वन जाऊंगा। इसमें कैकेयीका कोई

दोष नहीं, दैव जो चाहता है वही होता है। सुख, दुख, लाभ, हानि, मान, अपमान जो कुछ होता है, वह उसीकी इच्छासे होता है। ब्रह्मादिक देव भी दैवकी गतिके आधीन हैं। आरम्भ किया हुआ कार्य अनेक यत्न करनेपर भी पूर्ण न हो, उसमें अकस्मात विघ्न आ जाय तो उसे दैवकाही कर्त्तव्य समझना चाहिये। आज अभिषेकके लिये तीर्थों से जो जल लाया गया था, उसका मैं दीक्षा लेनेमें उपयोग करूँगा। आप मुझे आज्ञा और आशीर्वाद दें। मैं लौटकर आपके चरणोंमें आश्रय ग्रहण करूंगा। चौदह वर्ष देखते देखते अभी बीत जायेंगे।" कितनेही प्रकारसे देवी कौशल्याको आश्वासन देकर रामने उनकी आज्ञा प्राप्त की और प्रणामकर सीताके पास गये। सीतासे कहा—"प्रिये! मैं पिताकी आज्ञानुसार वन जा रहा हूं। भाई भरत आयोध्याका शासन करेंगे। तुम माता पिताकी सेवा करना और भरत तथा शत्रुघ्नको अपने भाईके समान समझना।

सीताका निश्चय—सीताने कहा—प्राणनाथ! आप यह क्या कहते हैं? माता पिता पुत्र और भाई इत्यादि अपने अपने भाग्यका फल भोग करते हैं, परन्तु स्त्री तो पतिकी अर्द्धाङ्गिनी है। उसे पतिके भाग्यकाही सुख दुःख भोगनेका अधिकार है। जो आज्ञा आपके लिये हुई है, वह मेरे लिये पहले ही हो चुकी—यही समझना चाहिये। आप यहांसे प्रस्थान करें उसके पूर्वही मुझे निकल पड़ना चाहिये और कण्टकोंको चुन मार्ग साफ करना चाहिये। पति चाहे जहां रहे, वह रह सकता

है, परन्तु स्त्रीको उसके चरणकी छायामेंही रहना चाहिये। माता, पिता, पुत्र किंवा सखी यह कोई भी स्त्रीको इहलोक अथवा परलोकमें शान्ति किंवा आश्रय नहीं दे सकते। उसका एक मात्र अवलम्ब पति है। मैं त्रैलोक्यके ऐश्वर्यको भी तुच्छ मान केवल आपहीका चिन्तन और सेवा करूंगी। आप मुझे छोड़ जायेंगे तो मैं प्राण त्याग दूंगी। मैं केवल आपके वियोग को छोड़ और सभी कुछ सह सकती हूं। हे आर्य! मुझे छाया समझकर साथ ही रहने दीजिये। इस प्रकार कहती हुई सीता रामके चरणोंमें लिपट गयी और अपने अश्रुओंसे उनको प्लावित करने लगी। उनकी यह दशा और निश्चय देख रामने साथ ले चलना स्वीकार किया। लक्ष्मणको यह समाचार पूर्व सेही ज्ञात थे। वह भी साथ चलनेको तय्यार हुए। रामने उन-का कड़ा निश्चय और आग्रह देख अपनी स्वीकृति देदी। फिर तीनों जने पिताके दर्शन कर अन्तिम आज्ञा प्राप्त करनेके लिये रवाना हुए। नगरमें भी यह संवाद विद्युत वेगसे फैल चुका था। समस्त जनता रामके दर्शनार्थ व्याकुल हो रही थी। सब लोग उदास हो गये थे। इस विपरीत घटनाको देख प्रजा शुष्क जलाशयके जन्तुओंकी तरह तड़पने और क्रन्दन करने लगी। घरबार और सर्वस्वको छोड़ वह लक्ष्मणकी भांति रामके साथ जानेको उद्यत हुई। जहां देखो वहां, यही चर्चा हो रही थी। सर्वत्र रामकी प्रशंसा और कैकेयीकी निन्दा सुन पड़ती थी। प्रजाके प्रेमपूर्ण वचनोंको सुनकर भी रामके

हृदयमें किसी प्रकारका विकार उदय न हुआ। सबको खिन्नता और शोकमें डूबे हुए देखकर भी रामको खेद न हुआ। वह सदैवकी भाति मुस्कुराते हुए पिताके पास जा पहुँचे।

राजमन्दिरमें हाहाकार—रामने प्रणामकर दशरथ की आज्ञा प्राप्त की। पिता और पुत्रका अन्तिम संभाषण सुन कैकेयीको छोड़ सबका हृदय पानी पानी हो गया। दशरथने रामको आलिङ्गन किया और मूर्च्छित होकर गिर पड़े। कौशल्या सुमित्रा और सुमन्त्र भी अचेत हो गये। राजमन्दिर और सभा-भवनमें हाहाकार मच गया। सभी लोग करुणापूर्ण क्रन्दन करने लगे।

कैकेयीको धिक्कार—कैकेयी राम लक्ष्मण और सीताको वल्कल परिधान कराने लगी। इस लोमहर्षण दृश्यको देख वशिष्टकी आंखोंमें जल भर आया। वह बोल उठे—"कैकेयी! हे कलङ्किनी! अनर्थ न कर! रामको वल्कल दिये तो दिये, सीताको क्यों देती है? यदि सीता रामके साथ वनको जायगी तो प्रजा और भरत तथा शत्रुघ्न भी वहीं जा रहेंगे और इनकी सेवा करेंगे। तू अकेली यहीं सुख भोग कर, और कोई न रहेगा। जहां राम न होंगे, वह देश उजाड़ हो जायगा और जहाँ रामका निवास होगा वह जंगल भी सम्पन्न देश बन जायगा। तेरा भरत इस राज्यको कदापि स्वीकार नहीं करेगा। वह तेरे पास भी पुत्र धर्मका पालन करते हुए नहीं रह सकता। तूनें उसका

कल्याण नहीं किया वरन अनिष्ट किया है। तुझको छोड़, रामका अनुसरण न करनेवाला पृथ्वी पर और कोई भी नहीं है। देख रामके साथही सब लोग जानेको तैयार हैं।" इस प्रकारके कठोर वचन सुनानेपर भी कैकेयी अपनी प्रतिज्ञासे न हटी। चारों-ओरसे उस पर धिक्कारकी बौछार होने लगी।

रामका प्रस्थान—राम और लक्ष्मण धनुष धारण कर सीता सहित रथारूढ़ हुए। कोई अनुसरण न करे, इस उद्देश्यसे अश्व तेजीके साथ भगाये गये। रामने देखा, कि प्रजा भी दौड़ी आरही है। वह असमंजसमें जा पड़े और रथसे उतर पड़े। लक्ष्मणने भी वैसाही किया। सीता भी उतरी और तीनों जने प्रजाके साथही पैदल चलने लगे। सायंकालके समय उन्होंने तमसाके तटपर निवास किया। राम और लक्ष्मणने सन्ध्या वन्दन कर प्रजासे समयोचित संभाषण किया। रात्रिको सबके साथही वह भी सो रहे। प्रातःकाल प्रजाको निद्रित अवस्थामें ही छोड़ राम चुपचाप चल पड़े। प्रजाका रामके साथही जानेका विचार था। परन्तु सवेरे उठकर देखा तो न राम हैं न कहीं लक्ष्मण! प्रजा निराश हो रुदन करने लगी और अन्तमें, विवश हो अयोध्या लौट गयी। राम कौशल देशमें हो गुह राजाकी राजधानीमें पहुँचे। यहांसे समझा बुझाकर रामने सुमंत्रको रथ सहित अयोध्याको लौटा दिया। फिर वह तीनों जने नौकामें बैठ भागीरथीके उस पार जापहुँचे। आगे लक्ष्मण बीचमें सीता और पीछे राम-इस प्रकार वह चलने लगे। मार्गमें एक सरोवर था,

उसके तटपर हंसादिक पक्षियोंका निवास था। वहीं तृणशय्यापर तीनोंने रात्रि व्यतीत की। प्रातःकाल स्नान शौचादि नित्य कर्मोंसे निवृत हो, वह आगे चले! गङ्गा यमुनाके संगम पर तीर्थराज प्रयागमें भारद्वाज ऋषिका आश्रम था। तीनों जने वहां गये और ऋषिको प्रणाम किया। भारद्वाजका आतिथ्य स्वीकार कर दूसरे दिन वह चित्रकूट जा पहुंचे। यह बड़ा मनोहर स्थान था। चारों ओर वृक्षोंकी छटा छहरायी हुई थी। समतल भूमिके मध्यमें रमणीय पर्वतकी शोभा अलौकिक थी। रामने वहीं पर्ण-कुटीकी रचना कर निवास किया। उस स्थानमें सब प्रकारकी सुविधाओंको देखकर लक्ष्मण और सीता भी अतीव प्रसन्न हुए।

दशरथका देहान्त—सुमंत्र उदासहो अयोध्या पहुंचे और दशरथको प्रणामकर रामका सन्देश कह सुनाया। दशरथ भी विलाप करने लगे। उनकी दशा शोचनीय होती गयी और रात्रिको उनका देहान्त हो गया। उस समय सुमित्रा और कौशल्या वहां उपस्थित थीं। इस घटनासे वह और भी मर्माहत हुई। उनको अपने शरीरका भी चेत न रहा। प्रातःकाल उनको होश आया और वह विलाप करने लगीं। चारों ओर हाहाकार मच गया। भरत और शत्रुघ्न अपने ननिहालमें थे। वह तुरन्त दूत भेजकर बुलाये गये। उनको अबतक किसी बातकी सूचना न दी गयी थी। उन्होंने देखा, कि नगरी श्मशानवत् शून्य दिखाई दे रही है और सर्वत्र उदासीकी घटा

घिरी हुई है। आश्चर्य्य और शंका करते हुए उन्होंने राज-मन्दिरमें प्रवेश किया। वहां राम लक्ष्मण सीता या दशरथ कोई भी न दिखायी पड़ा। सभा-भवन ऊजड़ सा भासित हुआ। नाना प्रकारके सङ्कल्प और विकल्प करते हुए वह कैकेयीके पास गये। पूछने पर कैकेयीने समस्त समाचार कह सुनाये। पिताका स्वर्गवास, बन्धुओंका वनवास और अपना अभिषेक सुनकर भरतको बड़ा दुःख हुआ। कैकेयीके शब्द उनके हृदयमें बाणकी तरह खटकने लगे। वह पृथ्वी पर गिर पड़े और रुदन करने लगे। वह एक साथही शोकातुर और क्रुद्ध हो कहने लगे—"हाय! एकाएक यह क्या हो गया! हे दैव! मैंने कौनसा कुकर्म्म किया था जो अन्तमें पिताका मुख भी न देख सका। हे पापिनी माता! तूने यह अनर्थ क्यों किया? राम तो तुझे माताके समानही समझते थे। उन्होंने भूलकर भी कभी तेरा अपमान नहीं किया। वंशपरंपरागत प्रथानुसार बड़े भाईकाही अभिषेक होना चाहिये। यह राज्य तो रामकाही है। मैं तो उनका दास होकर रहूंगा। इत्यादि कहकर भरतने कैकेयीके प्रति क्रोध और रामके प्रति भक्ति-भाव प्रकट किया। शत्रुघ्न मन्थराको मारने दौड़े और कैकेयीकी बड़े कठोर शब्दोंमें भर्त्सना की। इतनेहीमें वहां वशिष्ठ जा पहुंचे और उन्होंने सबको शान्त किया। दशरथकी उत्तर-क्रियाकी गयी और शोकका कुछ कुछ शमन हुआ। भरतसे अयोध्याका शासन करनेको कहा गया, परन्तु उन्होंने कहा—"यह कदापि नहीं हो

सकता। राज्यके वास्तविक अधिकारी राम हैं। मैं उनको लिवा लानेके लिये शीघ्रही पयान करूंगा।"

जंगलमें मंगल—भरतने रामके पास जानेकी तैयारी की। सुमित्रा, कौशल्या, कैकेयी, शत्रुघ्न, वशिष्ठ, सुमंत्र और प्रतिष्ठित प्रजा-जन भी भरतके साथ चित्रकूट पहुंचे। रामको तपस्वीके समान ऐश्वर्य्यहीन दशामें देख सब लोग अश्रु वरसाने लगे। भरत दीनता पूर्वक उनके चरणों पर गिर पड़े। रामने उनको उठाकर गलेसे लगाया और पिताके कुशल समाचार पूछे। उनके स्वर्गवासकी बात सुन रामको बड़ा दुःख हुआ। जब वह शान्त हुए, भरतने अयोध्या लौट चलनेकी प्रार्थना की। उस समय रामने कहा—"मनुष्य स्वेच्छा पूर्वक कुछ भी नहीं कर सकता, वह परतंत्र है। दैव जो करता है, वही होता है। मेरे वनवासके विषयमें भी यही बात है। माता या पिताका कोई दोष नहीं है। हे भरत! शोकका परित्यागकर शान्त हो और पिताकी आज्ञानुसार अयोध्यामें जाकर राज्य करो! मैं भी पिताकी आज्ञाका पालन करूंगा।" भरतने पुनः उनके चरणोंमें शीश रख अनेक प्रकारसे प्रार्थना की। जाबालि और वशिष्ठ मुनिने भी बहुत कुछ कहा सुना; परन्तु रामने कहा "मैं निश्चय कर चुका हूं और अटल भावसे पिताकी आज्ञाकाही पालन करूंगा। हां, आपके अनुरोधसे मैं चौदह वर्ष व्यतीत होने पर अयोध्या अवश्य आऊंगा और तुरन्त शासन-भार ग्रहण करूंगा।" इस उत्तरसे भरत निराश हो मन्त्री और

प्रजा जनोंके साथ अयोध्या लौट आये। रामकी पादुकाओंका अभिषेक कराया और शत्रुघ्न तथा वशिष्ठादि ऋषियोंको शासनका प्रबन्ध भार दे, वह जटा और वल्कल धारण कर, नंदी ग्राममें तप करने लगे।

सन्त समागम—रामके दर्शनार्थ अनेकानेक मनुष्य अयोध्यासे चित्रकूट आने लगे। चित्रकूटपर अनेक ऋषियोंके आश्रम भी थे। लोगोंके इस प्रकार गमनागमनसे उनको कहीं कष्ट न हो, इस विचारसे रामने उस स्थानको त्याग दिया। वहांसे वह दक्षिण दिशाको ओर चलकर अत्रि ऋषिके आश्रममें आ पहुंचे। ऋषि और ऋषिपत्नी अनुसूयाने उनका बड़ा सत्कार किया। सीताको सुन्दर वस्त्र और अन्यान्य वस्तुयें प्रदान कीं। वहांसे फिर वह दण्डकारण्य पहुंचे। प्रथम उनको एक विपत्तिका सामना करना पड़ा। विराध नामक एक राक्षस सीताको उठा ले चला। रामने उसे बहुत मारा परन्तु वह न मरा। अन्तमें उसे एक गर्तमें गिरा ऊपरसे मिट्टी छोड़ दी। जब उसका नाश हुआ तो देखा गया, कि एक सुन्दर पुरुष स्वर्गकी ओर जा रहा है। उसने रामसे कहा,—"मैं एक गन्धर्व हूं और शापवश इस अवस्थाको प्राप्त हुआ था। आज आपके हाथों मेरा उद्धार हुआ और मैं स्वर्ग जा रहा हूं। हे राम! आपकी सर्वत्र विजय हो।"

आगे चलकर शरभङ्ग ऋषिका आश्रम मिला। वह ऋषि रामके दर्शनकर स्वर्गवासी हुए। वहांसे चलकर राम सुती-

क्षणके आश्रममें गये वह मुनि श्रीरामचन्द्रजीका आगमन सुनकर प्रेम मग्न हो रहे थे। वह कभी गाते और कभी नाचते थे। उनको कुछ भी सुध न थी, जब रामने उनको अपना चतुर्भुज रूप दिखाया तब उसको सुध हुई, उन्होंने रामकी विचित्र प्रकारसे पूजा की और प्रार्थना कर कहा—"हे राम! यहां राक्षस अनेक प्रकारके उपद्रव करते हैं। उन्होंने अनेक ऋषियोंको मार डाला है। मरे हुए ऋषिगणोंकी अस्थियोंका वह देखो, ढेर लगा हुआ है!" ऋषिगणोंकी बात सुन और उस ढेरको देख, रामको बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने प्रतिज्ञाकी, कि मैं राक्षसोंका संहारकर यह संकट दूर करूंगा। यहां सीताने रामसे शस्त्र धारण करनेके विषयमें प्रश्न किया। रामने कहा—"ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिये क्षत्रियोंका शस्त्र धारण करना अधर्म नहीं है। इससे यह न समझना चाहिये, कि ब्राह्मण आत्मरक्षा करनेमें असमर्थ हैं। वह चाहें तो शापसेही राक्षसोंको जलाकर भस्म कर सकते हैं, परन्तु वह कठिन तपस्या कर जिस पुण्यका संचय करते हैं, उसको इस प्रकार खोना उचित नहीं समझते। उनकी रक्षा मुझेही करनी चाहिये।" वहांसे चलकर राम पंपा सरोवरके पास पहुंचे। उसके तटपर एक बगुलेको ध्यानस्थ देख लक्ष्मण से कहने लगे—

पश्य लक्ष्मण पंपायां बको परम धार्मिकः।
शनैः शनै पदं धत्ते मत्स्य हिंसन शंकया॥

अर्थात् देखो लक्ष्मण! यह बगुला बड़ा धार्मिक प्रतीत होता

है। कहीं दबकर मछलियां न मर जायं, इस विचारसे वह धीरे धीरे पैर रखता है। रामकी यह बात सुन सरोवरकी एक मछलीने कहा—

पथिका नैव जानन्ति जानन्ति सहवासिनः।
अनेन धूत वृत्तेन मत्कुलं निष्कुली कृतम्॥

अर्थात्, इस रहस्यको पथिक क्या जानें? इसे तो साथके रहने वालेही जान सकते हैं। इसी धर्मावतारने हमलोगोंका सर्वनाश कर डाला है। वास्तवमें जबतक किसीके गुणका वास्तविक ज्ञान नहीं होता है, तबतक लोग आडम्बर और साधुताको देख उसपर मोहित होजाते हैं, परन्तु जब दीर्घकालके परिचयसे उसके सत्य स्वरूपका ज्ञान होता है, तब उन्हें अपने पूर्व विचारोंमें परिवर्तन करना पड़ता है।

राम यहांसे चलकर विन्ध्याचल पहुंचे। वहां अगस्त्य ऋषिका आश्रम था। ऋषिने यथोचित सत्कार कर कितनेही शस्त्रास्त्र भेंट किये। रामने उनके निकट शैवी दीक्षा ग्रहणकी। वहांसे वह पंचवटी पहुंचे और शरद ऋतुका सौन्दर्य देख, वहीं पर्णकुटी स्थापितकर सहर्ष समय व्यतीत करने लगे।

राक्षसोंका विनाश—एक दिन रावणकी बहिन सूर्पनखा सुन्दर रूप धारणकर वहां जा पहुंची। रामको देख वह मोहित हो गयी और उनसे ब्याह करनेके लिये आग्रह करने लगी। रामने सीताको दिखाकर कहा, कि मैं विवाहित हूं, मुझे

और विवाह करनेकी आवश्यकता नहीं है। राक्षसी यह सुन-कर क्रुद्ध हो गयी और सीताको मारने दौड़ी। रामने लक्ष्मण-को सङ्केत किया और उन्होंने उसकी नाक काट ली। सूर्पनखा रोती चिल्लाती अपने भाइयोंके पास जा पहुंची। उनका नाम खर और दूषण था। वह रामको दण्ड देनेके लिये सदल बल जा पहुंचे, परन्तु रामने सबका विनाश कर डाला। उन मेंसे एक भी जीवित न बचा। सूर्पनखा रोती हुई लङ्का पहुंची। वहां रावणसे सब हाल कहा। खर-दूषण और उन प्रबलकी सैन्यका विनाश सुन रावणको सीमातीत क्रोध हुआ। उसने राम और लक्ष्मणको मार डालनेकी बात कही, परन्तु सूर्पनखाने समझाया, कि वह दोनों बड़े पराक्रमी हैं। युद्धमें उनको परा-जित करना सहज नहीं है। उनके साथ एक सुन्दरी स्त्री है। उस-का हरण कर लेनेसे वह दोनों निःसन्देह शोकातुर हो प्राण-त्याग देंगे। रावण मारीचके पास गया और उससे किसी प्रकारका षड्यन्त्र रचनेको कहा। मारीचने कहा—"यह बात छोड़ दो, वह महा पराक्रमी पुरुष हैं। सोते हुए सिंहको जगाना अच्छा नहीं। मुझे विश्वामित्रके आश्रममें एक बार उनकी शक्तिका परिचय प्राप्त हो चुका है।" रावणने उसकी एक न सुनी और सूर्पनखाके मर्म-प्रभावोंसे प्रभावित हो षड्यन्त्र रचने लगा। उसने मारीचको सुवर्ण मृगका रूप धारणकर योग देनेके लिये बाध्य किया। मारीचने पुनः एक बार समझानेका उद्योग किया। यह उसका अन्तिम प्रयत्न था।

मारीचका वक्तव्य—"हे लङ्केश! संसारमें मधुरभाषी वाचाल मनुष्योंका अभाव नहीं। यह सहस्त्रावधि मिल सकते, हैं परन्तु सुननेमें कटु अन्त में परम लाभदायक बोलने, कहने और सुनने वाले बहुत कम मिलते हैं। मेरी बातें भी इस समय आपको अच्छी न लगेंगी, परन्तु उनसे आपका हित अवश्य होगा। ऐसा काम करो, जिससे सब राक्षसोंका कल्याण हो। कहीं ऐसा न हो कि रामकी क्रोधाग्निमें पड़कर सारा राक्षस-वंश स्वाहा हो जाय! जिस सीताका हरण करना चाहते हो वह कहीं आपके प्राणका हरण न करने लग जाय! उसका जन्म कहीं इसी लिये न हुआ हो! नीच प्रकृतिके दुष्ट शासक अपना और अपनी प्रजाके नाशका कारण बन जाते हैं। रामको मूर्ख किंवा विषय-लोलुप न समझिये। पिताने उन्हें निर्वासित नहीं कर दिया, किन्तु वह स्वयं उनकी प्रतिज्ञा पूर्ण करनेके लिये दण्डकारण्य चले आये हैं। पति और पातिव्रतके प्रतापसे सीताकी रक्षा आपही आप हुआ करती है। उसके हरणका विचार क्यों करते हो? रामकी क्रोधाग्निमें सहसा प्रवेश करना अनुचित है। आपको इस प्रकार काल-मुखमें पतित होनेकी उत्कंठा क्यों हुई है? राम धर्मात्मा हैं और सीता सती है। उनका तेज अनुपम है। रामका धनुष सीताका आश्रय है। आपको उसके हरणका उद्योग न करना चाहिये। रामकी दृष्टि पड़तेही आपका अन्त होगा। अपने जीवन, ऐश्वर्य्य और राज्यकी रक्षाके लिये, विभीषणादि विवेकी और धार्मिक मन्त्रियोंसे मिलकर विचार

करिये। गुण और दोषके बलाबलका निर्णय करिये, अपने और रामके सामर्थ्यकी तुलना कर लीजिये, सोच विचार और निश्चय कर लेनेके बाद ही ऐसी प्रवृत्तिमें पड़ना चाहिये। मैं तो आपसे यही कहूंगा, कि रामसे विरोध करना कदापि अच्छा नहीं। एक समय मैं ,सुबाहु आदि राक्षसोंको साथ ले यज्ञ-भङ्ग करने गया था। वह घटना मुझे आज भी याद है। सुबाहु आदि अनेक राक्षसोंको रामने मार डाला था। मेरा विश्वास है, कि उनके अनुग्रहसे ही मैं उस समय जीता बचा। हे दशकन्ध! सीताके पीछे कहीं यह सोनेकी लङ्का मिट्टीमें न मिल जाय। अनेक निर्दोष भी आपके साथ पिस जायँगे, इसका विचार करिये। निःसन्देह, पापियोंके संसर्गसे, उनका आश्रय ग्रहण करनेसे, पाप न करने पर भी दुःख उठाना पड़ता है। परदाराका स्पर्श यह एक महान् पातक है। यदि आप चाहते हैं कि दीर्घकाल पर्य्यन्त ऐश्वर्य्य भोग करें, मान और राज्य स्थिर रहे, अभ्युदय हो तथा स्त्रीऔर मित्रोंका साथ बना रहे तो रामसे वैमनस्य बढ़ाना छोड़ दीजिये। आपके अन्तःपुरमें अनेकानेक स्त्रियां, एकसे एक बढ़कर सुन्दर हैं,उन्हींमें सन्तुष्ट रहिये और सीताको लानेका विचार छोड़ दीजिये! मैं तो रामसे इस प्रकार डरता हूं कि रकार सुनतेही मेरे प्राण निकल जाते हैं! जहां तहां मुझे रामका भ्रम हो जाता है और स्वप्नमें भी उनको देखकर चौंक पड़ता हूँ। बाकी, सब आपकी इच्छापर निर्भर है। आप चाहे शान्त रहें और चाहे कलह करें। जीवित रहनेकी इच्छा

हो तो उनसे विग्रह करनेका नाम भी न लीजिये। हे लङ्केश ! मुझे इस प्रकार स्पष्ट बातें कहनेके लिये क्षमा करें। मन्त्रियोंका कर्तव्य है, कि यदि राजा अनीति करता हो तो उसे कैद कर लें। आप सर्वथा बन्दी बनाने योग्य हैं, फिर भी न जाने वह वैसा क्यों नहीं करते ? यह उन लोगोंका ही दोष है। मुझे इस बातको चिन्ता नहीं है, कि मेरा नाश होगा, किन्तु आपके परिवार और समस्त सेनाओंके नाश होनेका शोक है। मेरी मृत्यु अब आ पहुंची है। रामके हाथसे मैं मृत्युको प्राप्त होना अच्छा ही समझता हूं। इसमें लेशमात्र भी सन्देह नहीं, कि रामके दर्शन होतेही मेरा नाश होगा और सीताका हरण होतेही आपका और आपके परिवारका नाश होगा।" मारीचने इस प्रकार बहुत कुछ कहा सुना, परन्तु मृत्यु-शय्या पर पड़ा हुआ मनुष्य जिस प्रकार औषधि स्वीकार नहीं करता, उसी प्रकार रावणने यह उपदेश स्वीकार न किया। मारीचकी निराशा बढ़ गई, वह शोकातुर और विवश हो उसके साथ दण्डकारण्य गया।

सीता-हरण—रावण संन्यासी बना और मारीचको मृग बनाया। मृगको देख सीता मोहित हो गयीं और रामसे उसका चर्म लानेको कहा। रामको तो यह लीला करनी ही थी। वह धनुषबाण लेकर उसको मारने चले। पर्णकुटीसे वह बड़ी दूर निकल गये। अन्तमें रामका बाण लगतेही वह माया-मृग मृत्युको प्राप्त हुआ। मरते समय उसने लक्ष्मणका नाम लेकर उन्हे बड़े जोरसे पुकारा। वह शब्द सुन सीता शंका करने लगीं

और रामकी सहायताके लिये लक्ष्मणको भी भेज दिया। इस प्रकार उनकी अनुपस्थिति देख रावण सीताको उठा ले गया। जब वह दोनों लौटे तो सीता कुटीमें न मिलीं। वह समझ गये, कि उनको अवश्यही कोई राक्षस उठा ले गया। फिर भी वह जहां तहां खोज करने लगे। विह्वल हो भटकते हुए मानों वह संसारको शिक्षा दे रहे थे, कि वनमें स्त्रियोंको साथ लानेवालों-की यह दशा होती है।

सीताकी खोज—ईश्वरावतार श्रीरामचन्द्र सीताकी खोजमें भटक रहे थे। ईश्वर होने पर भी, जान-बूझकर वह नर लीलाका विस्तार कर रहे थे। सती पार्वतीको यह देख शङ्का हुई और उन्होंने प्रकट हो उनकी परीक्षा ली। उनको ज्ञात हो गया, कि राम पूर्ण ज्ञानी हैं और उनको किसी बातका मोह नहीं है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर यह उनके अधीन हैं। वह अभिमान और दाम्भिकतासे रहित और ज्ञानी होते हुए भी, केवल संसारको दिखानेके लिये, अज्ञानियों जैसे लक्षण और वेश धारणकर भटक भटककर लोगोंको एक प्रकारसे शिक्षा दे रहे हैं।

खोज करते हुए राम जटायुके निकट जा पहुंचे। उसका अन्तिम समय समीप था। उसने सीताको छुड़ानेके लिये रावणसे युद्ध किया था, किन्तु सफल न हो बुरी तरह आहत हुआ था। रामको सीता हरणकी सब बातें बताकर उसने देह त्याग दी। उसके प्राण मानों यह कहनेही के लिये अटक रहे थे। रामने

स्वयं उसका अग्निसंस्कार किया। वहांसे वह दक्षिणकी ओर चले। मार्गमें कबन्ध और शबरीका उद्धार तथा रावणके भेजे हुए कितनेही राक्षसोंका नाश किया। इसके बाद वह ऋष्यमूक पर्वतके निकट जा पहुँचे। यहां हनुमानसे भेट हुई। किष्किन्धा नरेश सुग्रीवको उसके भाई वालिने राज्य छीनकर निकाल दिया था। हनुमानने रामसे उनका परिचय और मैत्री करायी। नल, नील, जाम्बवन्त इत्यादि उसके मन्त्री भी वहीं आ मिले। सबने रामकी भक्ति और सेवा स्वीकार की। सुग्रीव द्वारा कुछ आभूषण और वस्त्र प्राप्त हुए जो सीताने चिन्ह स्वरूप जाते समय पथमें डाल दिये थे। रामने एक ही बाणसे सप्ततालोंको भेद अपनी अद्भुत शक्तिका परिचय दिया और वालिको भी एक ही बाणसे मारकर सुग्रीवको राज्य वापिस दिलाया। इससे सुग्रीवने प्रसन्न हो, सीताकी खोज और उनकी प्राप्तिके लिये उद्योग करनेका वचन दिया।

राम-रावण युद्ध—रामने ऋष्यमूकपर चतुर्मास व्यतीत किये। फिर हनुमान, अङ्गद, नील, नल, जाम्बवन्तादिक वीर सीताकी खोज करने गये। वह समुद्रके तटपर पहुँचे। वहां जटायुके भाई सम्पातीसे भेट हुई। उसने बतलाया कि सीता लङ्काके अशोक वनमें बैठी हुई रो रही हैं। सीताका यह पता मिलते ही हनुमानने साहसकर समुद्र पार किया और लङ्का जा पहुंचे। वहां सीतासे भेट हुई। हनुमानने उनको आश्वासन दे, लङ्कामें आग लगा और अनेक उत्पातकर रावण-

का खूब अपमान किया। सीताका सन्देश और लङ्काका भेद ले वह लौट पड़े। समुद्रके तटपर अङ्गदादिसे भेंट हुई। प्रसन्न होते हुए सब लोग रामके पास पहुँचे। हनुमानने रामको सीताका सन्देश और लङ्काका हाल सुनाया। इस समाचारको प्राप्तकर सुग्रीवने सेना एकत्र की। राम लक्ष्मण और सुग्रीव यह तीनों हनुमान, अङ्गद, नल, नील और जाम्बवन्त इत्यादि नायकोंकी प्रधानतामें अगणित सैन्य ले समुद्रके तटपर जा पहुंचे। नल और नीलने सेतुकी रचनाकी और समस्त सेना समुद्र पार कर गयी। लङ्कामें एक पर्वतकी उपत्यकामें शिविरकी स्थापना हुई और युद्धकी तय्यारियां होने लगीं। विभीषणने बहुत समझाया कि रामसे सन्धि कर ली जाय, परन्तु रावणने उसकी एक न सुनी और उसका तिरस्कार किया। विभीषण धर्मात्मा और नीतिज्ञ था। वह अपने भाईके इस कृत्यसे अप्रसन्न हुआ और रामसे जा मिला। रामने उसका यथोचित सत्कार किया और उसे लङ्काका राज्य देनेका वचन दिया। रामने अङ्गदको दूत बनाकर भेजा, परन्तु उसका कोई फल न हुआ। अन्तमें उनको सेनाने आक्रमण और राक्षसोंने उसका प्रतिकार किया। प्रतिदिन भीषण युद्ध होने लगा और अनेकानेक वीर हताहत हो गिरने लगे। अनेक राक्षसोंका नाश हुआ। रावणके क्रोधकी सीमा न रही। उसने शक्तिशाली मेघनादको युद्धार्थ भेजा। उसने भयङ्कर बाणोंकी वृष्टिकर अनेक वीरोंका नाश कर डाला। उसकी एक तीक्ष्ण शक्तिके आघातसे लक्ष्मण भी मूर्च्छित हो गिर पड़े।

रामका बन्धु प्रेम—लक्ष्मणकी यह अवस्था देख राम शोकातुर हो कहने लगे—" हाय ! लक्ष्मणकी शोचनीय दशा देख मेरा हृदय विदीर्ण हुआ जाता है। मैं सीताका वियोग सहन कर सकता हूं, राज्यके लोभको जलाञ्जलि दे सकता हूं और बड़ेसे बड़ा त्याग कर सकता हूं, परन्तु लक्ष्मणके विना जीवित नहीं रह सकता।

देशे देशे कलत्राणि मित्राणि च पुरे पुरे।
तंदेशं नैव पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः॥

अर्थात्, स्त्रियां प्रत्येक देशमें प्राप्त हो सकती हैं, मित्र प्रत्येक स्थानमें मिल सकते हैं, परन्तु ऐसा कोई देश नहीं देखा जहां सगा भाई मिल सकता हो। रामका लक्ष्मणपर कैसा अनिर्वचनीय प्रेम था, यह उनके इन शब्दोंसे ही प्रकट होता है। वास्तवमें भाईके स्नेह जैसा स्नेह संसारमें दूसरा है ही नहीं। अनेक प्रकारके स्नेहियोंका स्नेह सहोदर बन्धुके स्नेहका शतांश भी नहीं कहा जा सकता। वह कदापि उस स्नेहकी समता नहीं कर सकता। जिनका हृदय बन्धुओंके स्नेहसे आर्द्र रहता है, वही धन्य हैं। बन्धुओंके आश्रयसे अनेक प्रकारकी आपत्तियां सहजमें दूर हो जाती हैं। बन्धुओंके आश्रयसे लक्ष्मी और चिन्तामणि भी दुर्लभ नहीं कहे जा सकते। बन्धुके प्रेमकी तुलना किसी अन्यके प्रेमसे नहीं की जा सकती। स्त्री और मित्रका प्रेम उसके एक अणुकी भी समता नहीं कर सकता। जो लोग इसको भूलकर परस्पर द्वेष भाव रखते हैं, उनको 'नर' न कह

'वानर' कहना चाहिये। रामका लक्ष्मणपर सीमातीत स्नेह था। उनके उपरोक्त वचन ठीकही थे।

यथोचित उपचार द्वारा लक्ष्मणकी मूर्च्छा दूर की गई। लक्ष्मणके सचेत होनेपर सेनाका उत्साह कई गुणा अधिक बढ़ गया। दोनों दलोंमें युद्ध होने लगा और सहस्रावधि सैनिक वीरगतिको प्राप्त होने लगे। अगणित राक्षसोंका नाश हुआ और रावणकी व्याकुलता बढ़ने लगी। उसने बड़े अभिमानसे कुम्भकरणको युद्ध करने भेजा; परन्तु उसकी भी वही गति हुई। मेघनाद बड़ा मायावी और शूरवीर था,. उसने कृत्रिम सीताका शिरच्छेदकर रामका उत्साह भङ्ग करना चाहा, परन्तु उसकी इस मायाका कोई फल न हुआ। उसने अक्षय रथ की प्राप्तिके लिये यज्ञारम्भ किया परन्तु लक्ष्मणने उसे विध्वन्स कर डाला। अब उसकी निराशा बढ़ गई और वह बड़े वेगसे युद्ध करने लगा। लक्ष्मणने अतुल पराक्रम दिखाते हुए उसका नाश किया। उसकी यह दशा देख लङ्कामें हाहाकर मच गया। सब लोग शोकातुर हो रावणकी निन्दा करने लगे। वह भी दुःखित हो विलाप करने लगा, किन्तु इतना हो जानेपर भी वह निरुत्साह न हुआ। वह बड़ा विचित्र और शक्तिशाली जीव था। उसने राक्षसी मायाका विस्तार करना आरम्भ किया। अहिरावण राम और लक्ष्मणको पाताल उठा ले गया। महावीर हनुमान उनकी खोजमें वहां जा पहुंचे। अहिरावण और उसकी सेनाका विनाश कर वह तीनों सकु-

शल लौट आये। पुनः, भीषण समर होने लगा। रामने अनेकानेक धीर वीर और शक्तिशाली राक्षसोंका नाश कर डाला। अन्तमें स्वयं रावण युद्धार्थ उपस्थित हुआ।

रावण वध—राम और रावणसे बड़ा भयङ्कर युद्ध हुआ। देवतागण विमानमें बैठ यह दृश्य देखने लगे। रावणको सम्मुख देख रामने भृकुटि चढ़ाकर कहा—"हे नीच! तू बड़ा दुष्ट है। तूने हमारी अनुपस्थितिमें निर्लज्ज हो सीताका हरण किया। मैं तुझे तेरे दुष्कर्मों का फल चखाता हूं, सत्वर तय्यार हो! पुत्र और भाइयोंका विनाश होनेपर भी तुझे चेत न हुआ! ले अब तेरी जीवन-अवधि समाप्त हुई।" इस प्रकार कह रामने बाणोंकी भीषण वर्षा आरम्भ कर दी। देखते ही देखते उसका हृदय विदीर्ण हो गया। जिस प्रकार पुण्य नष्ट हो जानेपर पुण्यत्माका स्वर्गसे अधःपात होता है, उसी प्रकार रावणका समर भूमिमें पतन हुआ। उसका शोणित मृत्तिकामें सन गया और प्राण पखेरू उड़ गये। बची खुची सैन्यका भी संहार हुआ और चारों ओर हाहाकार मच गया मन्दोदरी आदि महिलायें क्रन्दन करने लगीं। राक्षसियां अपने पति और पुत्रोंको याद कर कर रोने लगीं। रावणकी निन्दा करती हुई अनेक स्त्रियां स्वजनोंके शव गोदमें ले हाहाकार करने लगीं। मन्दोदरी विलापकर कहने लगी—"हे प्राणनाथ! हे विश्वविजेता! आज तुम्हारी यह क्या दशा हो गयी! हाय! तुमने मेरी एक न सुनी और अपना सर्वनाश कर डाला। सीताके

प्रभावको तुम न समझ सके और आज इस दशाको प्राप्त हुए।
आज मुझे और लङ्काको अनाथकर लङ्केश! कहां चले गये!
तुमने हाय! यह कैसा अनर्थ किया! तुम्हारी देह यहां पड़ी
है और आत्मा नरकमें। हाय! तुमने यह क्या किया! इस प्रकार
वह बहुत कुछ कहती और रोती रही। रामने उसे आत्मज्ञान-
का उपदेश दे शान्त किया विभीषणने रामकी आज्ञा और
सम्मतिसे स्वजनोंकी उत्तर क्रिया की।

सीताका उद्धार—सीता अशोकवनमें नजरबन्द थीं।
वह विरह व्यथासे दुर्बल हो गयी थीं। विभीषण उन्हें रामके
पास ले आये। सीताने सानन्द और सजल नेत्रोंसे रामको
वन्दन किया। वह साक्षात शक्तिस्वरूपा थीं। राम भी जानते
थे, कि सीताका सतीत्व अखण्ड है। फिर भी लोकापवादके
भयसे वह उनको ग्रहण करनेमें संकोच करने लगे। सीताने
अपनी सत्यता दिखानेके लिये अग्निप्रवेश किया। सांचको आंच
कहां? वह ज्योंकी त्यों बाहर निकल आयीं। यह देख और देव-
ताओंकी बात सुन रामको विश्वास हो गया, कि वह निष्कलङ्क
हैं। विरहिणी सीता रामके मुखारविन्दको देख प्रसन्न हुई और
रामने अपना प्रेम प्रकाशितकर उनका कष्ट दूर कर दिया।

विभीषणका अभिषेक—लङ्कापति रावण और
उसके सहचारी राक्षस प्रजा जनोंको दुःख देते थे। ऋषि मुनि
व्याकुल हो रहे थे और अन्याय अत्याचारकी वृद्धि हो गयी

थी। रामने अङ्गदको भेज उसे समझानेका प्रयत्न किया; परन्तु जब उसने न माना तब उन्होंने राक्षस कुलका नाशकर प्रजाकी रक्षाकी। शरणागत विभीषणकी नीतिज्ञता देख रामने उसे लङ्का का शासनाधिकार प्रदान किया। यथा विधि उसका अभिषेक हुआ और जनताके कष्ट दूर कर दिये गये। लङ्का लक्ष्मीकी मूर्ति थी। धनादिककी वहां बड़ी विपुलता थी। विभीषणने रामको बहुत कुछ देना चाहा, परन्तु न उन्होंने कुछ लिया न और किसीको लेने दिया। रामकी नीति ऐसीही थी। यही कारण है, कि आज भी उनके गुणोंका गान होता है और उनकी उज्वल कीर्ति दिगन्तोंमें व्याप्त हो रही है। उनकी इस नीतिसे यह शिक्षा प्राप्त होती है, कि राजाओंको प्रथम अन्यायी नृपतिको उपदेश देना चाहिये। उससे केवल ऐसी अवस्थामें युद्ध करना चाहिये जब कि वह उस उपदेशकी अवहेलना करे। युद्ध करने पर यदि वह शरण आ जाय और नीति-न्याय-युक्त आचरण करनेकी प्रतिज्ञा करे तो क्षमा कर उसे नागरिकके अधिकारसे रहने देना चाहिये। उसके राज्यकी व्यवस्था करनेके लिये वहींका प्रजा प्रिय और न्याय नीतिज्ञ अधिकारी नियत करना चाहिये। इस कर्त्तव्य-पालनके अतिरिक्त विजेताको कोई और भावना या अभिलाषा न होनी चाहिये। इससे उस देशकी प्रजा सुखी रहती है और वहां धन-धान्य तथा ऐश्वर्य्यकी वृद्धि होती है। इस प्रकारकी नीतिको काममें लानेवाले नरेशोंकी सदा सर्वदा प्रशंसा हुआ करती है।

रामका अयोध्या गमन—रामने लङ्काकी ऐसी राज्य व्यवस्थाकी, कि प्रजाको कोई कष्ट न रहा। वनवासकी अवधि समाप्त होने आयी थी, अतः पुष्पक विमान मंगाया गया। राम, लक्ष्मण, सीता, सुग्रीव और हनुमानादि उसमें बैठ अयोध्या चले। मार्गमें लोकपाल पुष्प वृष्टि करते थे और ब्राह्मण उनके चरित्रका गान करते थे। राम अरण्यमें जहाँ जहाँ रहे थे, कठिनाइयां उठायी थीं और दिन बिताये थे, वह सब स्थान सीताको दिखाते जाते थे। अनेक ऋषियोंके दर्शन करते हुए वह अवधिके अन्तिम दिन भारद्वाजके आश्रममें पहुंचे। उन्होंने रामका बड़ा सत्कार किया और अयोध्याकी खबर बतलाते हुए कहा कि भरत तपस्वीका वेश धारण कर नन्दीग्राममें आपकी मार्ग प्रतीक्षा कर रहे हैं। यदि आप निश्चित समय पर वहां न पहुंचेंगे तो वह अपना शरीर त्याग देंगे। रामने यह सुन उनको सूचना देनेके लिये हनुमानको विदा किया। हनुमानने जाकर भरतको समाचार सूचित किया। भरत अग्नि-प्रवेशकी तय्यारी कर रहे थे। हनुमानकी बात सुन वह पुलकित हो उठे। उनके हर्षकी सीमा न रही। हनुमानको वह उपहार देने लगे और अपने भाग्यकी प्रशंसा करने लगे। शत्रुघ्नको भेज देव मन्दिरोंमें पूजा करायी और नगर-निवासियोंको सूचना दी। रास्ते सजाये गये और सुगन्धित जलका छिड़काव किया गया। पताकायें उड़ने लगीं और बन्दनवार बाँधे गये। स्त्रियां मङ्गल गाने लगीं और वाद्योंका मधुर घोष होने लगा। बाल, युवा और

वृद्ध सभी अपने अपने घरसे निकल पड़े। अगवानीकी तय्यारी हुई और चारों ओर धूम मचने लगी। प्रजा, मन्त्री और सैनिकोंका दल वाद्योंकी गगन भेदी ध्वनि करता हुआ नगरके बाहर पहुंचा। पालकीमें बैठालकर कौशल्या सबके आगे की गयीं। उनके पीछे सुमित्रादि और मातायें रखी गयीं। मृदङ्ग भेरी और शङ्खोंका मङ्गल-नाद होने लगा। भरतने रामकी पादुकायें शिरोधार्य्य कीं, मन्त्रीगण पैदल चले और गायन तथा वादनका स्वर सुख पहुंचाने लगा। योद्धागण अपने वीर वेशमें सुसज्जित थे। सोने और चांदीके साजसे सजाये हुए हाथी झूम रहे थे। चित्र विचित्र ध्वजालंकृत रथोंकी शोभा, छत्र और चामरोंकी छटा कुछ और ही थी। यह सुशोभित और सुसज्जित समुदाय रामका विमान देख हर्षनाद करने लगा। वाद्योंकी एकत्र ध्वनि उस पार पहुंच गयी और राम विमानसे नीचे उतर पड़े।

भरत भेंट—भरत रामको देख उनके चरणोंमें गिर पड़े। उनकी आंखोंसे जल बहने लगा। रामने उन्हें उठा कर गले लगाया। भरतने वह पादुकायें उनके सम्मुख रख कहा—"लीजिये, यह अपना राज्य संभालिये। आज मेरा जन्म और मनोरथ सफल हुआ। आपके प्रतापसे सेना और कोषमें किसी प्रकारकी न्यूनता नहीं हुई। आप सब कुछ संभालकर मुझे बन्धनमुक्त कीजिये"। रामने भरतको बारम्बार आलिंगन किया। इसी प्रकार सीता और लक्ष्मणसे भेंट हुई।

रामादिकने ब्राह्मणादि योग्य पुरुषोंके चरण स्पर्श किये। प्रजाने रामको प्रणाम किया। बहुत दिनोंके बिछुड़े हुए लक्ष्मणादिकको देख जनता पुष्प-वृष्टि कर हर्षोन्मत्त हो गयी, भरतने पादुकायें उठायीं, विभीषण तथा सुग्रीवने चमर उठाये और हनुमानने छत्र उठाया, शत्रुघ्नने धनुष और बाण उठाये, सीताने तीर्थोदकका कमण्डल उठाया, अङ्गदने तलवार और जाम्बन्तने ढाल उठायी। वन्दीगण स्तुति करने लगे। इस तरह रामने नगर प्रवेश किया। इसके बाद माता, गुरु, मित्र तथा अन्यान्य लोगोंका रामने यथोचित सत्कार किया। वशिष्ठने उनकी जटायें उतरवायीं और तीर्थोदकसे स्नान कराया। शुभ मुहूर्त्त में यथा विधि उनका अभिषेक हुआ और वह प्रेम पूर्वक प्रजा-पालन करने लगे।

सीताका परित्याग—लोकमत जाननेके लिये रामने अनेकानेक गुप्तचर नियत किये थे और आवश्यकतानुसार वह स्वयं भी वेश बदलकर नगर-चर्चा सुनने निकल पड़ते थे। इस समय नगरके एक धोबीने अपनी स्त्रीको दुराचारिणी कहकर उसे निकाल दिया था। उस स्त्रीके पिताने विनय अनुनय कर उसके पतिसे उसको स्वीकार करने को कहा। राम सारा हाल देख रहे थे। धोबी स्वयं व्यसनी और दुष्ट था, किन्तु उसने उत्तर दिया, कि मैं राम नहीं हूं, जो रावणके यहां रही हुई सीताकी भांति इसको पुनः स्वीकार कर लूं। रामको उसकी यह बात सुन बड़ा बुरा लगा यद्यपि उनका पूर्ण विश्वास था, कि सीता

निष्कलङ्क है, उसका पातिव्रत अखण्ड है तथापि जनता का भ्रम दूर करना ही उन्होंने उचित समझा। वह लक्ष्मणसे कहने लगे—"देखो! सीता परमसती है; मुझे उसके चरित्रपर लेशमात्र भी सन्देह नहीं है। फिर भी जनतामें भ्रम फैल रहा है। इस लोकापवादको दूर करनेके लिये मैं सीताका परित्याग करता हूं। वह कल ऋषियोंके दर्शनार्थ उनके आश्रममें जाना चाहती है। तुम उसे गङ्गाके उस पार ले जाना और वहीं छोड़कर चले आना।" रामकी यह बात सुन लक्ष्मणको बड़ा दुःख हुआ। वह कहने लगे—"सीताको मैं माताके समान मानता हूं। मैं उनको छोड़कर कैसे लौट सकूंगा!" उन्होंने अनेक प्रकारसे रामको समझाया और प्रार्थना की, कि आप ऐसा न करें परन्तु राम अपने निश्चयपर अटल रहे। रामकी आज्ञाका पालन करना ही परम धर्म मानकर लक्ष्मण विवश हो सीताको गङ्गाके उस पार ले गये। वहां अत्यन्त दुखित होकर सारा हाल कह सुनाया और उन्हें धैर्य्य देने लगे। सीता पर मानो वज्रपात हुआ। वह कटे हुए कदली वृक्षके समान मूर्च्छित हो गिर पड़ीं, परन्तु भ्रातृ-सेवक लक्ष्मण रोते हुए अयोध्या लौट आये। कुछ समयके बाद जब सीताको चेत हुआ और लक्ष्मण भी न दिखाई पड़े तब वह उच्चस्वरसे रुदन करने लगी। उस समय वाल्मीकि वहाँ स्नान करने गये थे। वह रुदनशब्द सुनकर सीताके निकट गये और उन्हें आश्वासन दे अपने आश्रममें लिवा ले गये। ऋषि-पत्नीने उनका बड़ा सत्कार किया और धैर्य्य दिया।

लव-कुश जन्म—सीता गर्भवती थीं। यथा समय उन्होंने लव और कुश नामक दो तेजस्वी और पराक्रमी पुत्रोंको प्रसव किया। ऋषि प्रवर वाल्मीकिने उनका लालन-पालन कर उन्हें शिक्षित बनाया। लोकापवादसे मुक्त होनेके लिये रामने सीताका त्याग तो कर दिया, परन्तु वह उनके बिना बहुत दुःखी रहने लगे। उनका चित्त उदास और अशान्त बना रहता था। इस व्यग्रताको दूर करनेके लिये ऋषियोंने उनसे यज्ञ करनेको कहा। रामने अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान किया। सीताके अभावमें उन्होंने उनकी सुवर्ण प्रतिमा स्थापित की। इसी बातसे वह सीताको कितना चाहते थे, इसका पता चलता है। वास्तवमें सीता उनके हृदयसे दूर न हुई थी। प्रजाका भ्रम और मनोविकार दूर करनेके लिये ही उन्होंने उनका त्याग किया था।

यथा नियम अश्व छोड़ा गया। वह विचरण करता हुआ वल्मीकिके आश्रममें जा पहुंचा। सुकुमार किन्तु पराक्रमी बालक लव और कुशने उस अश्वको बांध लिया। उसकी रक्षाके लिये हनुमानादिकों अधीनतामें जो विशाल सेना थी, वह युद्ध करने लगी। परन्तु लव और कुशने तीक्ष्ण बाणोंकी वृष्टि कर सबको मूर्च्छित कर डाला। यह अद्भुत समाचार सुन राम स्वयं यज्ञको छोड़, युद्धार्थ उपस्थित हुए। पिता और पुत्रोंमें युद्धकी तय्यारियां हुईं। परस्पर कोई किसीको पहचानता न था। अकस्मात् रामके चित्तमें वात्सल्य भाव उत्पन्न हुआ और उनका हृदय किसी विलक्षण आकर्षण शक्ति-

द्वारा उन बालकोंकी ओर आकर्षित होने लगा। राम ऐसा होनेका कारण न समझ सके, किन्तु साधारणही उनसे कुछ प्रश्न कर बैठे। उसी समय वहां वल्मीकि भी आ पहुंचे। उन्हों-ने परस्पर एक दूसरेका परिचय कराया और सीताको भी भेंट करायी। राम अपने पुत्रोंको देख बड़े प्रसन्न हुए। वह सीता सहित दोनों पुत्रोंको अयोध्य लिवा गये और यज्ञको समाप्त किया। रामने इसी भांति अनेक अश्वमेध और पौंडरी-कादि यज्ञ किये।

रामकी नित्यचर्य्या—वन्दीजनोंके मङ्गलगान सुन राम अरुणोदयके पूर्वही शय्याका त्याग करते थे। फिर वहिर्दिशागमन और हस्त मुख पादादि प्रक्षालनकर स्नान करते। इसके बाद सन्ध्योपासन और अग्नि होत्रादि नित्य कर्मोंसे निवृत्त हो; गुरु वशिष्ट तथा अन्य ब्राह्मणोंका पूजन करते। मध्याह्नकालमें पुनः सन्ध्या ब्रह्म-यज्ञ कर अतिथियोंको भोजन कराते। यह सब हो जानेके बाद वह स्वयं भोजन करते और दरबार जाते। रामके पूर्वही भरत, शत्रुघ्न, लक्ष्मण तथा माण्डलिक नरेश वहां पहुंच जाते थे। उनके आतेही सब लोग खड़े हो उनका स्वागत करते और उनके सिंहासनारूढ़ होनेके बाद सब लोग अपना अपना स्थान ग्रहण करते थे। राम सर्व प्रथम राजकार्य्य तथा प्रजाकार्य्य करते, फिर ऐतिहासिक चर्चा श्रवण करते, देश देशान्तरोंकी बातें सुनते और यथा समय सभा विसर्जित करते। सायं सन्ध्यादिसे निवृत्त हो वह अन्तःपुरमें

प्रवेश करते और कभी कभी वेश बदलकर नगर चर्चा सुनने निकल पड़ते थे।

रामका अधिकार—समस्त भारत, लङ्का और उसके आसपासके टापुओं पर रामका पूर्ण अधिकार था। जिस समय वह सिंहासनारूढ़ हुए, उस समय नौनसौ नरेशोंने उपस्थित होकर उनकी अधीनता स्वीकार की थी। भारतके चारोंओर उनका अधिकार था। वह बड़ी योग्यतासे शासन-कार्य्य करते थे। लक्ष्मण प्रतिदिन सभामें यही प्रकाशित करते, कि एक भी मुकद्दमा नहीं आया। इसका कारण रामकी शासन-प्रणाली ही थी। न कोई अपराध करता था, न किसी को दण्ड देनेकी आवश्यकता पड़ती थी। प्रजाका आचरण ऐसा उत्तम था, कि किसीको स्वप्नमें भी न्याय-मन्दिर तक जाना न पड़ता था। उनके दरबारमें मार्कण्डेय, मौद्गल्य, वामदेव, वशिष्ठ, काश्यप, जावालि, गौतम और नारदादि नव मंत्री थे।

रामराज्य—रामकी नीति उत्तम और न्याय अद्वितीय था। उनकी प्रजा भी नीतिमान थी। अनीतिमान कोई न था। अपराध होते ही न थे। "दण्ड" तो केवल संन्यासियोंके हाथमें ही दिखायी पड़ता। "बन्धन" और "मार" का अनुभव पशुओं-को भी न मिलता था सबको स्वधर्मपर प्रेम था। लोग दीर्घायु थे। वृक्षोंमें इच्छानुकूल फल और फूल उत्पन्न होते थे। वर्षा

यथोचित परिमाणमें आवश्यकतानुसार होती थी। वायु निरन्तर शुद्ध रहती थी। रोग, शोक, ग्लानि, भय, असमय वृद्धत्व और चिन्तादिक मानसिक किंवा शारीरिक व्याधियां किसीको न होती थीं। समस्त जनता प्रसन्न और सन्तुष्ट रहती थी। लोगोंको शिक्षा देनेके लिये राम स्वयं गृहस्थाश्रमके कठिन धर्मोंका यथानियम पालन करते थे। महात्मा और आचार्यों की सम्मतिको मानकर केवल शिक्षा देनेके लियेही उन्होंने यज्ञोंका अनुष्ठान किया था। उनकी प्रजा उन्हें पिताके समान समझती थी। त्रेतायुग होने पर भी इन बातोंको देख, सत्ययुगका भ्रम होता था। वर्णाश्रमधर्म्म और नीतिका पालन यहांतक होता था, कि किसीकी अकाल मृत्यु होतीही न थी। स्त्रियां वैधव्य दशाको न प्राप्त होती थीं। चोरोंका भय तो थाही नहीं। विद्या और कलाओंकी उन्नति होती थी। प्रजा आज कलकी तरह "टैक्सों" के भारसे दबी हुई न थी। उसे उतनाही राजस्व देना पड़ता था, जितना कि वह आसानीसे दे सकती थी। स्वजनों और मन्त्रियोंका भी प्रेम सम्पादन करनेमें राम सफल हुए थे। प्रजाका प्रेम तो बाल्यावस्थामें ही प्रकट हो चुका था; किन्तु अब उनकी न्याय और नीतियुक्त शासन व्यवस्था देख, वह चरम सीमाको पहुंच गया था। प्रजामें पूर्ण राज्य-भक्ति दृष्टिगोचर होती थी। वह शास्त्रोंकी आज्ञानुसार उन्हें साक्षात् ईश्वर रूप समझकर पूजती और आज भी वह उसी प्रकार पूजनीय, माननीय और मुक्तिदाता माने जाते हैं। सर्वत्र उनके नामका स्मरण

और भजन होता है। यही ईश्वरावतारका अवर्ण्य चिन्ह और उनकी दिगन्त-व्यापिनी कीर्ति है।

राम-राज्यमें जीव मात्र सुखी थे। किसीकी अकाल मृत्यु न होती थी। एक दिन एक ब्राह्मणपुत्र अचानक मृत्युको प्राप्त हुआ। ब्राह्मण क्रुद्ध हो उसका शव ले रामके पास जा पहुंचा और कहने लगा कि, मेरे पुत्रको सजीवन कर दीजिये अन्यथा मैं प्राण त्याग दूंगा। राम विचारमें पड़ गये और सोचने लगे, कि अवश्य कुछ अधर्म्म हुआ है। उन्होंने विद्वान और धार्म्मिक व्यक्तियोंको एकत्रकर इसका कारण पूछा। उन्होंने बतलाया, कि, वर्णाश्रम धर्म्मको हानि पहुंचे बिना ऐसा कदापि नहीं हो सकता। कोई शूद्र कहीं गुप्त रूपसे तप कर रहा होगा। यह सुन रामने कुवेरका पुष्पक विमान मंगाया और उसमें बैठ अकाशसे निरीक्षण करने लगे। सब स्थानोंको जांच लेनेके बाद वह ऋषियोंकी तपोभूमि देखने गये। वहां एक गुफामें किसी शूद्रको तप करते देख वह उससे कहने लगे, कि शूद्रको तप करनेका अधिकार नहीं है; अतः तू यह काया-कष्ट उठाना छोड़ दे और वर्णाश्रम धर्म्मानुसार आचरण कर। उसने उनकी बात न सुनी और पूर्ववत् अपने कार्य्यमें लगा रहा। रामने उसे वर्णाश्रम धर्म्मको न माननेके कारण दोषी बताकर मार डाला। उसके मारते ही ब्राह्मण-पुत्र जिवित हो गया। आशीर्वाद देते हुए वह पिता पुत्र अपने घर गये।

एक दिन लक्ष्मण नित्य नियमानुसार न्यायालय गये:

वहां उन्हें मनुष्य तो एक भी न मिला, परन्तु एक कुत्ता दुःखित सा खड़ा दिखायी पड़ा। लक्ष्मणने नियमानुसार रामको सूचना दी और उसे उनके सम्मुख उपस्थित किया। रामने जांच की तो उन्हें ज्ञात हुआ कि एक संन्यासीने बिना कारण उसे तीन दण्ड मार दिये थे। उन्होंने उस संन्यासीको बुलाकर यथोचित न्याय कर उस श्वानको सन्तुष्ट किया। इसी प्रकार एक दिन वहां दो पक्षी लड़ते हुए पाये गये। रामने उनका भी न्याय किया। उन्होंने प्रजाको वर्णाश्रम धर्म्मकी शिक्षा देते हुए सदा नीति और न्यायपूर्वक राज्य किया। अन्तमें लव और कुशको पृथक पृथक प्रदेश दे, उन्होंने स्वयं निवृत्ति ग्रहण की।

रामने इस प्रकार राज्यकी व्यवस्थाकर, वर्णाश्रम धर्म्मका पूर्ण पालन किया। यथोचित यज्ञादिक क्रियायें भी कीं। अन्तमें दण्डकारण्यके कांटोंसे बिन्धे हुए चरणारविन्दोंको भक्तजनोंके हृदयमें स्थापितकर यह इहलोक लीला समाप्त कर गये। जिन्होंने उनका स्पर्श किया था, दर्शन किये थे, साथ बैठे, पीछे चले थे, वह कौशल देशके निवासी भी योगियोंकी सी उत्तम गतिको प्राप्त हुए। रामने देवताओंकी प्रार्थनानुसार लीलावतार धारण किया था। उनके समान किंवा अधिक किसीका प्रभाव नहीं है। उन्होंने शस्त्रास्त्रोंका प्रयोगकर राक्षसोंका नाश किया और सेतुकी रचना करायी, यह उनके लिये कुछ भी कठिन न था। वानरोंकी सहायता ली यह तो केवल उनकी लीला थी। उनके निर्म्मल यशोंको ऋषि मुनि राजा और प्रजा आज भी गा रहे हैं।

प्राचीन कालके ऋषि मुनि और महापुरुषोंने जीवनका उपयोग व्यवसाय किंवा प्रपञ्च वृत्तिमें "परम" नहीं समझा। परोपकार, लोकहित और परलोकके सुख साधित करनेमेंही उन्होंने जीवनका हेतु "परम" माना है। वह तदनुसार प्रजाको सदाचारी बनानेके लिये नियमोंकी रचना भी कर गये हैं। उन्होंने सबसे अधिक जिम्मेदारी राजा पर रखी है। राजाही मनुष्यके जीवनका आधार भूत है। उसका श्रेय अश्रेय सभी कुछ राजा ही पर निर्भर है।

रामने इसी बातका निश्चय कर सीताका त्याग किया था। उन्होंने सोचा था, कि कहीं प्रजा मेरे इस कार्य्यका अनुकरण न करने लगे! राजा यदि धर्मविद और नीतिमान होगा तो प्रजा भी उसका अनुकरण कर वैसीही बन जायगी। राजा यदि व्यसनी और दुराचारी होगा, तो प्रजा भी ठीक वैसीही होगी। राजा नीतिका पोषक और प्रवर्त्तक है और होनाही चाहिये। यदि वह शुद्ध नीतिका पालन न करेगा तो प्रजा हित की हानि होगी। प्रजाका व्यवहार सुघड़ और सरल हो, उसके आचरण धर्मानुकूल रहें, इस बातका विचार करके ही राजाको कार्य्य करना चाहिये। राजाके आचरणको देखकरही प्रजा आचरण करती है। यह एक स्वाभाविक नियम है। अनुभव सिद्ध सिद्धान्त है। प्रजा पर राजाके शासनसे वह प्रभाव नहीं पड़ता जो कि उसके आचरणसे पड़ता है। महर्षियोंने राजा, राजकुमार और मन्त्रियोंका इसी लिये सदाचारी होना परमावश्यक बत-

लाया है। प्रजाको सदाचारी बनानेके लिये उनको भी सदाचारका पालन करना चाहिये। राजाका सुख और दुःख प्रजाके सुख दुःख पर अवलम्बित है। सदाचारी बन प्रजाको सुखी बनाना स्वयं उसके हाथकी बात है। प्रजाकी उन्नति किंवा अवनतिका मूल वही है। हमारे प्राचीन ऋषियोंने हमें यही बतलाया है। यहांकी आर्य्य प्रजा भी इसे बराबर मानती चली आयी है। जो राजा इस प्रकार आचरण नहीं करता, उसकी अधोगति होती है। रामकी नीति सर्वोत्तम थी। वह अपना कर्तव्य समझते थे और तदनुसार आचरण भी करते थे। उन्होंने प्रजाको सदाचारी बनाकर सुख सम्पत्तिकी वृद्धि की थी। यही कारण है, कि आज युगके युग बीत जाने पर भी उनकी कीर्तिका नाश नहीं हुआ। नीति-शास्त्रकी रक्षाकर वह मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाये। उनके जीवनकी प्रत्येक घटना हमारे लिये अनुकरणीय है। धन्य है ऐसे आदर्शको !!!

परशुराम

महर्षि भृगुके वंशमें ऋचिक नामक एक विख्यात ऋषि हुए। उनके पुत्रका नाम यमदग्नि था। सप्त ऋषियोंमें उनकी गणना की जाती थी। उन्हींके यहां त्रेताके प्रारम्भमें परशुरामका जन्म हुआ। इनका विष्णुके दशावतारोंमें छठवां और चौबीस अवतारोंमें उन्नीसवां नम्बर है। परशुराम अपने चार भाइयोंमें सबसे बड़े थे। वह महा तेजस्वी, विद्वान, न्यायनीतिज्ञ, तत्वज्ञ, पराक्रमी, उत्साही, बलवान, तामसी और क्षत्रित्व गुणों में श्रेष्ट थे। उनके आयुधका नाम था 'परशु'। उसका वार भी रामके बाण की तरह खाली न जाता था। शिव उनके गुरु थे। उन्हींके द्वारा इन्होंने सर्व विद्यायें प्राप्त की थीं। विद्योपार्जनके निमित्त वह दीर्घ काल पर्य्यन्त कैलाशमें रहे थे। बल्यावस्थामें वह अपनी माता रेणुका द्वारा शिक्षित और पालित हुए थे। उत्तम माताओंके पुत्र भी उत्तम ही होते हैं—यह इनसे सिद्ध होता है। भीष्म और द्रोणाचार्य्यके वह गुरु थे। उन दोनोंने इन्हींसे धनुर्विद्या प्राप्त की थी। उत्तम गुरुके शिष्य भी उत्तम होते हैं। इस बातका यह उदाहरण है। परशुरामकी शिक्षा दीक्षा और प्रतापसे ही उनके शिष्य श्रेष्ट हुए—यह सर्वथा सिद्ध है। परशुरामके समयमें क्षत्रिय अविचारी हो गये थे। वह ब्राह्मणोंका सम्मान और ऋषियोंकी

रक्षा न करते थे। देशमें अधर्मकी वृद्धि हो गयी थी और प्रजा परिपीड़ित हो रही थी। क्षत्रियोंकी अनीति और देशकी दुर्दशा देख यमदग्निको बड़ा खेद हुआ। धर्मकी स्थापनाके लिये विष्णुने अपना तेज उनको प्रदान किया। उसी तेजके प्रतापसे परशुराम जैसे तेजस्वी पुत्रका जन्म हुआ। यही कारण है, कि वह अंशावतारी गिने जाते हैं। राम और कृष्ण विष्णुके साक्षात् अवतार माने जाते हैं। शिवने उनको अपना त्र्यम्बक धनुष दे-कर कहा था, कि जब यह धनुष खण्डित होगा तब तुम्हारा तेज विलुप्त हो जायगा। उनकी यह भविष्यवाणी त्रेताके अन्तमें सत्य प्रमाणित हुई थी। परशुराम विश्वामित्रकी बहिनके पौत्र होते थे।

परशुरामका आश्रम गंगाके तट पर था। उस समय यहां सूर्य्यवंशी सहस्रार्जुनका अधिकार था। वह एक चक्रवर्ती नरेश था और उसकी राजधानी माहिष्मतीमें थी। सती रेणुकाकी बहिनका विवाह उसीके साथ हुआ था। सहस्रार्जुन और उसके पुत्र उन्मत्त, अत्याचारी और प्रजापीड़क थे। एक समय वह और उसके सैनिक शिकार खेलने गये। उनके साथ रेणुकाकी बहिन भी थी। विचरण करते हुए वह यमदग्निके आश्रममें आ पहुंचे। ऋषिने उनका अनेक प्रकारसे सत्कार किया रेणुका अपनी बहिनसे मिलकर अतीव प्रसन्न हुई। ऋषिके पास इन्द्रकी दी हुई एक कामधेनु थी। उसके द्वारा विविध प्रकारके व्यञ्जन प्राप्त कर ऋषिने सबको भोजन कराया। सहस्रार्जुनको यह देख बड़ा आश्चर्य्य हुआ। उसने उसकी याचनाकी। ऋषिने पराई

वस्तु देना अस्वीकार किया। वह उसे बलात् ले चलता बना। इस समय परशुराम वहां न थे। वह कहीं तीर्थाटन करने गये थे। जब वह लौटे तब यह हाल सुना। उनके क्रोधकी सीमा न रही। वह तुरन्त माहिष्मती पहुंचे और सहस्रार्जुनसे कहा कि गाय लौटा दे अन्यथा युद्ध कर! वह भी क्रुद्ध हो सैन्य सहित युद्धार्थ प्रस्तुत हुआ। परस्पर भीषण संग्राम हुआ। परशुरामने उसके नौ सौ पुत्र मार डाले और सैन्यको नष्ट भ्रष्ट कर दिया। एक सौ पुत्र और थे परन्तु वह भाग गये। सहस्रार्जुनके हाथ काट डाले और निर्दयता पूर्वक मार डाला। उसके राज्यकी व्यवस्थाकर कामधेनु पिताको ला दी और आप एक चक्रवर्तीकी हत्याके पापसे मुक्त होनेके लिये प्रायश्चित करने चले गये।

एक दिन सती रेणुका गङ्गाजल भरने गयीं। वहां गन्धर्वराज चित्रकेतुकी जल क्रीड़ा और ऐश्वर्य्य देख वह भ्रमित हो गयीं। यमदग्निको यह जानकर बड़ा क्रोध आया। उन्होंने परशुरामसे कहा—"अपनी माताका शिर काट लो"। परशुराम महाज्ञानी और विचारशील थे। वह सोचने लगे, कि मैं यदि पिताकी आज्ञा न मानूंगा तो वह शाप दे देंगे। परन्तु माताका शिर काट लेने पर भी वह उन्हें सजीवन कर सकते हैं। अतः उनकी आज्ञाका पालन करनाही उचित है। यह सोच उन्होंने तुरन्त पिताकी आज्ञानुसार अपनी माताको मार डाला और दोनों हाथ जोड़ उनके सम्मुख खड़े हो गये। ऋषि उनकी पितृभक्ति

देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उनसे वरदान मांगनेको कहा। परशुरामने कहा—"यदि आप प्रसन्न हैं तो मेरी इच्छासे माताको इस प्रकार सजीवन कर दीजिये कि मैंने उनका वध किया है, यह बात वह न जान सकें।" ऋषिने कहा—"तथास्तु"। रेणुका उनके योगबलसे पुनः जीवित हो उठीं। उनको उपरोक्त घटनाका कुछ भी ज्ञान न था. फिर भी परशुरामने उनसे सब समाचार निवेदन किये और क्षमा प्रार्थना की। रेणुकाने कहा—"पुत्र! इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं। दैव जो चाहता है, वही होता है। उसके सामने किसीकी चतुराई नहीं चलती। तुमने पिताकी आज्ञा शिरोधार्य्य की यह बहुतही अच्छा किया, माता पिताकी आज्ञाका पालन करना ही सुपुत्रोंका परम धर्म्म है। तुम्हारे समान आज्ञाकारी सुपुत्रको पाकर मैं बड़ी प्रसन्न हूं और अपनेको धन्य समझती हूं। जो लड़के माता पिताकी आज्ञा नहीं मानते और उनकी सेवा नहीं करते, वह कुपुत्र गिने जाते हैं और पापके भागी होते हैं। माता पिताकी आज्ञा मानना और उनकी सेवा करना यही सुपुत्रोंका कर्तव्य है। रेणुकाकी यह बातें सुन परशुरामने उनको प्रणाम किया और उनकी आज्ञा प्राप्त कर इस दोषके निवारणार्थ तीर्थाटन करने चले गये।

परशुरामकी अनुपस्थिति देख सहस्रार्जुनके वह सौ पुत्र जो रणसे भाग गये थे, उनके आश्रममें आ पहुंचे। वहां यमदग्नि होम कर रहे थे। उन्होंने अपने पिताका बदला लेनेका विचार कर उन्हें मार डाला और इधर उधर भाग गये। रेणुका

महर्षिकी यह दशा देख दुःखित हो विलाप करने लगीं। उन्होंने अपने हृदयपर इक्कीस बार हस्ताघात कर परशुरामको याद किया। उन्हें भी योग शक्ति द्वारा यह समाचार ज्ञात हो गये। वह तत्काल माताके पास पहुंचे और क्रुद्ध हो प्रतिज्ञाकी कि—"माताने क्षत्रियों द्वारा त्रसित हो इक्कीस बार मुझे याद किया अतः अन्यायी और अत्याचारी क्षत्रियोंका इक्कीस बार विनाश करूंगा। अपने पिताका बदला लूंगा और ऋचिक आदि पूर्वजोंको उनके रक्तसे तर्पण कर तृप्त करूंगा।"

इस प्रकार भीषण प्रतिज्ञाकर उन्होंने माताको धैर्य दिया और उन्हें शान्त करनेके लिये पिताको सजीवन किया। इसके बाद वह तुरन्तही दुष्टोंका संहार करनेको तत्पर हुए। उन्होंने अत्याचारियोंका मूलोच्छेद कर प्रजाको सुख देनेका निश्चय किया। अपने समानही वीर योद्धाओंका एक दल सङ्गठित कर अनेक विद्वानोंकी सहायता प्राप्त की। धर्म और प्रजाका पक्ष लेने वाले अनेक वीरोंने उनका साथ दिया। उन्होंने सहस्त्रावधि अत्याचारियोंको बन्दी बनाया और दण्ड दिया। सारी पृथ्वी एक विस्तृत रणक्षेत्रके रूपमें परिणत हो गयी। समस्त संसारमें युद्ध होने लगा। सहस्त्राबाहुके सभी पुत्र मार डाले गये और प्रजा पीड़कोंका विनाश किया गया। परशुरामने इस प्रकार इक्कीस बार पृथक पृथक राज्योंपर आक्रमण किया और अत्याचारी क्षत्रियोंका नाश किया। अनेक क्षत्रियोंने रेणुकाकी शरण ले उनसे जीवनदानकी प्रार्थना की। परशुरामने माताकी आज्ञा

मान उन्हें छोड़ दिया। ब्रह्मनिष्ठ राजा जनक और अपुत्र एवम् धर्मनिष्ठ राजा दशरथ भी बच गये। इनके अतिरिक्त समस्त क्षत्रियोंका वध किया गया। उनके रक्तसे पांच कुण्ड भर गये थे जो कि "रामह्रद" नामसे प्रसिद्ध हुए।

परशुराम बड़े न्यायी थे। अधिकृत प्रदेशों पर उन्होंने अपना अधिकार न रक्खा। जिन्होंने आत्म-समर्पण कर दिया था उन्हें उनके राज्य लौटा दिये। और जो भूमि शेष बची वह कश्यप ऋषिको दान कर दी। ऐसी व्यवस्थाकर वह निश्चिन्त हो तप करने लगे। फिर भी, किसी उन्मत्त शासकके अन्यायकी बात सुन वह तुरन्त वहां पहुंचते, उसे मार डालते और उसके स्थान पर किसी योग्य व्यक्तिको नियुक्त करते थे। कुछ दिनोंके बाद उनसे कश्यप ऋषिने कहा,-कि आप अपनी दान दी हुई भूमि पर निवास करते हैं, यह अधर्माचरण है। यह सुन परशु-रामने वहांका आवगमन त्याग दिया और समुद्र तटपर कुछ भूमि प्राप्त कर वहां निवास करने लगे। इस प्रदेशका नाम उन्होंने शूर्पारक रक्खा। इस समय वही कोकन कहा जाता है और अरबी समुद्रके किनारे स्थित है।

क्षत्रियोंका विनाश करनेके बाद एक दिन वह मिथिलापुरी गये। ब्रह्मनिष्ठ राजा जनकने बड़ा सत्कार किया और सिंहा-सन पर बैठाल विधिवत् पूजा की। परशुराम महादेवका दिया हुआ वह त्र्यंबक धनुष, परशु और बाण वहीं छोड़ भोजन करने चले गये। लौट कर देखा तो सात वर्षकी सीता

उस धनुषको घोड़ा बनाये खेल रही थी। उनके आश्चर्यकी सीमा न रही। जनकसे कहने लगे—"यह कन्या बड़ी अद्भुत है और लक्ष्मीका अवतार प्रतीत होती है। इस धनुषको अनेक मनुष्य भी मिलकर नहीं उठा सकते। इसने अनायास ही उठा लिया। आप प्रतिज्ञा करिये, स्वयम्बरमें जो इसे चढ़ा सके वही इसका पाणिग्रहण करे।" जनकने यह आदेश मान तदनुसार प्रतिज्ञा की। परशुराम धनुषको वहीं छोड़ अपने आश्रमको चले गये।

जनकने यथा समय सीताका स्वयम्बर किया। रामने उस धनुषको तोड़ डाला। सीताका विवाह उन्हींके साथ हुआ। यह त्रेतायुगके अन्तकी बात है। परशुरामको ज्ञान-दृष्टिसे धनुष-भङ्गकी घटनाका ज्ञान हुआ। वह तत्काल वहां पहुंचे और पूछा—"धनुष किसने तोड़ा है?" जनकको भी चिन्ता हुई, कि धनुष चढ़ानेकी बात थी, किन्तु वह टूट गया, यह बड़ा अनर्थ हुआ। सब लोग थरथर कांपने लगे, परन्तु रामने निर्भीक और नम्र हो सब बातें समझा दीं। परशुरामको ज्ञात होगया, कि राम ईश्वरावतार हैं। वह उन्हें हृदय से लगा भेंट पड़े। वह समझ गये, कि मेरा काम संसारमें पूर्ण हो चुका। अतः वह अपना कार्य-भार रामको दे तपस्या करने चले गये।

यह राजर्षि ब्राह्मण कुलमें महान पराक्रमी, गो-ब्राह्मण प्रतिपालक और प्रजा-रक्षक हुए। शारीरिक और आत्मिक शक्तिसे

वह विश्वविजेता हुए और प्रजामें भगवान कहलानेका सम्मान प्राप्त कर सके। अर्वाचीन ब्राह्मण बुद्धिके मनुष्योंको इस बात पर ध्यान देना चाहिये! जब वह तपस्या कर रहे थे, तब उन्हें काशीराजकी कन्या हस्तिनापुर लिवा ले गयी। वहां उन्होंने भीष्मको उसका पाणिग्रहण करनेके लिये समझाया। भीष्म ने उनकी बात न मानी। अतः उन दोनोंमें-गुरु शिष्य होनेपर भी परस्पर भीषण युद्ध हुआ। अनेक ग्रन्थोंमें लिखा है, कि वह अमर हैं और मन्द्राचल पर तपस्या करते हैं। ब्रह्मचारी, योगी और यशस्वी पुरुषोंका अमर होना स्वाभाविक है। धन्य है ऐसे महापुरुषको! भगवन्! भारतके उद्धारार्थ पुनः ऐसेही वीर और विजयी पुरुषोंका यहां जन्म हो!

कपिलमुनि

यह तत्वज्ञानी महापुरुष कर्दम ऋषिके पुत्र थे। चौबीस अवतारोंमें यह पांचवें अवतार माने गये हैं। इनकी माताका नाम था देवहुति। वह स्वायम्भूमनुकी पुत्री थीं। कर्दम ऋषिकी गणना प्रजापतियोंमें होती है। कपिल देवका जन्म पुष्करके समीप हुआ था। यह महामुनि सिद्ध माने जाते हैं और इनकी गणना देवताओंकी कोटिमें होती है। ये महा तेजस्वी थे। इनका अवतार परोपकारके लियेही हुआ था। इन्होंने सांख्य शास्त्रकी रचनाकर पृथ्वीके अनेक अधर्मों का नाश किया है। ये भोग-विलासादि प्रपञ्चोंमें बिलकुलही लिप्त न हुए थे और संसारसे सर्वथा विरक्त थे। सरस्वती क्षेत्रमें अपनी माताको ब्रह्मविद्याका उपदेश दे, इन्होंने मोक्षमार्ग दिखाया था। साध्वी देवहुति उसे सुन मुक्त हो गयी थीं। वहां कपिल देवका आश्रम था। उन्होंने अनेकानेक लोगोंको उपदेश दे, उनका उद्धार किया। गङ्गासागरके समीप उन्होंने योगाभ्यास किया था। आज भी कलकत्तेके पास उनका आश्रम है। सहस्रावधि लोग वहां यात्रा करने जाते हैं।

राजा सगरने ६६ यज्ञ निर्विघ्न समाप्त किये थे। अन्तिम अश्वमेधके समय जो अश्व छोड़ा गया, उसे इन्द्र चुरा ले गये। इस समय महामुनि कपिल पातालमें समाधिस्थ हो तपस्यामें लीन थे। इन्द्र उस अश्वको चुपचाप उन्हींके पीछे बांध आये। सगरके पुत्र उसकी खोज करते करते थक गये; परन्तु उसका पता न लगा। अन्तमें किसी प्रकार वे वहां जा पहुंचे, जहां वह अश्व बँधा हुआ था। वे कपिलदेवको जानते न थे। समझे कि यह कोई धूर्त्त है और अश्वको चुराकर यहां आ छिपा है। उन्होंने क्रुद्ध हो शोर मचाया और प्रहार भी किये। मुनिका ध्यान छूट गया और समाधि टूट गयी। ज्योंही उन्होंने आँख खोल उनकी ओर देखा, त्योंही वह सबके सब भस्म हो गये। सगरको सूचना देनेके लिये भी कोई जीवित न बचा। बहुत दिन व्यतीत हो गये। एक भी मनुष्य उनके पास न पहुंचा। उन्हें बड़ा आश्चर्य और चिन्ता हुई। कुछ सोच विचारकर उन्होंने अंशुमानको प्रेषित किया। अंशुमानने कपिलदेवकी स्तुति कर वह अश्व प्राप्त किया। उसे अपने पितृव्योंकी दशा भी ज्ञात हुई। मुनिने यह भी कहा, कि पतित पावनी गङ्गाके प्रवाहमें लीन होतेही इनको मुक्ति होगी। अंशुमान उन्हें प्रणाम कर चला आया। कपिलदेव पुनः समाधिमें लीन हो गये, उन्होंने बहुत दूर दूर तक भ्रमण किया था। वह सर्वत्र सांख्ययोगका उपदेश देते थे। अनेक स्थानोंमें शास्त्रार्थ कर वह विजयी हुए थे।

सांख्य धर्म सिद्धान्त—ब्रह्मविद्या आत्मनिष्ठ योगी पुरुषोंके श्रेयका साधन है। उसीसे सुख और दुःखको निवृत्ति होती है। चित्तही जीवके बन्धन और मुक्तिका कारण है। चित्तके विषयासक्त होनेसे जीव बन्धनमें पड़ता है और ब्रह्ममें लीन होनेसे मुक्त होता है। आकाश, अग्नि, जल, वायु और पृथ्वी आदि तत्वोंके स्वरूप जानकर प्राण और अपानको गतिको रुद्ध करनेसे असङ्ग चैतन्यरूप आत्मा स्वयं अपनी प्रकाशमान ज्योतिसे भासमान होता है। उसके भासित होने पर वह जान जाता है कि इन्द्रियोंके सब व्यवहार मिथ्या हैं। सांख्ययोगमें चौबीस तत्वोंके ज्ञानसे मुक्ति मानी गयी है। ज्ञानरूपी आत्मा—पुरुष चैतन्य है। वह अकर्ता है। साक्षी स्वरुप है। सृष्टि कार्य और सुख दुःखकी रचना करनेवाली त्रिगुण युक्त प्रकृति जड़ है और भोक्ता रूप आत्मा—पुरुष चैतन्य है। दोनों एक साथ रहते हैं। प्रकृतिका रूपान्तर होता है परन्तु पुरुषका नहीं होता। प्रकृति पुरुषके सम्बन्धसेही स्वतः गतिको प्राप्त होता है। पुरुष प्रकृतिके कर्मादि अपने समझकर मोहबद्ध हो दुखी होता है। शुभाशुभ कर्तव्य करते रहनेसे जन्म जन्मान्तरको प्राप्त होता है। जन्म और मरणकी व्याधिसे मुक्त होनेके लिये सूक्ष्म (लिङ्ग) देहका सम्बन्ध तोड़ देना चाहिये। अनेक प्रकारके सुख दुःख प्रकृतिके साधारण धर्म हैं। वह स्वयं अकर्ता है। इसके अतिरिक्त आत्माका पूर्ण स्वरूप जब प्रतीत हो जाता है तभी मुक्ति प्राप्त हो सकती है। पूर्ण आत्म-

ज्ञानसे प्रकृतिका नाश होता है अर्थात् प्रकृतिके समस्त बन्धन टूट जाते हैं तथा शुद्ध चैतन्यका ज्ञान होकर देहीकी मुक्ति हो जाती है।

कपिल मुनिका ज्ञान अतीव शिक्षाप्रद है। सज्जनोंको उसका विशेष ज्ञान प्राप्त करनेका उद्योग करना चाहिये। कपिलदेवने तपोबलसे निरहंकार अर्थात् देहादिमें अहं बुद्धि शून्य अखण्ड भक्ति द्वारा ब्रह्म स्वरूपको प्राप्त किया था।
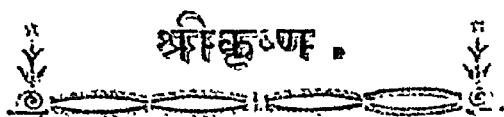
श्रीकृष्ण

जिसका योगी और मुनि निरन्तर ध्यान करते हैं, जिसका स्मरण और पूजन मोक्षदायक माना जाता है, जिसका चरित्र सुननेको आर्यगण सदा उत्सुक रहते हैं और जिसकी अलौकिक शक्ति विश्वविख्यात है, वही आनन्द कन्द श्रीकृष्णचन्द्र कंसादिक असुरोंका संहार, साधुओंका परित्राण, अद्भुत लीलाका विस्तार और धर्मकी स्थापनाके लिये द्वापरके अन्तमें यदुवंशी देवकी तथा वसुदेवके यहाँ पुत्र रूपमें उत्पन्न हुए। यह साक्षात् ईश्वरके अवतार थे। भूमिष्ट होनेके पूर्व माता-पिताको अपने तेजोमय सुन्दर और चतुर्भुज स्वरूपमें दर्शन दे उन्होंने बतलाया था, कि—"मैं तुम्हारी तीन जन्मोंकी तपस्या देखकर तुम्हारे यहां जन्म ले रहा हूं। मुझे गोकुलमें नन्दके यहां छोड़ आना। मैं वहां अपनी बाललीला समाप्त कर यहां आऊंगा और कंसादिकका नाश कर धर्मकी स्थापना करूंगा"। इस प्रकार कह, वह अन्तर्धान हो गये और फिर बाल-रूपहो भूमिष्ट हुए। देवकीने समझा, कि पुत्र-जन्म हुआ। पति-पत्नी दोनोंको चतुर्भुजी मूर्तिकी बात स्वप्नवत् प्रतीत हुई। देवकी उसे स्तनपान कराने लगीं। एकाएक कारागृहके द्वारा खुल गये और वसुदेवकी बेड़ियां टूट गयीं। आंख उठाकर देखा तो समस्त प्रहरी घोर

निद्रामें लीन दिखाई पड़े। वसुदेवने स्वप्नकी बातको ईश्वरीय आदेश मान उस बच्चेको उठा लिया और भाद्र-पक्षके कृष्ण पक्षकी अन्धकारमयी निशामें गोकुलकी ओर चल पड़े। अष्टमीका दिन था और अर्धरात्रिका समय। आकाश मेघाच्छन्न था, फिर भी चन्द्रने उदित हो मार्ग दिखानेका उद्योग किया। शेषने अपने शरीरका पथ और फणका छत्र बना कण्टक और वर्षासे उनकी रक्षा की। जब वह यमुनाको पार करने लगे तब उसका जल उमड़ पड़ा। वह चिन्तित और दुःखी हुए। वास्तवमें यमुना बालरूप भगवानका चरण स्पर्श करना चाहती थीं। कृष्णने अपना पैर नीचेको लटका दिया। उसका स्पर्श होतेही जल उतर गया और वसुदेव गोकुल जा पहुंचे। वहां नन्दका द्वार भी उन्हें खुला ही मिला। अन्दर गये तो सब लोग निद्रित दशामें अचेत पड़े हुए दिखायी दिये। यशोदाके पास एक कन्या पड़ी थी। वसुदेवने उसे उठा लिया और कृष्णको वहीं सुला दिया। उसी क्षण वह मथुरा लौट आये और पूर्ववत् बन्दी-गृहमें बन्द हो गये। बेड़ियां ज्योंकी त्यों जकड़ गयीं और द्वार अवरुद्ध हो गये। योगमाया रूपी वह कन्या अब रोने लगी। चौकीदारोंकी आंखें खुल गयीं। उन्होंने तत्काल कंसको सूचना दी और वह वहां जा पहुंचा। उसने देवकीसे वह कन्या छीन ली और पत्थर पर पटकनेकी तैयारीकी। ज्योंही उसने पैर पकड़ उसे ऊपरको उठाया त्योंही वह उसके हाथसे छूट आकाशमें चली गयी। कंस अवाक्

रह गया। ऊपरकी ओर देखा तो कन्याके स्थानमें एक देवी मूर्त्ति दिखाई पड़ी। अष्टभुजाओंमें आयुधादि धारण कर वह कह रहीं थी—"मूढ़! मुझे मारनेका व्यर्थ उद्योग क्यों करता है? तेरा शत्रु तो गोकुलमें उत्पन्न हो चुका।" कंस यह सुन विस्मय चकित हो गया, योगमाया अन्तर्ध्यान हो गयी, अब कंस लज्जित हो पश्चात्ताप करने लगा और उदास हो लौट गया।

योगमायाकी अकाशवाणी उसके हृदयमें खटकने लगी और वह चिन्तातुर रहने लगा। एक दिन उसने राज सभामें राक्षसोंसे कहा—"मेरा शुत्र गोकुलमें उत्पन्न हो चुका है। सब लोग उसकी खोज करो। जहां नवजात शिशु मिलें, उनका नाश कर दो। यदि इतना करने पर भी वह न मिले तो गौ, ब्राह्मण और भक्तोंको कष्ट दो। ऐसा करनेसे वह अवश्य प्रकट होगा।" उसकी यह आज्ञा प्राप्त कर राक्षसोंने चारों ओर अत्याचार करना आरम्भ किया। बालकोंका नाश करने लगे और ब्राह्मणोंको कष्ट पहुंचाने लगे। अनेक यादवोंने त्रसित होकर उस देशका त्याग किया। जरासिन्धु, नरकासुर पुण्डरीक, शिशुपाल और दंतवक्रादि पापी राजा अपनी अपनी प्रजापर अत्याचार करने लगे। गौ, ब्राह्मण, साधु और धर्मका ध्वंस होने लगा। वर्णाश्रम धर्म, वेदाध्ययन और वेदोक्त क्रियायें बन्द हो गयीं। सब लोग भयभीत हो कांपने और त्राहि त्राहि करने लगे। "जिस राजाकी प्रजा दुखित हो त्राहि त्राहि करने लगती है उस राजाका सत्वर विनाश होता है, यह महापुरुषोंकी

उक्ति है।" कंस तदनुसार ही अपना विनाश अपने हाथों करने लगा।

गोकुलमें नन्दके यहां पुत्र जन्म हुआ—यह जान सारे नगरमें उत्सव मनाया गया। सदाशिव भी योगीका वेश धारण कर बालमुकुन्दके दर्शनार्थ जा पहुंचे। रोहिणी नामक वसुदेवके एक दूसरी स्त्री थी। वह नन्दहीके यहाँ थी। नन्द वसुदेवके बड़े पुराने और विश्वास पात्र मित्र थे। रोहिणिने भी उसी दिन एक पुत्रको जन्म दिया था। महर्षि गर्ग नामकरण करनेके लिये बुलाये गये। उन्होंने रोहिणीके पुत्रका नाम बलदेव और देवकी-पुत्र, जो कि इस समय यशोदानन्दन कहे जा रहे थे—उन्हें साक्षात् विष्णुस्वरूप जान उनका नाम श्री कृष्ण रक्खा। श्रीकृष्णकी आकृति मध्यम, नेत्र कमल समान, नासिका सरल और वर्ण घनश्याम था।

वह पीताम्बरके विशेष प्रेमी थे। अध्यात्म-ज्ञानके तो भण्डार ही थे। उनके शस्त्रास्त्रोंका वार कभी खाली न जाता था। उन्होंने संध्याह्निक नित्यकर्म करनेकी दीक्षा उपमन्यु ऋषिसे ग्रहण की थी। तदनुसार वह यथानियम और यथा समय उपासनादि नित्य कर्म करनेको प्रस्तुत रहते थे। व्यास, वशिष्ठ, नारद और सनकादि ऋषि-मुनियोंको योगबलसे यह ज्ञात हो गया था, कि यह भगवान विष्णुके साक्षात अवतार हैं। उन्होंने जन्मसे लेकर ग्यारह वर्षकी अवस्थामें, जब कंसका वध किया, तबतक बाललीलाकी। ईश्वरके पूर्णावतार होने परभी

अपनी मायाका विस्तार कर उन्होंने लोगोंको अनेक प्रकारकी शिक्षा देनेका प्रयत्न किया।

बाल लीला——कंसको अब चैन कहाँ? उसे योगमायाकी बातपर पूरा पूरा विश्वास हो गया था। प्रति-पल वह अपने शत्रुको खोज, उसे मार डालनेकी चिन्तामें व्यग्र रहता था। राक्षसोंने चारों ओर अत्याचार करना आरम्भ कर दिया था। केवल सन्देह वश, सैकड़ों सुकुमार बच्चे निर्दयता पूर्वक मार डाले जाते थे और अनेक अभागे दम्पतियोंके लाल जबर्दस्ती उनके हाथोंसे छीन लिये जाते थे। लाख यत्न करने परभी कृष्ण और बलदेव उन दानवोंकी दृष्टिसे न बच सके। कंसको तुरन्त सूचना दी गयी, क्योंकि नन्दके प्रभाव, उनके व्यक्तित्व और प्रबन्धके कारण वहां हरएककी दाल न गलती थी।

कंसने सोचविचार करनेके बाद इस कार्यका भार पूतना नामक राक्षसीको दिया। वह एक सुन्दर ग्वालिनका वेश धारणकर नन्दके घर गयी। यसोदाने उसका यथोचित सत्कार कर बैठनेको आसन दिया। पूतनाने बड़े प्रेमसे कृष्ण-को उठा लिया और उन्हें स्तनपान कराने लगी। उस दुष्टाने स्तनोंपर विष लगा रक्खा था। उसने समझ रक्खा था, कि विषपान करते ही कृष्णका अन्त हो जायगा, परन्तु मायापतिसे ही उसकी यह माया कैसे चल सकती थी! कृष्ण स्तनपान करते हुए उसकी जीवनी शक्तिका हरण करने लगे। पूतनाकी

व्याकुलता बढ़ने लगी। अङ्गप्रत्यङ्गमें असह्य वेदना होने लगी और अन्तमें उसकी आंखें उलट गयीं। उसने अपने आपको छुड़ाना चाहा, परन्तु कृष्णने न छोड़ा। वह चिल्लाती हुई वहां से भगी और निर्जीव हो गिर पड़ी। नन्द वहांसे कृष्णको उठा-लाये और उनकी रक्षापर परमात्माको धन्यवाद देने लगे।

इस घटनाको देख कंसको दृढ़ विश्वास हो गया, कि कृष्णही मेरा शत्रु है। अग्नि, रोग, ऋण और रिपुको बढ़नेका अवसर न दे आरम्भहीमें नाश करना चाहिये। यह सोच वह उनके मारनेकी प्राणपणसे चेष्टा करने लगा। प्रतिदिन एक न एक वधिक इस कार्यके लिये गोकुल जाता और यथाशक्ति प्रयत्न करता।

एक दिन एक राक्षस ब्राह्मणके वेशमें वहां गया, उसने यशोदासे कृष्णके दर्शनकी अभिलाषा प्रकट की। यशोदा जल भरने जा रहीं थीं, अतः लौट आनेतक बैठनेकी प्रार्थना की। कृष्ण भी उस समय सो रहे थे। यशोदाकी अनुपस्थिति देख उस राक्षसने उन्हें मार डालना चाहा और उनके पास गया। कृष्णने उसकी जीभ पकड़कर ऐंठ दी। और मुंहमें दही भर दिया। आसपास जो पात्र पड़े थे वह भी तोड़ फोड़ डाले।

यशोदाने आकर देखा, कि मटुकियां फूटी पड़ी हैं, दही दूधका कीचड़ मच रहा है और ब्राह्मण देवता घबड़ा रहे हैं। उन्होंने उससे पूछा,—"दही खाया तो खाया यह बरतन क्यों फोड़ डाले।

राक्षसमें बोलनेकी शक्ति न थी। उसने कृष्णकी ओर उंगली उठादी। यशोदाको विश्वास न हुआ। एक अबोध बालक यह सब कैसे कर सकता है? उन्होंने उसे ही दोषी समझा, परन्तु ब्राह्मण जान केवल घरसे निकाल दिया और कोई सजा न दी।

इसके बाद कागासुर पहुंचा। कृष्णने उसकी गरदन ऐंठ फेंक दिया और वह निर्जीव हो कंसके सम्मुख जा गिरा। फिर शकटासुरकी बारी आई और उसकी भी यही दशा हुई एक दिन तृणावर्त्त आया और वह यशोदा सहित कृष्णको उठा ले जानेकी बात सोचने लगा। इतनेमें बड़े जोरसे आंधी आयी। कृष्णने अपना वजन बढ़ा दिया। यशोदा उन्हें उठाकर अन्दर न ले जा सकीं। समझाने पर भी वह आप न उठे। यशोदा ज्योंहीं वहाँसे स्थानान्तरित हुई त्योंहीं कृष्णने उस दुष्ट-का गला घोट डाला। वह निर्जीव हो, वहीं गिर गया। यह देख यशोदादिके आश्चर्य्यका वारापार न रहा। उन्होंने कृष्णकी बलैयां ले बहुत कुछ दान पुण्य किया।

एक दिन किसीने शिकायत कर दी, कि कृष्णने मिट्टी खा-ली है। यशोदाने उन्हें धमकाकर मुंह दिखानेको कहा। कृष्णने अपनी निर्दोपिता सिद्ध करनेके लिये उनके सम्मुख अपना मुंह खोल दिया। यशोदाको उसमें तीनों लोक दिखायी पड़ने लगे और। उनके आश्चर्य्यकी सीमा न रही।

शुक्ल पक्षके चन्द्रकी तरह कृष्णचन्द्रकी कला भी

बढ़ती जा रही थी। ज्यों ज्यों वह बड़े होते गये त्यों त्यों अपनी बाल लीलाका विस्तार करने लगे। गोकुलकी समस्त जनता उनको अधिकाधिक चाहने लगी। सबका स्नेह-भाव उनपर बढ़ताही गया। यहांतक कि वह उत्पात करें, दही दूध नष्ट करदें, बरतन फोड़ दें, तब भी वह उन्हें उसी भावसे बुलाते, बैठाते और खिलाते। गोकुलका एक भी घर ऐसा न था। जहां कृष्णका आवागमन न हो। वह प्रत्येक घरमें जाते, खेल कूद करते, दही दूध खाते और मौज उड़ाते थे। कहीं कहीं उत्पात कर बैठते और हंसी खेलमें मटुकियां फोड़ डालते थे। क्षणमात्रमें वह उत्पातकर इधरसे उधर हो जाते। उनमें इतनी चञ्चलता, इतनी स्फूर्ति, इतना चिलबिला-पन था, कि उन्हें स्थानान्तरित होते देरही न लगती थी। एक दिन मुहल्लेमें बड़ा उत्पात मचाया। प्रत्येक घरमें कुछ न कुछ तोड़ फोड़ दिया। चारों ओरसे यशोदाके पास उलाहने आने लगे। यशोदाने कहा, कृष्ण तो कहीं गयाही नहीं। वास्तव-में बात कुछ ऐसीही थी। उन्हें इसका पताही न रहता था कि कृष्ण कब बाहर जाते हैं और कब लौट आते हैं। वह इधर उधर काम करके आतीं, तो उन्हें घरमेंही पातीं। कृष्णको अनेक स्थानोंमें देख लोगोंको भ्रम हो जाता था। उन्हें मालूम पड़ता कि अनेक कृष्ण एकही समय अनेक स्थानोंमें विचरण कर रहे हैं। इसका कारण उनका चिलबिलापन ही था।

एक दिन कृष्णने अपनेही घरमें उत्पात मचाया। वह और

उनके बाल मित्रोंने खूब दही दूध और माखन उड़ाया। अन्तमें मट्टकियां फोड़ डालीं और घर भरमें दही दूधकी नदियां बहा दीं। यशोदाने आकर यह देखा और बड़ा क्रोध प्रकट किया। सब लड़के तो भाग गये, परन्तु कृष्ण पकड़ लिये गये। यशोदाने उनकी कमर एक दामनसे बांध दी और उसका सिरा एक वजनदार ऊखलमें, अटका दिया। कृष्ण बैठे बैठे रोते और विनय अनुनय करते रहे, परन्तु छूट न सके। यशोदाने आज कठोर दण्ड देनेका निश्चय किया था अतः मुहल्लेकी कितनीही स्त्रियोंके समझाने बुझाने पर भी, उन्हें न छोड़ा। कृष्णने खड़े हो उस ऊखलको आँगनकी ओर घसीटना आरम्भ किया। वह बड़े हृष्ट पुष्ट और बलिष्ट थे। फिर भी यह काम साधारण बच्चों की शक्तिके बाहर था। कृष्ण जमीन पर पैर अड़ा अड़ाकर उसे दामनके सहारे खींचते और कुछ न कुछ खिसका ही ले जाते। उनके आँगनमें दो वृक्ष थे। वह दोनों पासही पास थे। कृष्णने उस ऊखलको उन दोनोंके बीचमें फंसा कर ऐसा जोर लगाया, कि वह उखड़ कर गिर पड़े। लोगोंके आश्चर्यका वारा पार न रहा। उन वृक्षोंको गिरा देना आसान काम न था। यशोदाने विस्मित हो, सहर्ष उन्हें बन्धन-मुक्त कर दिया। कुवेरके दो पुत्र नारदके शापसे इन वृक्षोंके रूपमें परिवर्तित हो गये थे। वृक्षोंके उखड़तेही उन दोनोंका उद्धार हुआ। उन्होंने दिव्य रूपमें प्रकट हो कृष्णकी स्तुतिकी और फिर अन्तर्ध्यान हो गये।

कृष्णकी यह लीला देख, गोकुलके लोगोंको जितना हर्ष

होता था, कंसको उसका सौगुना संताप होता था। उसने अब तक कृष्णको मार डालनेके लिये जितनी चालें चली थीं वह सब बेकार हो गयी थीं। जितनी चेष्टायें की गयीं वे सभी निष्फल सिद्ध हुईं थीं। उसका एक भी प्रयत्न सफल न हुआ था। कंसने अब असुरोंको बड़ी कड़ी आज्ञा दी, खूब प्रलोभन भी दिया। कहा—"किसी न किसी तरह कृष्णको अवश्य मार डालो। इसी लिये राक्षसोंका उत्पात अब बहुत बढ़ गया था। गोकुलमें आये दिन एक न एक अनर्थ होने लगा। नन्दको बड़ी चिन्ता हुई। वह गोकुलको छोड़ वृन्दावनमें जा बसे। वह समझे, कि अब सुरक्षित स्थानमें आ गये, परन्तु कंसके अनुचरोंने वहां भी पीछा न छोड़ा। वह तो कृष्णकी घातमें थे। नन्द चाहे घरमें रहें या जङ्गलमें, गोकुलमें रहें या वृदावनमें उन्हें तो अपने कामसे काम था।

जब कृष्णकी अवस्था पाँच वर्षकी हुई, तब वह अपने बाल-मित्रोंके साथ बछड़ोंको चरानेके लिये जङ्गलमें जाने लगे। एक दिन एक राक्षस बछड़ेका रूप धारणकर उन्हें मारनेकी चेष्टा करने लगा। कृष्णको यह रहस्य मालूम होगया। उन्होंने पैर पकड़ उसे इस जोरसे पटका कि उसके प्राण निकल गये। दूसरे दिन बकासुर आ पहुंचा। वह बड़ेही भयानक पक्षीके रूपमें था। कृष्णके निकट वह चोंच फैलाकर बैठ गया। कृष्ण उसके उदरमें प्रवेश कर गये। ज्योंही वह अन्दर पहुंचे त्योंही उसके पेटमें दाह होने लगा। उसने कृष्णको उसी क्षण बाहर

निकाल दिया। कृष्णने उसकी चोंच पकड़ कर चीर डाली। सब लड़के उसके विकसित मुखमें बैठ, खेल करने लगे। कृष्ण भी उन्हींमें जा मिले। परन्तु राक्षसका प्राण अभी निकला न था। उसने सबको अपने मुखमें बैठे देख, बड़े वेगसे सांस ली। सांसके साथही सबके सब उसके पेटमें चले गये। राक्षस प्रसन्न हुआ, परन्तु लड़कोंके प्राण संकटमें जापड़े। कृष्णने तुरन्त अपना शरीर बढ़ाना आरम्भ किया, यहां तक, कि वत्सासुरका पेट फट गया और सबके सब बाहर निकल पड़े।

एक दिन बछड़े चर रहे थे। ग्वाल-बालोंको क्षुधा लग रही थी। सबके सब एक साथ भोजन करने बैठ गये। कृष्णने भी उनका साथ दिया। देवताओंको यह देख सन्देह हुआ। उन्होंने कृष्णकी परीक्षा लेनेका निश्चय किया और बछड़े कहीं स्थानान्तरित कर दिये। ग्वाल-बाल खा पीकर उठे तो बछड़े गायब! वे घबड़ाने और रोने लगे। कृष्णने उन्हें आश्वासन दिया और उसी रूप रङ्गके बछड़े तय्यार कर दिये। बछड़ोंको पाकर ग्वाल-बाल बड़े प्रसन्न हुए और देवताओंको भी विश्वास हो गया, कि कृष्ण सभी कुछ करनेमें समर्थ हैं।

इसी प्रकार श्री कृष्ण अनेक लीलाओंका विस्तार कर रहे थे। एक दिन गायोंको खोजते खोजते गोपगण श्रीकृष्णसे विलग हो गये। परिश्रम करनेके कारण उन्होंने अत्यन्त तृषित होकर यमुनाका जल पी लिया। यमुनाका इस स्थानका जल विषाक्त था। उसे पीतेही सबके सब व्याकुल हो उठे। अचा-

तक श्री कृष्ण वहां जा पहुँचे और सबके प्राण बचाये। गोप उस दिनसे श्रीकृष्णका बड़ा उपकार मानने लगे।

एक दिन कंसको कहीं नारद मुनि मिल गये। उन्होंने उसे कृष्णके विनाशकी एक युक्ति बतायी। कंसने तदनुसार नन्दको कदम्ब पुष्प ला देने की आज्ञा दी। नन्द बड़े चिन्तातुर हुए। कदम्ब-वृक्ष यमुनाके उस भागमें स्थित था जहाँ भयङ्कर कालीय नागका निवास स्थान था। वहांसे कोई जीवित नहीं लौट सकता था। कृष्णको यह समाचार ज्ञात हुए। वह नित्य-नियमानुसार ग्वाल-बालोंके साथ गाँयें चराने गये। यमुनाके तटपर गायोंको छोड़ वह मित्रोंके साथ गेंद खेलने लगे। खेलते खेलते गेंद यमुनामें चला गया। शायद श्रीकृष्णने उसे जान बूझकर वहां फेंक दिया था। ग्वाल-बाल गेंद ला देनेके लिये उनसे झगड़ा करने लगे। कृष्णने कहा,—"धैर्य धरो, मैं अभी लाये देता हूं।"

इसके बाद वह कदम्बपर चढ़ यमुनाकी अगाध धारामें कूद पड़े। ज्योंही वह पानीमें पड़े त्योंही डुबकी लगाकर गायब हो गये और कालीय नागके पास जा पहुंचे। नाग-पत्नी उनका अलौकिक सौन्दर्य देख मोहित हो गयीं और कृष्णको लौट जानेके लिये समझाने लगीं। कृष्ण ने उनकी एक न सुनी और पूंछ उमेठ नागको जाग्रत किया। ज्योंहीं निद्रा भङ्ग हुई, त्योंही वह झल्लाकर बड़े वेगसे फुङ्कार करने लगा। कृष्णको उसने चारों ओरसे जकड़ लिया और उन्हें मार डालनेकी चेष्टा

करने लगा। कृष्ण भी सावधान थे। उन्होंने अपना शरीर परिवर्द्धित किया। नागने विवश हो उन्हें छोड़ दिया। श्री कृष्णने तुरन्त उसे नाथ पहना दी और उसके मस्तकपर खड़े हो वंशी ध्वनि करने लगे। उनके भारसे नाग व्याकुल हो अधमरा सा हो गया। कृष्णने उसे वह स्थान परित्याग कर रमणद्वीपमें रहनेकी आज्ञा दी। नागको ज्ञान उत्पन्न हो चुका था। उसने सपत्नीक उनकी प्रार्थना कर आज्ञा शिरोधार्य्य की। उसने कृष्णको तीन पुष्प और दो बहु मूल्य रत्न भी भेंट दिये। कृष्ण उन्हें ले बाहर निकल आये। नन्द बाबाको पुष्प और ग्वाल-बालोंको गेंद ला दिया। उस दिनसे यमुनाका जल निर्मल और अमृत समान हो गया।

कृष्णद्वारा वह पुष्प प्राप्त कर नन्दने कंसको दे दिये। उसकी यह युक्ति भी निष्फल हुई, परन्तु वह निराश न हुआ। उसने अब धुन्धक नामक राक्षसको भेजा। धुन्धक रात्रिके समय वृन्दावन गया। चारोंओर निस्तब्धता छा रही थी। लोग मधुर निद्राका आस्वादन कर रहे थे। सर्वत्र सन्नाटेका साम्राज्य था। राक्षसने यही समय अपने कार्यके लिये उपयुक्त समझा। उसने चारोंओर आग लगादी। समस्त वृन्दावन भयङ्कर लपटोंमें लीन होने लगा नगरके अधिवासीगण जाग पड़े और इस आपत्तिको देख घबड़ाने लगे। समूचा नगर ज्वाला-मय हो रहा था, अबोध पशु, पक्षी प्राण विसर्जन कर रहे थे। सबको अपने अपने प्राणोंकी पड़ी थी, उन बेचारोंकी

रक्षा कौन करे ? चारों ओर हाहाकार मच गया। नन्दकी भी निद्रा भङ्ग हो गयी। कृष्णादिककी रक्षाका उपाय सोचने लगे कृष्ण इस भीषण दृश्यको अधिक देर तक न देख सके। जिसकी कृपासे अगस्त ऋषि महासागरका पान कर गये थे, उसमें इस दावानलको अनायासही शान्त करनेकी शक्ति थी। इच्छा करतेही श्रीकृष्ण उस घोर दावानलका पान कर गये और राक्षसको मार डाला।

इसी प्रकार प्रतिदिन एक न एक उत्पात हुआ करता था। प्रत्येक राक्षस श्रीकृष्णको मारनेकी घातमें लगा रहता था। बात बातमें उनका छल प्रपञ्च और षड़यन्त्र दिखाई पड़ता था। परन्तु, श्रीकृष्ण सदा सावधान रहते थे। उनसे किसीकी एक न चलती थी। बलदेव भी धोखेमें न आते थे। वह भी विकट वेशधारी अनेक राक्षसोंका नाश कर चुके थे। बिचारा कंस इन बातोंको देख देखकर व्याकुल हो रहा था। उसे रातदिन चैन नहीं पड़ती थी। मारे चिन्ताके रातको नींद भी न आती थी। उसकी आशा निराशामें परिणत हो चली थी। देवताओंकी आकाशवाणीपर उसे विश्वास होने लगा था।

श्रीकृष्ण वंशी बजानेमें बड़े ही निपुण थे। अपनी वंशीपर उन्हें बड़ा प्रेम था। उसकी ध्वनि सबको मस्त बना देती थी। उसमें ऐसी मोहिनी शक्ति थी कि सुननेवाले जड़भरत बन जाते थे। दूरवाले पास आ जाते थे और पास वाले उसी ध्वनिमें लीन हो जाते थे। एक दिन उनकी गायें कहीं दूर

चली गयीं। खोज करनेपर भी उनका पता न मिला। श्री कृष्ण कदम्बपर चढ़ वंशीध्वनि करने लगे। उसको सुनतेही गायें मुग्ध हो दौड़ आयीं। नगरनिवासी एकत्र हो गये और पक्षीगण घोंसलोंसे निकल पड़े। क्या पशु, क्या पक्षी, और क्या मनुष्य, सबकी दशा एक समान थी। किसीको अपने तन बदनकी सुधि न थी। मयूर उसी वृक्षपर जा बैठे और उसी ध्वनिमें लीन हो गये। श्रीकृष्णकी वंशीमें ऐसीही अलौकिक मोहिनी थी। उसकी ध्वनिको सुन लोग अपना अपना काम छोड़ बैठते थे। उनकी वंशी जादूका काम करती थी; लोग उन्हें इसीलिये "मोहन" कहा करते थे।

कृष्णकी अवस्था अभी बहुत छोटी थी। वह देखनेमें एक साधारण बालक प्रतीत होते थे, परन्तु उनकी आत्मा क्षुद्र न थी। नीति और न्यायकी स्थापनाके बीज उनके हृदयमें शैशवावस्थासे ही अङ्कुरित हो उठे थे। वह अनीति और अधर्म नहीं देख सकते थे। उनके बाल्य जीवनकीही एक घटनासे हमें इसका परिचय मिलता है। एकदिन मदोन्मत्त गोप-ललनायें यमुना-स्नान करने गयीं। वह विवेक-शून्य हो नग्नावस्थामें जल-क्रीड़ा करने लगीं। कृष्णको इसका पता लगा। वह नीतिका यह खून न देख सके और तुरन्त घटना स्थलपर पहुंचे। पहले तो उन्होंने दण्ड देनेके अभिप्रायसे उनकी सांड़ियाँ हटा दीं। फिर युवतियोंको बहुत कुछ भला बुरा कहा और उपदेश दिया। उनकी बातोंका उन रमणियोंके हृदयपर बड़ा प्रभाव

पड़ा और उन्होंने क्षमा प्रार्थना एवं प्रतिज्ञाकी, कि अब ऐसा कभी न करेंगी। कृष्ण यह सुन लौट आये और फिर कभी ऐसी घटना न घटित हुई।

श्रीकृष्णके जीवनकालमें और अनेकानेक घटनायें घटित हुई थीं। वह सब चमत्कार पूर्ण और उनके अलौकिक सामर्थ्यकी द्योतक हैं। उनके प्रत्येक कार्यमें एक बात ऐसी पाई जाती थी जो उनके असाधारण गुण, अलौकिक शक्ति, अपूर्व साहस और अतुल प्रतिभाका परिचय देती थी।

एक दिन श्रीकृष्णने ऋषि और ऋषि-पत्नियोंका आन्तरिक भाव देखनेके विचारसे, उनके यहां अपने मित्रोंको भेज भोजन मांग लानेको कहा। ऋषि-पत्नियोंने जो कुछ तय्यार था वह सभी उठा दिया। कितनोही स्वयं उन्हें देने और देखने आयीं। ऋषियोंको यह देख कुछ आश्चर्य हुआ; परन्तु जब उन्होंने स्वयं श्रीकृष्णको देखा और उनकी बातें सुनीं तब उनका सन्देह जाता रहा। श्रीकृष्णको वह भी अलौकिक ज्ञानी और परम पुरुष मानने लगे।

गोवर्द्धन धारण—गोप-गण परम्परासे इन्द्रकी पूजा करते आते थे। कृष्णने उन्हें गोवर्द्धन-पूजाका आदेश दिया और गोप-गणोंने वैसाही किया। इन्द्रको यह देख सीमातीत क्रोध हुआ। मूसल धार वृष्टि होने लगी और सबको बड़ा कष्ट पहुंचा। कृष्णने गोवर्द्धनको छत्रकी तरह उठा लिया और उसके नीचे ग्वाल बाल अपने अपने गोधन सहित सानन्द बैठे

रहे। इन्द्रकी एक न चली। उनका गर्व खर्व हो गया। इसके लिये उन्हें श्रीकृष्णसे क्षमा प्रार्थना करनी पड़ी।

एक दिन यमुना-स्नान कर नन्द जलमें खड़े हो जाप कर रहे थे। वरुणके दूत उन्हें अपने स्वामीके पास पकड़ ले गये। श्रीकृष्ण तुरन्त वरुणके पास पहुंचे। कृष्णको देखतेही वरुणने क्षमा-प्रार्थना की और नन्दको बन्धन-मुक्त कर दिया। नन्द श्रीकृष्णका यह प्रभाव देखकर बड़े प्रसन्न हुए। इसी प्रकार उन्होंने सुदर्शन विद्याधरका उद्धार किया। वह धन और सौन्दर्य्य मदसे उन्मत्त हो गया था। अङ्गिरा ऋषिने उसे शाप दे दिया था और तबसे वह अजगर बन गया था। एक दिन उसने नन्दका एक पैर ग्रस लिया। श्रीकृष्णने ज्योंही अपने पैरसे उसको स्पर्श किया, त्योंही उसने नन्दको छोड़ दिया और अपने पूर्व-स्वरूपको प्राप्त हुआ। इसके अतिरिक्त उन्होंने कंस प्रेरित वृषभासुर, केशी, व्योमासुर इत्यादि अनेक राक्षसोंको सम्मुख आतेही मार डाला और अपने अलौकिक पराक्रमका परिचय दिया।

कंस इन अनेकानेक राक्षसोंका नाश देख भयभीत हुआ। उसे निश्चय हो गया, कि कृष्ण मुझे अवश्य मार डालेंगे। वह शोकातुर और चिन्तित रहने लगा। उसकी यह दशा देख मन्त्रियोंने धनुर्यज्ञ करनेका आदेश दिया। चित्तकी शान्तिके लिये यज्ञानुष्ठान करना श्रेयस्कर माना जाता था। कंसने उनकी बात मान ली। साथही उसने निश्चय किया, कि इस अवसर

पर कृष्णको निमन्त्रण दिया जाय और वहां आने पर उनको किसी प्रकार मार डालनेकी चेष्टाकी जाय। सारी बातें तय हो गयीं, अक्रूर कृष्ण और बलदेवको बुलाने गये। कंसका सन्देश सुन दोनों भाई बड़े प्रसन्न हुए। कुछ मित्रोंको साथ ले नन्द सहित वह मथुरा चले। वृन्दावन-निवासी उनके वियोगसे दुखी होने लगे। उनको विश्वास था, कि कंस इनके प्राण हरण करनेका उद्योग करेगा। श्रीकृष्णने सबको स्नेह-सूचक शब्दोंसे सम्बोधित कर शान्त किया और मथुराकी राह ली।

अक्रूरने श्रीकृष्णको अपना अभ्यागत बनाना चाहा परन्तु श्रीकृष्णने उनका आतिथ्य ग्रहण करनेसे इनकार किया। वह बोले—"हम तो कंसके अतिथि है अतः उन्हींका आतिथ्य ग्रहण करेंगे! आप उन्हें हमारे आगमनकी सूचना दें और हो सके तो हमारे माता पिताको भी सूचित कर दें। आपका आतिथ्य हम फिर किसी अवसर पर ग्रहण करेंगे।"

अक्रूरने जाकर कंसको खबर दी। कृष्णका आगमन सुनतेही उसके होश उड़ गये, हाथ पैर ढीले पड़ गये और चेहरे-पर उदासीकी काली घटा छा गयी। किसी तरह उसने अपनेको सम्हाला और मनको दृढ़ किया। कृष्णको मार डालनेकी बात उसने पहलेहीसे सोच रक्खी थी, अब उसे वह कार्य रूपमें परिणत करनेकी योजना करने लगा। उस ओर श्रीकृष्णने एक मनोहर वाटिकामें अपना डेरा डाल दिया।

दूसरे दिन वह अपने मित्रोंको साथ ले नगरकी शोभा देखने चले। मार्गमें उन्हें कंसका धोबी मिला। सबने उससे वस्त्र छीन लिये, वहाँ दरजी भी मिलगया और उसने वस्त्रोंको काट छाँटकर ठीक बना दिया। कृष्णके मित्रोंने उन्हें बड़ी प्रसन्नतासे पहन लिया।

आगे चलकर उन्हें कंसकी एक दासी मिली। वह कुब्जा थी। कृष्णपर उसका बड़ा अनुराग था। उसने चन्दनादिक ले उनकी पूजाकी। 'कृष्ण उसका भक्तिभाव देख अत्यन्त प्रसन्न हुए। मथुराकी जनता कृष्णका आगमन सुन उनके दर्शनार्थ उमड़ पड़ी। उसने कँसको भय छोड़ उनका स्वागत किया। आगे आगे श्रीकृष्ण वंशी-ध्वनि करते हुए जा रहे थे और उनके पीछे ग्वाल-बाल गाते बजाते नाचते कूदते चले आ रहे थे। दृश्य बड़ाही अपूर्व था। चारों ओरसे पुष्प वृष्टि हो रही थी और प्रजा प्रेमोन्मत्त हो उनका अनुसरण कर रही थी। इस समय अपङ्ग चलने लगे, अन्धे देखने लगे और बधिर सुनने लगे। मूक मनुष्य भी उनका गुणगान कर हर्षित हुए और रोगी निरोग हो गये। शक्तिहीन बालक दौड़ पड़े और वृद्धों ने जवानोंका स्थान ग्रहण किया। इस प्रकार श्रीकृष्णके आगमनसे मानो मथुरा पुरीके रोग, द्वेष, अज्ञान, शोक, भय, चिन्ता, आलस्य और अन्याय इत्यादि समस्त दोष नष्ट हो गये और उनका स्थान विवेक, धर्म, करुणा, भक्ति, प्रीति, आचार, जप, तप, क्षमा, सत्य और उद्योगादिने ग्रहण किया। चारों

ओर चहल पहल मची हुई थी। सबके मुख प्रसन्न थे, मानो आज वह किसी महा विपत्तिसे मुक्त हो गये हैं।

श्रीकृष्ण थोड़ी दूर और अग्रसर हुए तो एक ऊँचे चबूतरे पर एक विशाल धनुष रक्खा हुआ दिखायी पड़ा। उसकी अनेक मनुष्य रक्षा कर रहे थे। कंसने उसे स्थापित किया था और समस्त प्रजाको उसकी पूजा करनी पड़ती थी। वास्तवमें यह प्रजाके आत्मसम्मान नष्ट करनेकी चीज थी। प्रजाको अनिच्छा पूर्वक भी उसकी पूजा करनी ही पड़ती थी। श्रीकृष्णने उस धनुषके पास जाना चाहा परन्तु रक्षकोंने आज्ञा न दी। श्रीकृष्ण बलात् वहां चले गये और उस धनुषको तोड़कर दो टुकड़े कर दिये। रक्षकोंने उन पर आक्रमण किया; परन्तु श्रीकृष्णने उनका विनाश कर अपने अतुल बाहुबलका परिचय दिया। प्रजाके आत्माभिमानको पनपनेका इस प्रकार अवसर देकर श्रीकृष्णने मानो धर्मकी स्थापनाका सूत्र पात किया।

कंस यह समाचार सुनकर भयसे कांप उठा। अब उसका रहा सहा धीरज भी विलुप्त होगया। रात्रिको अनिष्ट सूचक स्वप्न आने लगे और दिनको भी कृष्णको काल मूर्ति उसकी आंखोंके सामने नाचने लगी भाँति-भाँतिके अशकुन होने लगे और उसका हृदय खिन्न रहने लगा। यह सब होते हुए भी विनाशकाले विपरीतबुद्धिःके अनुसार उसको चेत न हुआ। उसने कृष्णको शल, तुशल, चाणुर, मुष्टिक और कूट इन पांच भीषण काय मल्लोंसे मल्लयुद्ध करा कर मरवा डालनेकी योजना

की कृष्णको उसने इस बातकी सूचना भी न दी फिर भी उसे संशय था कि कहीं खबर पा, श्रीकृष्ण भाग न जायें। ऐसा न हो। अतः उसने कृष्णपर निगाह रखनेके लिये अनेक चरोंको नियुक्त किया था। श्रीकृष्णको यह सब समाचार ज्ञात हो चुके थे। वह तो उसका नाश करनाही चाहते थे अतः भागनेका विचार भी क्यों करते? शान्त हो उचित अवसरकी प्रतीक्षा करने लगे।

कंसने यथोचित प्रबन्ध कर लेनेके बाद श्री कृष्णको सभा-भवनमें बुला भेजा। श्री कृष्ण अपने बाल मित्रोंको साथ ले दरबारकी ओर चले। एक संकीर्ण पथसे होकर वह जा रहे थे। देखा तो मार्ग एक उन्मत्त हस्ती द्वारा अवरुद्ध है। कंस तक पहुँचनेका कोई दूसरा मार्ग न था। अतः सर्व प्रथम कृष्णको उस-काही सामना करना पड़ा। कंसने जान बूझकर हाथीको मदिरा पिलायी थी और उसे उन्मत्त बनाकर राजद्वारके पथमें छोड़ दिया था। उसके महावतको आज्ञा दी थी कि कृष्णको देखतेही उन पर इसे छोड़ देना और जिस तरह हो उन्हें मरवा डालना।

ग्वाल बाल उस हाथीको देखकर चौंक पड़े। श्रीकृष्णने उसके महावत कुन्तारसे कहा कि इसे हटाकर हम लोगोंको निकल जानेदे। कुन्तारने उनकी बात न सुनी और हाथीको उत्तेजित करने लगा। महा पराक्रमी श्रीकृष्ण हाथीकी पूंछ पकड़ उसे चक्राकार घुमाने लगे और घुमाते-घुमाते बड़ी दूर तक चले

गये। लोगोंने उनका यह सामर्थ्य देख दाँतों तले उङ्गली दबाली। चारों ओर हाहाकार मच गया। श्रीकृष्णने एक स्थान पर उसे पटक दिया। और उसके पैर पर बल पूर्वक दण्ड प्रहार किया। इस प्रहारसे वह हाथी अत्यन्त क्रुद्ध और उत्तेजित हो उठा। उसने श्रीकृष्णको चपेटमें लानेकी चेष्टा की, परन्तु वह उसके नीचेसे दूसरी ओर निकल गये। हाथी और चिढ़ा। श्रीकृष्णने पुनः उसपर प्रहार किया और दूर जा खड़े हुए। कुन्ता- रने हाथीको पुनः उन पर छोड़ दिया। इस वार उस उन्मत्त और क्रोधान्ध हाथीने श्रीकृष्णको अपनी ठोकरसे भूमिमें गिरा मिट्टीमें मिला देना चाहा और बड़े वेगसे आक्रमण किया। श्रीकृष्ण फुर्तीसे चंचलता पूर्वक स्थानान्तरित हो गये परन्तु हाथीका वार खाली न गया। उसके सुदीर्घ दन्तशूल भूमिमें प्रविष्ट हो गये। कृष्ण यदि उसकी चपेटमें आगये होते तो उसने निर्दयता पूर्वक कुचल दिया होता, परन्तु यह कैसे हो! आज तो उसीका अन्त होनेको था। ज्योंही उसके दोनों दाँत भूमिमें धंस गये त्योंही वह उन्हें निकालनेका प्रयत्न करने लगा। श्रीकृष्णने इस अवसरका लाभ ले उसके कुम्भस्थल पर बड़े जोरसे लात मारी और गर्दन उमेठ कर मार डाला। उसके साथही महावतका भी शिर उड़ा दिया। कृष्णने उसके दाँतोंको उखाड़कर कन्धेपर रख लिया और मुरलीकी मधुर ध्वनि करते हुए अग्रसर हुए। नाचते कूदते और हर्षनाद करते हुए ग्वाल-वाल भी पीछे चले। इस हाथीका नाम

कुवलयापीड़ था। वह एक तो योंही बड़ा बलिष्ट था, दूसरे मदिरा पिलाकर मस्त बनाया गया था. परन्तु श्रीकृष्णने अनायासही उसे मार डाला।

कंसने जब कुवलयापीड़की मृत्युका हाल सुना तब बड़ा चिन्तित हो उठा। उसके मनमें अनेक प्रकारके संकल्प-विकल्प उठने लगे। इसी क्षण कृष्ण वहाँ जा पहुंचे। सभाभवनने अखाड़े का रूप धारण किया था। बड़े बड़े मल्ल-पहलवान बैठे हुए थे। कंसने अपना सिंहासन एक ऊँचे मञ्चपर सजाया था। उसके आठ भाई पार्श्वमेंही रक्षार्थ उपस्थित थे। अनेक हृष्ट पुष्ट अङ्ग-रक्षक खड़े अपनी नङ्गी तलवारें चमका रहे थे। झरोखोंसे कंसादिककी स्त्रियाँ यह दृश्य देख रही थीं। अनेक लोग श्री कृष्णका मल्लयुद्ध देखनेको उत्सुक हो रहे थे और सबका चित्त परिणामकी कल्पना करनेमें अटक रहा था।

कंसकी आज्ञानुसार उसके मन्त्रीने कृष्ण और बलरामको सम्बोधन कर कहा—'हे बालको! जैसा कि हमने सुना है, तुम दोनों बड़े पराक्रमी हो। आज इस अखाड़ेमें कंसको प्रणामकर हमारे मल्लोंसे मल्लयुद्ध करो और अपनी शक्तिका परिचय दो, अन्यथा महाराजा कंसकी आज्ञा भङ्ग करनेके कारण तुम्हे यथोचित दण्ड दिया जायगा। महाराजा तुम्हारा युद्ध देखनेको बड़े उत्सुक हैं, शीघ्रही उनकी इच्छा पूर्ण करो।"

मन्त्रीकी यह बात सुन धर्मिष्ट प्रजाजन कंसको धिक्कार देने लगे। कृष्णकी अवस्था केवल ग्यारह वर्षकी थी। उन्हें

क्रूर मल्लोंसे भिड़ाना निरा अन्याय था। कृष्ण और बलराम मन्त्रीकी बात सुन जराभी विचलित न हुए, वह हाथियोंके झुण्डमें मृगराजकी भाँति अखाड़ेमें कटिबद्ध हो कूद पड़े। दोनोंने देखते ही देखते चाणूर और मुष्टिक नामक दो पहलवानोंको पराजित कर मार डाला। सभामें खलबली मच गयी। तीन भीषणकाय मल्ल खड्ग हस्त हो उनपर टूट पड़े। श्रीकृष्ण और बलराम निरस्त्र थे; परन्तु वह जराभी न घबड़ाये। लात और घूसोंकी मारसेही उन तीनोंका काम पूरा हो गया। कंस यह देखकर थर्रा उठा। उसने क्रुद्ध हो, अपने सैनिकोंको आज्ञा दी, कि इन दोनों उद्दण्ड छोकड़ोंको बाहर ले जाकर मार डालो इनके साथका एक भी मनुष्य जीवित न बचे। देवकी, वसुदेव और उग्रसेनका भी शिर उड़ा दो।

कंसकी यह बात सुन श्रीकृष्णको क्रोध आ गया। उनका चेहरा तमतमाने लगा। नेत्रोंसे चिनगारियाँ झड़ने लगीं और ओंठ फड़क उठे। वह महाकालकी तरह विकराल दिखाई पड़ने लगे। कंस उनका यह रूप देख घबड़ा गया और आँखें बन्द करलीं। उसका शरीर काँप उठा और उसी बीचमें मुकुट खिसककर नीचे गिर पड़ा। कृष्णने कंसकी यह भाव भङ्गी देख ताड़ लिया कि वह भयभीत हो रहा है। वह तुरन्त उछलकर मञ्चपर जा पहुंचे और कंसके केश पकड़कर सिंहासनसे नीचे खींच लाये। कंसके होश पहलेही उड़ गये थे, रहा सहा साहस भी जाता रहा। उसे हाथ हिलानेका भी अवसर
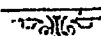
न दे श्रीकृष्ण उसकी छातीपर चढ़ बैठे और मुष्टिक प्रहारोंसे उसे निर्जीव कर डाला।

इस प्रकार ग्यारह वर्षकी सुकुमार अवस्थामें श्री कृष्णने अत्याचारी कंसका विनाश किया। कंस यद्यपि श्रीकृष्णका मामा होता था, परन्तु वह बड़ा अधर्मी था। उसने अपने पिता उग्रहसेनको बन्दीवना कारागृहमें बन्द कर दिया था। श्री कृष्णने उन्हें मुक्तकर पुनः सिंहासनारूढ़ कराया और साथही अपने माता पिताका उद्धार किया। नन्दको अब उन्होंने वापस भेज दिया और अपने पिताके पास वहीं रह गये।

कृष्णके माता पिताको विश्वास हो गया, कि कृष्ण साक्षात् ब्रह्मरूप हैं। उन्होंने अपनी प्रबल शक्तिसेही कंसका नाश किया है। यह एक साधारण बालकका काम नहीं है अतः हमें कृष्णके माता पिता होनेका कोई अधिकार नहीं है। जो जगत-पिता है उसे अपना पुत्र कहना अनुचित और धर्मविरुद्ध है। कृष्णको अपने माता पिताका यह भाव तुरन्त मालूम हो गया। उन्होंने उनपर मायाका आवरण डाल दिया। मायाके फेरमें पड़ते ही उनके हृदयमें पुत्र-भावना जागरित हो उठी। वह उन्हें देख बड़ा परिताप करने लगे। वह कहने लगे—"हाय! हमारे दोनों लाल पराये घरमें परतन्त्र जीवन व्यतीत करते रहे! ग्यारह वर्ष गौवोंके पीछे वन वन भटकते रहे! हम उनको कुछ भी सुख न दे सके! इस समय हमारे पास एक दाना भी नहीं, इतने दिनोंके बाद भी एक दिन हम इन्हें अच्छी

तरह खिला पिला नहीं सकते! हा दैव! यह तेरी कैसी गति है ?"

कृष्ण अपने माता पिताका यह परिताप देख कहने लगे—"आप इस तरह दुःखी क्यों हो रहे हैं? इसमें खेद करनेकी कौन बात है। आपका कोई दोष नहीं है। दोष तो वास्तवमें हमारा है। हम आजतक आपके किसी काम न आये, आपकी सेवा न की यह हमारे लिये बड़ी लज्जाकी बात है। हम तो नन्द और यशोदाको ही माता पिता समझे हुए थे। आपने बड़ा कष्ट उठाया, हमारी शक्तिको धिक्कार है कि तुरन्त आपको बन्धन-मुक्त न कर सके। संसारमें माता पिताके सामने और कोई आत्मीय है ही नहीं। पुत्रके लिये माता देवी-स्वरूपा और पिता ईश्वर-स्वरूप है। माता पिताके चरणोंमें सभी तीर्थ हैं। उनकी सेवा छोड़ जो तीर्थाटन और दान पुण्य करते हैं वह व्यर्थही कष्ट उठाते हैं। यह मिट्टीके ढेर पर हवन करनेके समान हैं। पुत्र, माता पिताको सौ वर्ष पर्य्यंत सेवा करे और उनके बराबर तौल कर सुवर्णदान करे, तब भी वह उसकी तुलनामें नहीं आ सकता। माता पिताके ऋणसे पुत्र कदापि मुक्त नहीं हो सकता। जिसने अपने माता पिताको कष्ट दिया, उस पुत्रको दैत्य समझना चाहिये। ऐसे कृतघ्नी पुत्रपर ईश्वर भी प्रसन्न नहीं रह सकता। वह दरिद्री हो दर दर भीख माँगता और भटकता फिरता है। जो माता पिताकी सेवा नहीं करते उन्हें दूसरोंकी न करने योग्य निन्द्य सेवा

करनी पड़ती है। माता पिताका तिरस्कार करने वाले पशु योनिमें जन्म पाते हैं, उनके शरीरमें कीड़े पड़ते हैं और कौवे उनका मांस नोचते हैं। यह शास्त्रकारोंका कथन है। जो अपनी स्त्रीके वशीभूत हो, माता पिताको दुःख देते हैं, उनका परित्याग करते हैं, वह कुत्तेका जन्म पाते हैं और एक एक टुकड़ेके लिये भटकते फिरते हैं। हमारे शास्त्रकारोंका यह भी कथन है, कि जो केवल अपनाही पेट भरना जानते हैं और भगिनी तथा उसके पुत्रोंको सहारा नहीं देते, वह शूकर योनिमें जन्म पाते हैं। जो ससुरालमें रहकर अपना पेट पालते हैं, नीच मनुष्योंका संग करते हैं, उनके कथनानुसार दुष्कर्म करते हैं और सच्चे साधु पुरुषोंको दुर्वचन कहते हैं, वह सदा सर्वदा रुग्नावस्थामें जीवन व्यतीत करते हैं। शिष्यके लिये गुरु और छोटे भाईके लिये बड़ा भाई, विष्णु-स्वरूप है। उनको सदा आदरकी दृष्टिसे देखना चाहिये। इसी प्रकार सेवकको अपने मालिकके प्रति भक्तिभाव रखना चाहिये। स्त्रीके लिये उसका पति ही ईश्वर है। जो जिसके लिये पूजनीय है, वही उसका देव है। जो मनुष्य पूजनीयकी पूजा नहीं करते, वह अधर्म करते हैं। उन्हें कर्त्तव्य भ्रष्ट कहना चाहिये। हमलोगोंने आजतक आपलोगोंकी सेवा नहीं की, वृन्दावनमें खेल कूद करते रहे, चैनसे दिन बिताये और आप बन्दी-गृहमें बेड़ियाँ पहने, कैद रहे तथा नाना प्रकारके कष्ट उठाते रहे। हम आपके निकट दण्डनीय अपराधी हैं। आप हमें क्षमा करें। यद्यपि हम

आपके कुपुत्र हैं और हमें आपसे ऐसा कहनेका भी अधिकार नहीं है। पर अब हम आपकी आजीवन सेवा करेंगे और आज्ञानुसार चलेंगे, हम अपना जन्म तभी सार्थक समझेंगे जब आपके दुःख दूर कर देंगे। हम दोनों भाइयोंको ज़रा बड़े होने दीजिये, हमारे जीते जी फिर आपको किसी प्रकारका कष्ट हो तो हमें बलराम और कृष्ण नहीं, बल्कि कायर, कपूत और कुलाङ्गार कहियेगा।"

कृष्ण और बलरामकी यह बातें सुन, देवकी और वसुदेव बड़े ही प्रसन्न हुए। दोनों बच्चोंको छातीसे लगा, वह सजल नयन हो, उनको प्यार करने लगे। उनकी उस अवस्थाको वही समझ सकता है, जो दश-बारह वर्षके बाद अपने बच्चोंसे मिलनेका आनन्द उठा चुका हो। जिसको ऐसी दशाका अनुभव नहीं हुआ है, वह कृष्ण बलराम और उनके माता पिताको परस्परके मिलनेसे जो आनन्द प्राप्त हुआ, वह कैसे समझ सकता है।

"सबै दिन नाहिं बराबर जात।" वसुदेव और देवकी बन्धन मुक्त हुए और अत्याचारी कंसका विनाश हुआ—कर्म्मका बन्धन अटल है। "नेकी नेकराह बदी बदराह।" उसने जैसा किया वैसा पाया।

वसुदेव, कृष्ण और बलरामको पाकर बड़े ही प्रसन्न हुए। उन दोनोंका उपनयन संस्कार कराया और उन्हें सान्दीपनि ऋषिके पास विद्योपार्जनके लिये भेज दिया। सान्दीपनिका
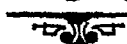
आश्रम उज्जैनके समीपवर्ती एक वनमें था। दोनों भाई वहां गये और विद्याध्ययन करने लगे। उन्होंने गुरुकी सेवाकर उन्हें प्रसन्न किया और थोड़ेही दिनोंमें वेद, उपवेद, न्याय तत्वज्ञान धनुर्विद्या और नीति शास्त्रके ज्ञाता बन गये। जब वह लौटने लगे, तब ऋषिने गुरु-दक्षिणामें अपना पुत्र ला देनेको कहा। कुछ समय पहले उसका देहान्त हो गया था। उसके वियोग-में ऋषि और ऋषि-पत्नी दोनों अत्यन्त दुखी रहते थे। कृष्ण को समर्थ जानकरही उनसे यह बात कही गयी थी। कृष्णने उनकी इच्छा पूर्णकर आशीर्वाद प्राप्त किया और अपने घर लौट आये।

उद्धव बड़े ज्ञानी थे। उन्हें अपने ज्ञानका बड़ा अभिमान था। कृष्णने उन्हें गोकुलके लोगोंकी प्रेम-भक्ति दिखायी। उसे देख उनका अभिमान जाता रहा। इसके बाद उन्होंने अक्रूरको हस्तिनापुर भेज, पांडवोंकी स्थितिका पता लगवाया। कौरवों-का अन्याय और अत्याचार तथा पांडवोंकी विडम्बनाका हाल सुन उन्होंने सङ्कल्प किया, कि किसी न किसी तरह दुर्यो-धनादि अविचारी और अन्यायी नृपतियोंके कष्टसे उन्हें विमुक्त करना चाहिये।

जरासंध मगधका राजा था। वह बड़ाही शक्तिशाली और दुष्ट था। कंसका वह श्वसुर होता था। अतः उसके नाशका समाचार सुन वह कृष्णका शत्रु बन गया। उसने बड़ी भारी फौज लेकर मथुरापर आक्रमण किया। उग्रसेनकी आज्ञा प्राप्त

कर कृष्ण और बलरामने उसकी प्रवल सेनासे युद्ध किया। कृष्ण ने अतुल पराक्रम दिखाते हुए हजारों सैनिक मार डाले और शत्रु-दलमें खलबली मचा दी। जरासंध दुर्भाग्यसे बलदेवके हाथ पड़ गया। वह उसका प्राण हरण करना चाहते थे; परन्तु कृष्णने उन्हें समझा बुझाकर छुड़ा दिया और वह लज्जित हो वापिस चला गया।

जरासंध इसे अपना अपमान समझने लगा। वास्तवमें दुष्ट मनुष्यको उपकारीके उपकारमें भी अपकार ही दिखायी देता है। दुष्टोंकी ऐसीही प्रकृति होती है। जरासंधका स्वभाव भी ऐसाही था। उसने पुनः आक्रमण किया, परन्तु फिर भी पराजित हो, उसे भाग जाना पड़ा। इसी प्रकार उसने सत्रहवार युद्ध किया; परन्तु एक वार भी विजयी न हुआ। अन्तमें लज्जा और ग्लानिके कारण वह राज्य छोड़ तप करने चला गया।

दुरात्माको कभी शान्ति नहीं मिलती। जरासंधके हृदयमें प्रतिहिंसाकी अग्नि धधक रही थी। वह शान्ति पूर्वक तप कैसे कर सकता था! उसने पुनः युद्ध करनेका निश्चय किया, परन्तु इस वार स्वयं न जाकर कालयवन नामक एक दूसरेही दुष्टकी अधिनायकतामें सेना भेजी।

जरासंधकी शत्रुता केवल श्रीकृष्णसे थी। श्रीकृष्णका विनाश करनेके लिये ही उसने मथुरापर सत्रह वार आक्रमण किया था। युद्धमें पराजित दलका तो सर्व्वनाश ही हो जाता

है। साथ ही विजेताके पक्षकी प्रजाको भी बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है। जरासंधके बारम्बार आक्रमण करनेसे मथुराकी प्रजाको बड़ा कष्ट होता था। कृष्णने इस उपद्रवका कारण अपनेहीको समझा। उन्होंने मथुरा छोड़ अन्यत्र चले जानेका निश्चय किया। भारतके पश्चिम किनारे द्वारिकापुरी बसाई और वहीं शासन करने लगे।

जरासंधको अब मथुरापर आक्रमण करनेका कोई कारण न था। उसने कालयवनको द्वारिकाही भेजना स्थिर किया। मथुराकी प्रजा इस भांति उनके आक्रमणसे छुटकारा पा गयी, कालयवनने द्वारिकापर आक्रमण किया।

कृष्णने व्यर्थही सेनाके साथ युद्धकर अपनी शक्ति क्षीण करना उचित न समझा। युद्धमें अनेक मनुष्योंका नाश करना भी उन्हें अनुचित प्रतीत हुआ। उन्होंने अकेले कालयवनको ही मार डालना पर्य्याप्त समझा। उनका यह समझना बहुतही ठीक था; क्योंकि बिना सरदारके, बिना सञ्चालकके, बिना नेताके कोई फौज कभी लड़ नहीं सकती। कृष्णकी यह एक उत्कट राजनैतिक चाल थी।

कृष्ण, कालयवनके सम्मुख अकेलेही युद्धार्थ उपस्थित हुए। कालयवन भी बड़ा शक्तिशाली था। वह भी अपनेको बहुत कुछ समझता था। कृष्णको अकेले देख, वह भी अपने रथसे कूद पड़ा और उनके साथ युद्ध करने लगा! कृष्णने और भी एक युक्ति सोची थी और तदनुसार वह समरस्थलीसे भाग

चले। कालयवन उनके पीछे दौड़ता चला गया। श्रीकृष्ण गन्धमादन (गिरनार) पर्वतकी एक गुफामें जा छिपे। उस गुफामें मुचकुन्द सो रहे थे। कृष्णने चुपचाप उन्हें अपना पीताम्बर ओढ़ा दिया। कालयवन उन्हें खोजता हुआ वहीं जा पहुँचा। उसने समझा, कि श्रीकृष्णही सो रहे हैं। अतः मुचकुन्दके एक लात मारी। मुचकुन्द जाग पड़े और उनकी क्रोधाग्निमें पड़, कालयवन स्वाहा होगया। श्रीकृष्ण वहाँसे तुरन्त लौट आये और उनकी सेनाको भगा दिया। शत्रुओंका बहुतसा माल उनके हाथ लगा।

जरासंध यह समाचार सुन, अठारहवीं बार युद्धार्थ आ उपस्थित हुआ। इस बार श्रीकृष्णने एक पहाड़ीपर आश्रय लिया। जरासंधने उसके चारों ओर आग लगा दी। कृष्ण एक सुरक्षित स्थानमें छिपे बैठे रहे। उसने समझा, कि वह मर गये अतः प्रसन्न होता हुआ लौट गया।

कृष्ण वहाँसे द्वारिका लौट आये। फिर उन्होंने अपना विवाह करना स्थिर किया। विदर्भ देशकी राजकन्या बड़ी गुण॰ वती और सुन्दर थी। उसका नाम रुक्मिणी था। कृष्णने उसका हरण किया। उस समय उन्हें रुक्म, शिशुपाल तथा जरासंधसे युद्ध करना पड़ा और वह विजयी हुए। सत्राजितकी मणिकी खोज करते समय उन्हें जाम्बवन्तसे युद्ध करना पड़ा। जाम्बवन्तने प्रसन्न हो अपनी कन्या जाम्बवतीका उनके साथ विवाह कर दिया था। कृष्णने सत्राजितको मणि ला

दी इस उपकारके बदले उसने स्वकन्या सत्यभामाका विवाह भी उनके साथ कर दिया।

प्राग ज्योतिष्पुरमें नरकासुरका अधिकार था। वह बड़ा अधर्मी था और आस पासकी प्रजापर बड़ा अत्याचार करता था। उसने अनेक राजकन्याओंका हरणकर उन्हें अपने नगरमें बन्द कर रक्खा था। कृष्णने उसको मारकर उन सबका उद्धार किया और उसके पुत्र भगदत्तको सिंहासनारूढ़ कराया।

एक बार सत्यभामाको कल्पवृक्षकी चाह हुई। श्रीकृष्णने इन्द्रकी इच्छा न होने परभी उनके नन्दनकाननसे वह वृक्ष ला दिया। सत्यभामा उसे देख बड़ी प्रसन्न हुई और कृष्णके सामर्थ्यकी सराहना करने लगी। उन्होंने राजा नृगका उद्धार और वाणासुरका मान-मर्दन किया। राजा पुण्डरीक भी बड़ा अन्याय कर रहा था, अतः उसे भी मारकर प्रजाका दुःख दूर किया।

श्रीकृष्णका पाण्डवोंपर बड़ा प्रेम था। जब द्रौपदीका स्वयंवर हुआ, तब उन्होंने पाण्डवोंको प्रत्यक्ष और परोक्षमें सहायता प्रदान कर, उन्हें विजय दिलायी थी। जब अर्जुन तीर्थाटन करते हुए द्वारिका पहुँचे, तब कृष्णने उनका बड़ा स्वागत किया था। कृष्णके सुभद्रा नामक एक बहिन थी। उन्होंने उसका विवाह अर्जुनसे कर देना चाहा, परन्तु अनेक लोगोंको यह बात पसन्द न थी। कृष्णने अर्जुनको समझाकर सुभद्राका हरण कराया और अपनी इच्छा पूर्ण की। बलरामने अर्जुनसे युद्ध

करनेकी तय्यारी की, परन्तु कृष्णने उन्हें शान्त कर दिया। सुभद्राका विवाह सानन्द समाप्त हुआ।

इसके बाद वह इन्द्रप्रस्थ गये। पाण्डवोंने राजसूय यज्ञ करनेकी इच्छा प्रकट की। कृष्णने उसका समर्थन किया और कार्य्यारम्भ हुआ। जरासंध कृष्णका प्रबल शत्रु था। कृष्णने यही समय उसको मार डालनेके लिये उपयुक्त समझा। उसने अनेक नृपतियोंको बन्दी बना रक्खा था। उनको बन्धन मुक्त करनेमें भी बड़ा लाभ था। कृष्णने पाण्डवोंको समझाया और भीम उसके साथ युद्ध करनेको तय्यार हो गये! छब्बीस दिन पर्य्यन्त युद्ध होता रहा और अन्तमें भीमने उसे मार डाला। इस कार्य्यसे दो लाभ हुए। एक तो कृष्णका शत्रु मारा गया, दूसरे जो नरेश बन्धन-मुक्त किये गये, वह पांडवोंकी अधीनता स्वीकार कर, उन्हें सहायता देनेको बाध्य हुए। कृष्णकी आज्ञानुसार वह सब भेंट ले इन्द्रप्रस्थ पहुंचे और यज्ञके कार्य्यमें योग देने लगे।

यज्ञके उपलक्ष्यमें अनेकानेक राजवंशी इन्द्रप्रस्थ आये हुए थे। कृष्णने ब्राह्मणोंकी जूंठन उठानेका काम अपने हाथमें लिया था। सब नरेशोंको एक न एक काम सौंपा गया था। राजा शिशुपाल भी वहीं उपस्थित था। वह श्रीकृष्णसे बड़ा द्वेष रखता था और बड़ा अत्याचारी था। यज्ञके समय श्रेष्ठोंके पूजनकी प्रथा है। जो जिसे बड़ा मानता है, उसकी पूजा करता है। भीष्म-प्रभृति सब नृपतियोंने कृष्णको ही सर्वश्रेष्ठ माना। किसीने इसका विरोध न किया

युधिष्ठिरने भी श्रीकृष्णको ही सर्वश्रेष्ठ मानकर सर्व प्रथम उन्हींकी पूजा की। पर शिशुपाल यह सहन न कर सका। वह अपनेको सर्वश्रेष्ठ समझता था। उसने कृष्णका अपमान करना चाहा। उन्हें भरी सभामें वह दुर्वचन कहने लगा। कृष्ण बहुत देरतक उसकी गालियाँ सुनते रहे। अन्तमें उन्हें क्रोध आ गया। उन्होंने अपने चक्रसे शिशुपालका शिर काट लिया। दोष शिशुपालका था, अतः उन्हें किसीने कुछ न कहा। बल्कि इस प्रकार एक अत्याचारीके जीवनका अन्त देखकर चारोंओर जय जयकार होने लगा। कृष्ण वहांसे विदा हो द्वारिका लौट आये।

इसके बाद उन्हें शैल्यसे युद्ध करना पड़ा। कृष्णने उसे भी पराजितकर मारडाला, दन्तवक्रको गदा और विदुरथको सुदर्शनसे निर्जीव कर दिया। अब वह अपने शत्रुओंकी ओरसे निश्चिन्त हो शासन करने लगे।

सान्दीपनि ऋषिके यहाँ सुदामा नामक एक ब्राह्मण भी विद्याध्ययन करता था। वह निर्धन था। उसके बच्चे दाने दानेको तरसते और रहनेके लिये घर भी न था। अपनी स्त्रीके आग्रहसे वह श्रीकृष्णके पास गया। श्रीकृष्णने उसका बड़ा स्वागत किया। उन्हें उससे मिलनेमें कुछ भी सङ्कोच न हुआ। सुदामाने उनका आतिथ्य ग्रहण किया और कृष्णने उसका दरिद्र दूर कर दिया।

अब श्रीकृष्णने पाण्डवोंका दुःख भी दूर करना अपना कर्त्तव्य

समझा। कौरव, पाण्डवोंको बड़ा कष्ट दे रहे थे। दुशासनने द्रौपदीका चीर हरण कर उन्हें अपमानित करनेका उद्योग किया था। उस समय भी श्रीकृष्णनेही सहायता पहुँचायी थी। कृष्णने अनेक बार कौरवोंको समझाया था, कि पाण्डवोंको राज्यका कुछ अंश दे दो। उन पर द्वेष न रक्खो, परस्पर मिल जुलकर काम करो, परन्तु कौरवोंने उनकी बातपर ध्यान न दिया। जिसका विनाश होनेको होता है, वह किसी भले मनुष्यकी बात नहीं सुनता। उसका विवेक नष्ट हो जाता है, बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है और सारा सारका विचार करनेकी शक्ति लोप हो जाती है! ऐसा न हो तो उसे कष्ट ही क्यों उठाना पड़े!

कौरवोंका अत्याचार चरम सीमाको पहुँच चुका था। वह इस समय पृथ्वीके लिये भार हो रहे थे। उनके अन्यायसे प्रजा संत्रस्त थी और चारों ओर हाहाकार मच गया था। कौरव सौ भाई थे। दुर्योधन उन सबमें बड़ा था और वही राजकाज करता था। जब उसने कृष्णकी बात न सुनी, तब युद्ध होना अनिवार्य्य हो गया। पांडव और कौरव दोनोंने कृष्णकी सहायता चाही, परन्तु धर्मोंकी जय और पापोंकी क्षय होती है। ईश्वर धर्मिष्ठकोही सहायता देता है। कृष्णने पांडवोंको सहायता देनेका निश्चय किया था, परन्तु दुर्योधन और अर्जुन, एकही दिन, एकही साथ उसके पास पहुँचे। कृष्ण ने दोनोंको सन्तुष्ट करना उचित समझा। उन्होंने कहा—

"एक ओर मेरी नारायणी सेना रहेगी और दूसरी ओर मैं अकेला रहूँगा। साथ ही मैं यह भी बतलाये देता हूँ, कि मैं युद्धक्षेत्रमें शस्त्र धारणकर युद्ध न करूंगा।"

अर्जुनने अकेले कृष्णको लेना स्वीकार किया और दुर्योधन सेना पाकर बड़ा प्रसन्न हुआ। कृतवर्माकी अधिनायकतामें सेना भेज, कृष्णने दुर्योधनकी सहायता की और आप पाँडवोंके दलमें जा मिले। दुर्योधनके पास उन्हें भेजकर युधिष्ठिरने सन्धिकी अन्तिम चेष्टा की; परन्तु कोई फल न हुआ। दोनों ओरसे भीषण युद्धकी तैयारियाँ होने लगीं।

शस्त्रास्त्रसे सुसज्जित दोनों ओरकी प्रबल सेनायें कुरुक्षेत्रमें युद्धार्थ प्रस्तुत हुईं। कृष्णने अर्जुनका सारथी होना स्वीकार किया। अर्जुनकी इच्छानुसार कृष्णने उनका रथ दोनों पक्षकी सेनाओंके मध्य भागमें लाकर खड़ा कर दिया। अर्जुनने आँखें उठाकर देखा तो अपनेही आत्मीय स्वजनोंको युद्धार्थ प्रस्तुत पाया। उन्होंने तुरन्त अपने धनुष-बाण फेंक दिये और कहा—"चाहे जो हो जाय, राज्य मिले या न मिले, मैं अपने हाथों अपनेही बन्धुओंका नाश न करूँगा।"

मोहाच्छन्न अर्जुनकी यह दशा देखकर कृष्ण उन्हें उत्साहित करने लगे। उन्होंने उस समय अर्जुनको जो उपदेश दिया, वह आज भी महाभारतमें अङ्कित है। उसीका नाम भगवद्-गीता है। श्रीकृष्णने अर्जुनको बता दिया कि, यह आत्मा अविनश्वर है। निष्काम कर्मका फल नहीं भोगना पड़ता। अर्जुनका मोह जाता

रहा। उन्हें मालूम हो गया, कि उनका क्या कर्त्तव्य है और परमात्माकी क्या इच्छा है। उन्होंने अपना धनुष उठा लिया और शत्रुदलका संहार करने लगे। कृष्णने प्रतिज्ञा की थी कि मैं शस्त्र न धारण करूँगा, परन्तु एक दिन जब भीष्मने अर्जुनको मूर्च्छित कर दिया था, तब उन्होंने विवश हो रथके पहियेको उठा लिया था। उस समय चारों ओर खलबली मच गयी थी और लोगोंके हृदय काँप उठे थे। इस युद्धमें कृष्णकी इच्छानुसार पांडवोंकीही विजय हुई। कृष्ण बड़ेही योग्य रण-पण्डित थे। पांडव उनकी इच्छानुसार उनकी सम्मतिसेही युद्ध करते थे। ऐसी दशामें उनका विजयी होना स्वाभाविक था। कृष्णने युधिष्ठिरको बड़े हर्षसे सिंहासनारूढ़ कराया। इसके बाद वह द्वारिका लौट गये।

कृष्णका गीता शास्त्र अध्यात्म विद्याका भण्डार है। उसमें सब शास्त्रोंका सार एकत्र है। "जीवात्मा एक शरीरको त्याग जब दूसरेमें प्रवेश करता है, तब वह मन और इन्द्रियोंको अपने साथ ले जाता है। कर्मका बन्धन केवल प्रकृतिसे होता है। समस्त कर्म प्रकृतिसे होते हैं। भले बुरे कर्म ज्ञान पर निर्भर हैं। सभी कर्म उपाधिके योगसे होते हैं। उसीके योगसे सुख और दुःख प्राप्त होते हैं। उपाधिही मनुष्यके पुनर्जन्मका कारण है। शुद्ध चैतन्यकी उपासनामें एकाग्र हो लीन होनेसे मुक्ति प्राप्त होती है। इत्यादि बातें गीतामें बतलाई गयी हैं। उसके सिद्धान्त सर्वमान्य हैं। गीता शास्त्र बुद्धिमान पुरुषोंके मनन करने योग्य है।

कृष्णने दीर्घकाल पर्य्यन्त ऐश्वर्य्य भोग किया। एक समय सब यादवोंने तीर्थाटन करनेका विचार किया। उग्रसेन और वसुदेवको छोड़, कृष्णके साथ सबलोग निकल पड़े। समुद्रके तटपर सबोंने अत्यन्त मदिरापान की। अन्तमें जब नशा चढ़ा तो आपसमें झगड़ा करने लगे। मामला यहाँ तक बढ़ गया कि सबके सब वहीं लड़ मरे। कृष्णकी इच्छा ऐसी ही थी। उन्हें अब अपनी इहलोक लीला समाप्त करनी थी। बलराम और वह दूर बैठे हुए यादवोंका गृह-युद्ध देख रहे थे। बलरामको बड़ा खेद हुआ और उन्होंने कौपीन धारण कर वहीं प्राण त्याग दिये। कृष्णने भी वैकुंठ जानेकी तय्यारी की। वह एक पीपलके नीचे पैरपर पैर चढ़ा चित्तको एकाग्र कर बैठे हुए थे, इतनेमें जरा नामक एक व्याधने उन्हें हरिण समझ एक तीर मार दिया। वह उनके पैरमें लगा और शोणित बहने लगा। व्याधने पास आकर देखा और पश्चात्ताप किया। कृष्णने उसे आश्वासन दिया और कहा, कि यह मेरीही इच्छासे हुआ है, खेद करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है। इसके बाद वहाँ दारुक आ पहुंचा। दारुक, श्रीकृष्णका सारथी था। श्रीकृष्णने उससे कहा—"यादवोंके सर्व्वनाशका समाचार द्वारिका पहुँचा देना। बलदेव अपना प्राण-विसर्जन कर चुके हैं। मैं भी थोड़ी देरमें यह नश्वर शरीर त्याग दूँगा। मेरे आश्रितोंसे कह देना, कि वह अर्जुनके साथ हस्तिनापुर चले जायें। वहां वे सुरक्षित रहेंगे। अर्जुनसे कह देना, कि मेरे

लिये शोक न करे और मेरे उपदेशानुसार कर्त्तव्य पालनमें दृढ़ रहे।"

इतना कह श्रीकृष्णने अपना शरीर त्याग दिया। उन्होंने अपने जीवनकालमें अगणित अधर्म्मियोंका नाश कर न्याय-नीतिकी स्थापना की थी। वह बड़े परोपकारी और निर्लोभी थे। राजवंशी होने पर भी साधारण बच्चोंकी तरह उनकी शिक्षा-दीक्षा हुई थी। वह यदुवंशी थे। यदु राजा ययातिके पुत्र थे। श्रीकृष्ण एक विस्तृत राज्यके अधीश्वर थे। उनकी राजधानी द्वारिकामें थी। कौस्तुभ मणि उनका आभूषण था। नन्दक नामक खड्ग, कौमोदिकि नामक गदा और सुदर्शन नामक चक्र उनके आयुध थे। उनके शंखका नाम पाञ्चजन्य था। युद्धकलामें वह बड़ेही निपुण थे। उनकी जोड़का एक भी मनुष्य उस युगमें नहीं पाया जाता। श्रीकृष्णका हृदय प्रेमसे परिपूर्ण रहता था। वह जिस प्रकार शासन और ऐश्वर्य्य भोग करना जानते थे, उसी प्रकार योगका रहस्य भी समझते थे। गीताशास्त्र देखनेसे उनकी विद्वत्ताका पता चलता है। उन्होंने अर्जुनको प्रवृत्तिमें ही निवृत्तिका मार्ग दिखा दिया था। हमें श्रीकृष्णको आदर्श मान, उनकी जीवन-चर्य्यासे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। गीताशास्त्रका मनन करना प्रत्येक मनुष्यके लिये श्रेयस्कर है। विदेशोंके विद्वान् भी गीताके सिद्धान्तोंका सम्मान करते हैं।

गुरु दत्तात्रेय

यह परम ब्रह्मनिष्ठ, अवधूत योगी अत्रिऋषिके पुत्र थे। उनकी माताका नाम सती अनुसूया था। दुर्वासा और चन्द्र नामक उनके दो भाई भी थे। दत्तात्रेयकी चौबीस अवतारों में गणना की जाती है। वह ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीनोंके सम्मिलित अवतार माने जाते हैं। उनका जन्म त्रेता युगमें हुआ था। वह विद्वान्, गुणवान और रूपवान भी थे! उन्होंने सब शास्त्रोंका अध्ययन किया था। वेदान्तशास्त्रको उन्होंने प्राधान्य दिया है। वह त्रिकालदर्शी, समर्थ ज्ञानी, निर्विकारी और मधुरभाषी थे। विषयभोग और स्त्री पुत्रादिसे वह रहित थे। सब प्रकारकी आसक्तियोंसे वह मुक्त थे। उन्हें किसी बातकी इच्छा न होती थी। विद्वान होनेपर भी वह बालोन्मत्त, जड़की तरह ब्रह्मज्ञानमें मग्न हो भ्रमण किया करते थे। योग विद्याकी उन्होंने बड़ी उन्नति की थी। समदर्शी कैसे होना, परकायामें प्रवेश किस प्रकार करना, गजक्रिया और अनेक कायाओंकी रचनाका ज्ञान कैसे प्राप्त करना इत्यादि बातोंका उन्होंने पता लगाया। उन्होंने योग-शक्तिके अद्भुत चमत्कार लोगोंको दिखाये थे। मृत्यु-प्राप्त मनुष्यको सजीवन करनेका उनमें सामर्थ्य था। अलर्क प्रह-

लाद, सहस्राज्जुन और यदु इत्यादिको उन्होंने ब्रह्म उपदेश दिया था। उन्होंने किसीको अपना गुरु न बनाया था। मायासे विरक्त होनेके लिये स्वयं चौबीस गुरु मान लिये थे। एक शिष्यकी तरह उन्होंने उनके दोष छोड़ केवल गुण ग्रहण किये थे। उन्होंने यदुराजको उसी ज्ञानका उपदेश दिया था। हम अपने पाठकोंके लिये संक्षिप्त रूपमें उसे वर्णन कर देना उचित समझते हैं।

पृथ्वी—लोग पृथ्वीको दबाते हैं, पैरोंसे कुचलते हैं, फिर भी वह अपने नियमसे चलायमान नहीं होती। उसी प्रकार साधु पुरुषको कोई कितनाही कष्ट दे, परन्तु उसे अपने कर्त्तव्य पथसे विचलित न होना चाहिये।

पर्वत—यह पृथ्वीकाही अङ्ग है, परन्तु अचल रहता है। वह परोपकारके लिये वृक्ष और जलस्रोत उत्पन्न करता है। साधु पुरुषको भी अचल रहना चाहिये और समस्त क्रियायें परोपकारके लिये ही करनी चाहियें।

वृक्ष—यह भी पृथ्वीका अङ्ग है, परन्तु निरन्तर पराधीन रहता है और परोपकार करता है। लोग उसके फल, फूल, पत्ते छाल, डाल चाहें जो कुछ ले जायं अथवा उसे काट डालें तब भी वह चूं नहीं करता। उसी प्रकार साधु पुरुषको परोपकारके लिये पराधीनता स्वीकार करनी चाहिये। लोग अपना काम बनानेके लिये उसे मारें, उठा ले जायं या किसी प्रकारका कष्ट दें तब भी उसे चूं न करनी चाहिये।

२—वायु—वनमें उसे हर्ष नहीं होता और अग्निमें पड़कर खेद नहीं होता। उसी प्रकार योगीको धर्मके विषयमें सदा समान वृत्ति धारण करनी चाहिये। वस्तुस्थिति चाहे अनुकूल हो या प्रतिकूल उसकी उसे परवाह न करनी चाहिये। यह भी खयाल रखना चाहिये, कि जिस प्रकार वायु सुगन्ध या दुर्गन्धके संसर्गसे वैसा प्रतीत होता है, परन्तु वास्तवमें वह उससे परे है, उसी प्रकार आत्मा प्राकृतिक विकारोंके संसर्गसे जन्म मरण युक्त प्रतीत होता है, परन्तु वास्तवमें वैसा नहीं है।

प्राण-यह वायु रूप है। केवल आहार पाकर सन्तुष्ट हो जाता है। उसे रूप रङ्ग और रसादिक इन्द्रिय सम्बन्धी विषयोंकी चाहना नहीं रहती। उसी तरह योगीको केवल आहार ही पर सन्तुष्ट रहना चाहिये। भले बुरे आहार और विषयोंकी ओर उसे ध्यान न देना चाहिये। शरीरकी स्थितिके लिये अच्छा बुरा जो कुछ मिले, वही खा लेना चाहिये। अच्छे और स्वादिष्ट पदार्थोंके आहार और विषयके सेवनसे मन और वाणीमें विक्षेप उत्पन्न होता है।

३—आकाश-यद्यपि वस्तुमात्रमें व्याप्त है,परन्तु उसे किसीका सङ्ग नहीं है। किसी पदार्थसे वह नापा भी नहीं जा सकता! उसी प्रकार देहमें रहने परभी योगीको ब्रह्मस्वरूपकी भावनासे अपनी आत्माको स्थावर और जङ्गम पदार्थोंसे व्याप्त समझ, उसे किसी देहादिका सङ्ग नहीं है तथा वायु प्रेरित मेघ और धूल इत्यादि, जैसे आकाश स्पर्श नहीं कर सकते, उसी प्रकार

बारम्बार जाने आनेवाले देहादिक पदार्थ आत्मासे परे हैं, यह जान लेना चाहिये।

४—जल, स्वच्छ और मधुर है। मनुष्योंको पवित्र करता है। उसी तरह योगीको स्वच्छ और शुद्ध रहना चाहिये। मधुर भाषी बनना चाहिये और उपदेश द्वारा लोगोंको शुद्ध करना चाहिये।

५—अग्नि—तेजस्वी और प्रदीप्त रहती है। सर्व भक्षी होने पर भी निर्दोष और कहीं गुप्त तथा कहीं स्पष्ट दशामें रहती है। वह कल्याणकी इच्छा रखने वालोंके लिये उपासना करने योग्य है। हवि देनेवालोंके पापोंका क्षय करती है और पराई इच्छासे सर्वत्र सब पदार्थोंका सदा भक्षण करनेको तय्यार रहती है। योगीको भी उसी प्रकार कहीं गुप्त और कहीं स्पष्ट रूपमें रहना चाहिये। कल्याणकी इच्छा रखने वालोंके लिये उपासना करने योग्य बनना चाहिये। अन्न देनेवालोंके पापोंका नाश करना चाहिये। पराई इच्छाके अधीन हो सर्वत्र भोजन कर लेना चाहिये। अग्नि काष्ठमें रहनेसे जिस प्रकार उस काष्ठके समान रूपमें प्रतीत होती है, परन्तु वास्तवमें उसका कोई रूप नहीं होता। उसी प्रकार आत्मा भी अविद्या सजित उच्च नीच देहोंमें रहनेसे वैसा ही प्रतीत होता है, परन्तु वास्तवमें वह उच्च या नीच नहीं है। जिस प्रकार अग्निकी ज्वाला प्रतिक्षण उत्पन्न और नाश हुआ करती है, परन्तु उसे हम नहीं जान सकते, उसी प्रकार कालकी प्रबल

गतिसे आत्माके शरीर प्रतिक्षण नाश और उत्पन्न हुआ करते हैं, परन्तु इसे हम नहीं जान सकते। योगियोंको इसी लिये अपनी देह क्षण भङ्गुर समझ कर वैराग्य धारण करना चाहिये।

६—चन्द्रकी कलाओंमें वृद्धि और न्यूनता हुआ करती है परन्तु चन्द्रमाको कुछ भी नहीं होता। उसी प्रकार जन्मसे लेकर मरण पर्य्यंत समस्त विकार शरीर ही पर होते हैं, आत्मा पर उनका कुछ भी असर नहीं पड़ता।

७—सूर्य—आठ मासमें जितना जल शोषण करता है, उतना चतुर्मासमें वापस दे देता है, परन्तु लेन देनका कुछ भी हिसाब नहीं रखता। उसी प्रकार योगीको इन्द्रियों द्वारा आवश्यक पदार्थ ग्रहण करने चाहियें, परन्तु कोई मांगने आवे तो उनका लोभ छोड़, उसे तुरन्त दे देना चाहिये। परन्तु इस कार्यमें उसे यह हिसाब कदापि न लगाना चाहिये, कि क्या मिला था और क्या दे दिया। इसके अतिरिक्त, सूर्य एक है, परन्तु उसके बिम्ब जलादिक वस्तुओं पर पड़नेसे, अज्ञानीको जिस प्रकार भिन्न भिन्न होनेका भ्रम होता है, उसी प्रकार परमात्माका प्रकाश सब पदार्थोंमें व्याप्त होने पर भी वह स्वयं एक ही है।

८—कपोत—इसने एक कपोतीसे प्रेम किया। कुछ दिन बाद उसके बच्चे हुए। एक दिन कपोत और कपोती बच्चोंके लिये दाना लाने गये। पीछेसे व्याधने जाल लगाकर बच्चोंको फांस लिया। बच्चे चिल्लाने लगे और कपोत कपोती भी आपहुंचे।

वह दोनों विलाप करने लगे। कपोतीसे न रहा गया। वह चिल्लाती हुई बच्चोंके पास पहुंच गयी। स्नेह बन्धनमें बँधी हुई वह व्यग्र-मना कपोती भी उसी जालमें फंस गयी। प्राणाधिक बच्चोंके साथ कपोतीने भी दुःख उठाना स्वीकार किया। कपोत उन सबकी यह दशा देख विलाप करने लगा। उसे अकेले अब अपना जीवन भार मालूम होने लगा। उजड़ घोंसलेमें रहनेकी उसे हिम्मत न हुई। उसने जीवनकी आशा छोड़ दी। मृत्यु-मुखमें तड़पते हुए बच्चोंको देख उनकी वास्तविक दशा जानते हुए भी वह जालमें जा पड़ा। क्रूर व्याधा अपने कार्यमें सफलता प्राप्तकर अपने घर गया और उसने सबोंको मार डाला। इसी तरह मोहाच्छन्न मनुष्य अशान्त दशामें सुख दुःख भोग किया करता है। संसार और स्वजनोंके मोहमें लिप्त वह भी कपोत कपोतीकी तरह अपने परिवार सहित दुःखी होता है। गृह और स्वजनोंका मोह, उनका अनुराग और प्रेम, पशु पक्षियोंके लिये भी अनर्थकी जड़ स्वरूप हैं। मनुष्यके लिये तो वह और भी भयङ्कर है। मनुष्यका शरीर मोक्ष प्राप्त करनेका साधन है। उसने भी यदि उन पक्षियोंकी तरह गृह जालमें उलझ कर जान दे दी तो उसे मूढ़ ही समझना चाहिये।

६—अजगर—किसी प्रकारका उद्योग नहीं करता। अच्छा, बुरा, थोड़ा, बहुत, जो कुछ ईश्वरेच्छासे आ मिलता है, वही खा लेता है। उसी प्रकार योगीको भोजन प्राप्त करनेके लिये किसी

प्रकारका उद्योग न करना चाहिये। अच्छा, बुरा थोड़ा या बहुत जो कुछ मिल जाय, वही खा लेना चाहिये। निरुद्योगी रहते हुए भी प्रारब्धके अनुसार दुःख भोगनाही पड़ता है। उसी प्रकार मनुष्य को चाहे स्वर्गमें हो या नरकमें, इन्द्रिय सम्बन्धी सुखदुःख आनायासही प्राप्त होते हैं। अतः योगीको भिक्षाके लिये कहीं भटकना न चाहिये। जो कुछ ईश्वर भेज दे उसीमें सन्तुष्ट रहना चाहिये।

१०—समुद्र—ज्यों ऊपरसे प्रसन्न, अन्दर गम्भीर, अन्त और पारसे रहित है। उसी प्रकार ज्ञानीको ऊपरसे प्रसन्न और भीतरसे गम्भीर, अन्त और पारसे रहित रहना चाहिये। राग और द्वेष छोड़ निर्विकार दशामें रहना चाहिये। वर्षा ऋतुमें अनन्तजल राशि मिलने पर भी समुद्र बढ़ नहीं जाता और ग्रीष्ममें संकुचित किंवा शुष्क नहीं होता—सदा सर्वदा अपनी मर्य्यादाके अन्दर रहता है, उसी तरह योगीको नारायण-परायण रह, ऐश्वर्य्य मिलनेसे प्रसन्न और न मिलनेसे अप्रसन्न न होना चाहिये। लाभ हो या हानि, उसे अपनी मनस्थितिको समानही रखना चाहिये।

११—पतङ्ग—जिस प्रकार दीपकपर मोहित हो अपना प्राण दे देता है, उसी प्रकार अजितेन्द्रिय पुरुष प्रभुकी माया स्वरूपिणी स्त्रीका रूप देख विलासकी अभिलाषामें मोहित हो जाता है। स्त्री, सुवर्ण, और भूषण वसनादि पदार्थ माया रचित हैं। इनको उपभोग करनेकी इच्छा रखनेवाला मूढ़ मनुष्य पतङ्ग की तरह अपना प्राण खोता है, अतः ज्ञानीको स्त्री पुरुष और धनादिके मोहमें न पड़ना चाहिये।

१२—भ्रमर—जिस प्रकार रसके लोभसे एक ही कमलपर बैठा रहता है और शामको उसके बन्धनमें पड़ जाता है। उसी प्रकार एकही स्थानमें आश्रय प्राप्त कर, रहनेसे योगी भी बन्धनमें पड़ जाता है। किसी गृहस्थको कष्ट न दे कर जो कुछ मि- जाय, उसीमें सन्तोप मान लेना चाहिये। भ्रमरकी भांति अतः लोभमें न पड़ना चाहिये। हां, जिस प्रकार भ्रमर छोटे ब अनेक पुष्पोंका रस ग्रहण करता है, उसी प्रकार योगीको छो बड़े अनेक शास्त्रोंका सार ग्रहण करना चाहिये।

मधुमक्षिका—बड़े परिश्रमसे मधु संग्रह करती है, परन्तु वह उसके काम नहीं आता। कोई आकर मधु तो लेही जाता है साथही मक्खियोंका प्राण भी चला जाता है। अतः योगीको जितना हाथमें रह सके उतन ही अन्न ग्रहण करना चाहिये। उसे संग्रह करनेकी चिन्तामें न पड़ना चाहिये। अन्न भरनेके लिये केवल उदरहीकी पात्र समझना चाहिये। दूसरे दिनके लिये रख छोड़ना व्यर्थ है। ऐसा न कर मधुमक्षिकाकी तरह करनेसे अन्न और धनके साथ प्राण भी चला जाता है।

१३—हाथी—जब इसे पकड़ना होता है तब लोग नकली हाथिन बना कर खड़ी कर देते हैं। हाथी उसे स्पर्श करनेको अग्रसर होता है और गढ़ेमें गिर पड़ता है। उसी प्रकार पुरुष भी स्त्रियोंको स्पर्श करनेसे बन्धनमें पड़ जाते हैं। अतः योगीको स्त्रीकी प्रतिमाका भी स्पर्श न करना चाहिये।

१४—व्याध—जिस प्रकार मधुमक्षियोंके मधुका उपभोग करता है, उसी प्रकार कृपण मनुष्यका धनभी दूसरेही लोगोंके काम आता है। खोह और दर्रेमें होनेपर भी व्याधको जिस प्रकार मधुका पता मिल जाता है और वह उसे हरण कर लेता है, उसी प्रकार लोभीके धनकी भी टोह लगाकर लोग उसे उड़ा ले जाते हैं। अतः योगीको किसी वस्तुका संग्रह न करना चाहिये। जिस प्रकार मधुमक्षिकाओंके मधुका भोक्ता सर्व प्रथम व्याध होता है उसी प्रकार गृहस्थकी पाकशालाके पदार्थोंका प्रथम भोक्ता योगी होता है—गृहस्थ साधुको भोजनकराने के बाद स्वयं भोजन करते हैं—ऐसी दशामें योगीको अन्न एकत्र करनेका उद्योग न करना चाहिये।

१५—हरिण—जब इन्हें पकड़ना होता है, तो शिकारी मधुर स्वरसे गान गाता है। हरिण मोहित हो गति रहित हो जाता है और शिकारी उसे पकड़ लेता है। अतः योगीको स्वरके मोहमें कभी न पड़ना चाहिये। ऋष्यश्रृंग ऋषि वेश्याओंके गान और नयन-वाणोंसे मोहित हो पथ भ्रष्ट हो गये थे। योगीको यह ध्यानमें रखना चाहिये।

१६—मछली—जो लोग फँसाना चाहते हैं वह बंशीमें कांटा और खानेकी चीज बाँध पानीमें छोड़ देते हैं। मछली उसे निगल जाती है, परन्तु काँटा उसके गलेमें अटक जाता है और वह मर जाती है। उसी प्रकार रस-मुग्ध देहाभिमानी मनुष्य भी जिह्वाके फेरमें पड़कर प्राण खो बैठता है। विद्वान

मनुष्य आहारका परित्याग कर अन्यान्य विषयोंपर आसानीसे विजय प्राप्त कर सकते हैं। परन्तु जिह्वापर विजय प्राप्त करना सहज नहीं है। आहारको त्याग देनेसे स्वादेन्द्रियकी प्रबलता और भी बढ़ जाती है अन्य इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त कर लेनेपर भी यदि स्वादेन्द्रिय निरंकुश हैं, तो वह जितेन्द्रिय नहीं कहा जा सकता। रसनाको जीतनेवाला ही सच्चा जितेन्द्रिय हो सकता है। योगीको रसकी आसक्तिसे मुक्त हो औषधिकी तरह भोजन ग्रहण करना चाहिये।

१७—पिङ्गला—इस नामकी एक वेश्या विदेह राजाके नगर में रहती थी। एक दिन वह किसी धनी मनुष्यको फँसाने के लिये शृङ्गार कर दरवाजे पर बैठी हुई थी। एकके बाद एक, अनेक मनुष्य वहांसे निकल गये; परन्तु उसे यथेच्छा धन देकर सन्तुष्ट करनेवाला कोई न मिला। वह सारी रात बैठी रही परन्तु उसकी आशा पूर्ण न हुई। चिन्तातुर रहनेके कारण उसे रातभर निद्रा न आयी। अन्तमें वह ऊब उठी और बोली कि—"अब यह व्यवसाय न करूंगी।" उसके हृदयमें सुबुद्धि जागरित हो उठी और निराशाके कारण उसे वैराग्य आ गया। वह कहने लगी,—"अहो! विवेक न रहनेके कारण मैं अपना मन न जीत सकी। तुच्छ पुरुषोंसे मैं कामकी इच्छा रखती हूँ! अन्तर्य्यामी परमेश्वर जो निरन्तर साथ रहता है, जो धन और आनन्द देता है उसे छोड़ मैं दुःख, भय, रोग, शोक और मोहके देनेवाले मनुष्योंकी मूर्खतासे सेवा करती हूं।

मैं लोभवश अपने शरीरको बेंच निर्लज्ज हो, धन और रतिकी इच्छा रखती हूं। ऐसे नीच व्यवसायसे आज मुझे घृणा उत्पन्न हो गयी। मेरे हृदयमें बड़ा सन्ताप हो रहा है। पुरुषों का शरीर अस्थि और मांससे बने हुए गृहके तुल्य हैं। चमड़े से वह मढ़ा और मल मूत्रसे भरा हुआ है। हाय! मैं अकेली ही इस विदेह नगरमें ऐसी मूर्खा हूँ जो उसका सेवन करती हूँ। रूप और लावण्यको देनेवाले, उस अविनाशी परमपिता को छोड़, मैं व्यर्थ ही औरोंको भजती हूँ। इस लोक और परलोकमें उसके अतिरिक्त और कोई माननीय नहीं कहा जा सकता। मेरे पूर्व जन्मके सुकृत्यसेही आज मुझे ज्ञान हुआ और नीच आशासे वैराग्य उत्पन्न हुआ। यह उसी परमात्मा की कृपा है। मैं अब पामर मनुष्योंकी आशा छोड़ उसी जगदीश्वरकी आशा करूँगी। मैं अब उन्हींका आश्रय ग्रहण करूँगी, यह जीव, संसार रूपी कूपमें पड़ा हुआ है, विषयोंसे अन्ध हो रहा है और कालरूपी सर्पने उसे पकड़ रक्खा है। ईश्वर के सिवाय और कोई उसकी रक्षा नहीं कर सकता। अतः मैं प्रेम पूर्वक ईश्वरकाही भजन करूंगी।" इस प्रकार पिङ्गला निश्चयकर, कान्तकी तृष्णसे जो आशा उत्पन्न हुई थी, उसे छोड़ शान्ति-शय्यामें विश्राम करने लगी। योगीको समझ रखना चाहिये कि आशामें दुःख और निराशामेंही सुख है। पिङ्गलाने पतिकी आशा छोड़ कर ही सच्चा सुःख, सच्ची शान्ति और सच्चा आनन्द प्राप्त किया।

१८—चील—मांसका एक टुकड़ा लिये उड़ी जा रही थी। किसी दूसरे पक्षीने उस पर आक्रमण किया। जब चीलने मांस छोड़ दिया तब उसके प्राण बचे। योगी पुरुष प्रिय वस्तुओंका परित्याग करनेसेही सुखी हो सकता है अन्यथा नहीं।

१६—बालक—मानापमानको नहीं गिनता। माता पिता के समान चिन्तित नहीं रहता। कामादिक विकारोंसे विरक्त और अपने खेल कूदमें प्रसन्न रहता है। उसी:प्रकार योगीको मानापमानपर ध्यान न दे निश्चिन्त, विरक्त और अपना कर्त्तव्य क्रीड़ामें मग्न रहना चाहिये।

२०—कुमारीका—एक कन्या घरमें अकेली थी। उसी समय उसके यहाँ अतिथि आ पहुंचे। उन्हें भोजन करानेके लिये कन्या धान कूटने लगी। ऐसा करते समय इसकी चूड़ियाँ खनकती थीं। उसने एकके बाद एक सब चूड़ियाँ निकाल डालीं। जब एक एक चूड़ीया हाथमें रह गयी तब उनका शब्द होना बन्द हो गया। योगी पुरुष भी एकान्तहीमें अच्छी तरह भगवद् भजन कर सकता है।

२१—लुहार—बाण बना रहा था। वह इस तरह उसमें मग्न था, कि पाससे राजाकी सवारी निकल गयी परन्तु उसे उसकी खबर न हुई। नगाड़ोंकी गड़गड़ाहट भी उसका ध्यान भङ्गकर न कर सकी। योगीको भी जितेन्द्रिय हो एकाग्र चित्तसे ईश्वरका भजन करना चाहिये। परमानन्द रूप भगवानमें चित्तको इस प्रकार लगाना चाहिये, कि वह उसीमें लीन

हो जाय और विषय वासनायें स्वयं उसका साथ छोड़ दें। रजोगुण तथा तमोगुण ही विक्षेप तथा लयके मूल हैं। शम रूपी सतोगुणसे उनका निवारणकर गुण और उनके कार्यों से रहित हो निवृत्ति प्राप्त करनी चाहिये। वृति रहित मनका ब्रह्मकारमें रहना ही "असंप्रज्ञात" नामक समाधि है। जिसका मन ब्रह्मकार रहता है, उसे द्वैतका स्फुरण ही नहीं होता।

२२—सर्प—जिस प्रकार अकेला रहता है, कहीं स्थिर होकर अधिक समय नहीं बैठता, सदा सावधान रहता है। एकान्त सेवन करता है। गति देखनेसे विष रहित किंवा विष युक्त नहीं मालूम होता। किसीका सङ्ग नहीं करता और बहुत कम बोलता है। उसी प्रकार योगीको अकेले रहना चाहिये। एक स्थानपर स्थिर न रहना चाहिये। सावधान भी रहना चाहिये और एकान्त सेवन करना चाहिये। अपनी आन्तरिक बातोंका पता न लगने देना चाहिये। किसीको अपने साथ न रखना चाहिये और कम बोलना चाहिये। साथ ही जिस प्रकार सर्प अपने लिये स्वयं निवासस्थान तय्यार नहीं करता परन्तु किसी दूसरेके बनाये हुए छिद्रोंमें निर्वाह कर लेता है, उसी प्रकार योगीको अपना घर न बनाना चाहिये। जीवन अनित्य है अतः गृह रचना व्यर्थ है। योगीके लिये गृह निर्म्माण भी बन्धन स्वरूप है।

२३—मकड़ी—स्वयं अपना जाल तय्यार कर लेती है। आपी आप तन्तुका विस्तार कर क्रीड़ा करती है और इच्छा

नुसार फिर उसे निगल भी जाती है। उसे इस कार्य्यके लिये अन्य साधनोंकी आवश्यकता नहीं पड़ती। ईश्वर भी इसी तरह सृष्टिकी रचना कर विहार करता है और इच्छानुसार उसे समेट भी लेता है। इस कार्य्यके लिये उसे दूसरोंकी सहायता नहीं लेनी पड़ती, न वह अन्य साधनोंका ही सहारा लेता है।

२४—भँवरी—यह अपने घरमें किसी भी कीड़ेको पकड़कर बन्द कर देती है। वह कीड़ा भयभीत हो उसका ध्यान धरते धरते स्वयं उसके रूपमें परिणित हो जाता है। उसी प्रकार प्राण जिस जिस वस्तुमें मनको एकाग्र करता है उस वस्तुके रूपमें परिणित हो जाता है। जब कीड़ा अपने उसी शरीरसे भँवरी ध्यान द्वारा भँवरी बन जाता है तो क्या मनुष्य ईश्वर के ध्यानसे ईश्वरको नहीं प्राप्त कर सकता?

इस प्रकार दत्तात्रेयने इन चौबीस गुरुओंसे ज्ञान ग्रहण किया था। इनके अतिरिक्त उन्होंने अपनी देहसे भी शिक्षा प्राप्त की थी। वह इस प्रकार है—

देहके पीछे जन्म और मरणकी व्याधी लगी हुई है। उसे सुख देनेके लिये जो उद्योग किये जाते हैं वह अन्तमें दुःखजनक सिद्ध होते हैं। परन्तु उसका त्याग करना श्रेयस्कर नहीं है, क्योंकि विवेक और वैराग्यकी उत्पत्ति भी उसीसे होती है। योगीको चाहिये, कि वह अपनी देहको कौवे और कुत्तोंका भक्ष समझे, उसमें लिप्त न हो, और उसे सुख देनेकी

चेष्टा न करे। मनुष्य, देहको सुख देनेके लिये संसारमें स्त्री पुत्र, धन, धान्य और गृह इत्यादि एकत्र करता है, आत्मीय-स्वजनोंकी संख्यामें वृद्धि करता है और सबका पालन भी करता है। इतना उद्योग करने पर भी उसकी वह देह स्थिर नहीं रहती, बल्कि दूसरी देहके बीज रूपमें कर्म्मोंका उत्पादन कर यह नष्ट हो जाती है। एक पुरुषकी अनेक स्त्रियां हों और यह सबकी सब उसे अपनी ओर खींचती हों उसी तरह देहाभिमानी मनुष्यको विषय-वासनायें चारो ओरसे अपनी अपनी ओर खींचती हैं। जिह्वा-रसास्वादनके लिये, तृषा जलके लिये, काम वासना-विषय भोगके लिये, त्वचा-स्पर्श जन्य सुखोंके लिये, घ्राण-सुगन्धित द्रव्योंके लिये, चपल चक्षु रूप दर्शनके लिये, और श्रवण मनोहर ध्वनिके लिये अपनी अपनी ओर खींचते हैं। कर्म्मेन्द्रियोंकी खींचतान भी बड़ी प्रबल होती है। ऐसी दशामें गढ़ेमें गिरनेके सिवाय क्या कोई मनुष्य सच्चा सुख प्राप्त कर सकता है?

दत्तात्रेयको यही बातें देख वैराग्य उत्पन्न हुआ। ईश्वरने अपनी शक्ति रूपी मायासे वृक्ष, पशु, पक्षी इत्यादि अनेक प्रकारके जड़ और चेतन पदार्थ उत्पन्न किये हैं। उनमेंसे एककी भी बुद्धि ऐसी न थी कि जो परमात्माको अपरोक्ष कर दे। ईश्वरको यह देख सन्तोष न हुआ। उन्होंने मनुष्य प्राणी की रचना कीं। मनुष्यही एक ऐसा प्राणी है जो संसारमें सब कुछ करनेको समर्थ हैं। वह परमात्माको प्रत्यक्ष सिद्ध

करने की बुद्धि रखता है। मनुष्य देह अखिलेशकी रचनाका सर्वश्रेस्ट और अन्तिम नमूना है।

जिसने दुलभ नर-देह प्राप्तकी हो, उसे ईश्वर पर निष्ठा रखनी चाहिये, क्योंकि अनेक जन्मोंके बाद इस योनिमें जन्म मिलता है। यद्यपि यह देहभी अनित्य है; तथापि पुरुषार्थको देने वाली है। ज्ञानी, विद्वान और विवेकी मनुष्यको; मृत्युके पूर्वही अपना कल्याण कर लेना चाहिये। विषय-सुख तो पशु पक्षी और कीट पतङ्गोंकी योनिमें भी मिल सकता है, परन्तु आत्मकल्याण केवल मनुष्य देहसेही किया जा सकता है।

दत्तात्रेयने सांसारिक सुखोंको तुच्छ समझ परमात्माकी प्राप्तिके लियेही उद्योग करना उचित समझा। अहङ्कार रहित हो वह सबका साथ छोड़ अवधूत योगीके रूपमें विचरण करने लगे। अनेक लोगोंको उपदेशदे, उन्होंने आत्म-कल्याणका मर्म दिखाया था। वह अवतारी पुरुष थे। ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र चारों वर्णके लोग उन्हें सम्मानकी दृष्टिसे देखते हैं। उनका स्मरण और पूजन भी करते हैं।

उनके प्रति पूज्य बुद्धि रखने वाले किसी मनुष्यने अनुमानतः १४०० वर्ष पूर्व उनके नामसे एक धर्म स्थापित किया था। उस धर्ममें ब्राह्मण क्षत्री और वैश्य, ब्रह्मचारी, वनवासी, सन्यासी, परमहंस, योगी, मुनि, और साधु सभी हो सकते हैं। यह लोग अपनी आत्माको ईश्वर रूप सर्वज्ञ मानते हैं उसे मूर्तिमान समझ अखण्ड समाधिमें रहनेके लिये अष्टाङ्ग योगको

समस्त क्रियायें करते हैं। अहिंसात्मक रहते हैं। और जीव दया धर्म पालन करते हैं। गुरुकी आज्ञा मानते हैं और सत्य शास्त्रोंका अध्ययन कर मोक्ष साधनमें कालक्षेप करते हैं। उनके मुख्य सिद्धान्त इस प्रकार हैः—

ईश्वर निराकार है। सृष्टि आत्माकी भ्रान्तिसे कल्पित भावमें स्थिर है। प्रकृतिके धर्मोंका तिरस्कार करना चाहिये। निवृत्तिमें लीन रहना चाहिये। सत्य, तप, अपरिग्रह, दया क्षमा धर्म्म अर्थ, मोक्ष और वैराग्यका सम्पादन करना चाहिये। मादक द्रव्योंसे दूर रहना चाहिये—इत्यादि।

इन सिद्धान्तोंको लेकर दत्तात्रेय—धर्मकी स्थापना हुई थी, परन्तु समयके प्रवाहमें पड़ कर उनके अनुयायी भी मूर्त्ति पूजा करने लगे हैं। मद्य और मांसका उपयोग करते हैं। योग-ज्ञानके अभावसे उनकी दशा शोचनीय हो गयी है। बाकी, उनके मूल-सिद्धान्त बहुतही अच्छे थे। चारोंवर्णके मनुष्य इस धर्म्मके अनुयायी पाये जाते हैं।

प्रत्येक मनुष्यको यह जीवनी पढ़ कर लाभ उठाना चाहिये दत्तात्रेयने चौबीस गुरुओं द्वारा जो ज्ञान ग्रहण किया था वह बड़ा गम्भीर और मनन करने योग्य है। पाठकोंको उससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

द्वितीय खण्ड

देवांशी महापुरुष ।

मनु भगवान.
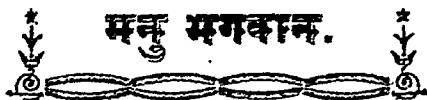
मनु मानव कुलके आदि पुरुष थे। उनके पिता थे सूर्य भगवान। वह सत्ययुगके प्रारम्भमें हुए थे। उस समय सारा जगत अन्धकारमय था। परमात्माकी इच्छासे प्रलय हो गया था। संसारमें कोई शेष न बचा था

ज्ञानमय परमात्माने स्वेच्छा पूर्वक सर्व प्रथम अन्धकारका नाश किया। फिर जल उत्पन्न किया। जलमें बीज बोया। बीजसे अण्ड उत्पन्न हुआ। उस अण्डको फोड़ कर ब्रह्म स्वरूप परमात्मा प्रकट हुए। उन्होंने उस अण्डेके दो टुकड़ोसे पृथ्वी और स्वर्ग निर्म्माण किये, बीचमें आकाश रक्खा और जलके लिये स्थल नियत किया। फिर अपना तेजोमय आत्म-तत्व और उसमेंसे अहङ्कार, मन, सत, रज तम यह तीन गुण, शब्द, स्पर्श, रस, रूप

गन्ध इन विषयोंकी पंच ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्म्मेन्द्रियाँ तथा पंच महाभूत, उत्पन्न किये। फिर दक्षिण अङ्गसे पुरुष और वाम अङ्गसे स्त्री, यह दो पदार्थ रूप निर्म्माण किये। उनसे विराट् पुरुषकी उत्पत्ति हुई। विराट्से मनु हुए और मनुसे मानव सृष्टिका विस्तार हुआ।

सृष्टिका विस्तारकर मनुष्योंको धर्म्म-शास्त्रकी शिक्षा देनेके लिये प्रत्येक कल्पमें चौदह मनु होते हैं। दो मनुओंके बीचका अन्तर काल "मन्वन्तर" कहा जाता है। इस कल्पमें स्वयंभू, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत और चाक्षुसः यह छः मनु होचुके हैं। प्रत्येक मनु चक्रवर्त्ती नरेश थे। इस बातसे पता चलता है कि छे बार यह सृष्टि उत्पन्न होकर नाश हो चुकी है।

वर्त्तमान मनु, जिनका हम वर्णन कर रहे हैं—सातवें मनु हैं। उनका नाम था—वैवस्वत-सूर्य। लोग इन्हें द्वितीय रैवत और सत्यव्रतके नामसे भी पुकारते हैं। उनकी स्त्रीका नाम था श्रद्धा। मनु सृष्टिका प्रलय अपनी आंखोंसे देखना चाहते थे। वह इसके लिये बड़े लालायित थे। अपनी इच्छा पूर्ण करनेके लिये वह राजपाट छोड़कर तपस्या करने लगे। एक दिन उन्हें भगवानने दर्शन दे कर बतलाया, कि आजके सातवें दिवस प्रलय होगा। उस दिन सारा जगत नाश हो जायगा। तुम मेरे अनुग्रहसे वह दृश्य अपनी आंखोंसे देख सकोगे। उस समय मैं पुनः तुम्हें दर्शन दूँगा और तुम जो बातें पूछोगे,

वह बतलाऊँगा। इन सात दिनोंमें तुम ऐसे आवश्यक पदार्थ एकत्र कर अपने पास रख लेना, जो तुम्हें सृष्टि रचनाके लिये भविष्यमें काम आयें।

भगवान् इतना कह अन्तर्ध्यान होगये। मनुने एक नौका तय्यार करायी। सब पदार्थोंके बीज एकत्र कर उसमें रख लिये। अन्तमें सप्त ऋषि और स्त्री पुत्रादिक आत्मीयजनों सहित वह भी उसीमें बैठ गये। सातवें दिन भीषण जल-प्रलय हुआ। समस्त संसार जल-तरङ्गोंमें लीन होगया और एक भी मनुष्य जीता न बचा। भगवान्ने मत्स्यका रूप धारण कर मनुको यह लीला दिखायी और उद्भिज तथा प्राणीमात्रके बीजही उस महाप्रलयमें लीन होनेसे बच सके। ईश्वरेच्छासे जब शान्ति स्थापित हुई, तब वह नौका सुमेरु पर्वतके शिखरपर अटक गयी। अनन्त जल-राशिके बीचमें वही भूमि-भाग सर्व प्रथम दृष्टिगोचर हुआ। मनुने वहींसे सृष्टि रचना आरम्भकी। उनकी सन्तति आज संसार भरमें फैली हुई है। मनुके कारणसे वह मानव किंवा मनुष्यके नामसे पुकारी जाती है। आजकल सुमेरु पर्वतका नाम बदल गया है अतः यह ठीक पता नहीं चलता, कि वह कहां पर है। सृष्टिका आदि उत्पत्ति स्थान इस समय कोई तिब्बत कोई हिन्दुकुश और कोई काकेशस पर्वतके पास बतलाते हैं।

ज्यों ज्यों मनुकी सन्तानें बढ़ने लगीं, त्यों त्यों वह आस-पासके प्रदेशोंपर अधिकार जमाती गयीं। जलराशि दिन प्रति

दिन घट रही थी और उसमेंसे भूमि निकलती आ रही थी। मनुने सुमेरुके पासकी भूमि नृग, शर्य्याति, दिष्ट, धृष्ट, करुपक, नरिष्यन्त, पृषध्र और नभग इन आठ पुत्रोंमें बांट दी। वह अपने अपने प्रदेशपर शासन करने लगे। इक्ष्वाकु उनके जेष्ट पुत्र थे। वह और मनु इस देशमें चले आये और अयोध्यापुरी बसा कर शासन करने लगे। मनुके ईला नामकी एक कन्या भी थी। उसका विवाह बुधके साथ हुआ। बुध, चन्द्रमाका पुत्र था। ईलाने कुछ दिन बाद पुरुरवा नामक पुत्रको जन्म दिया। पुरुरवाने प्रयागमें अपना राज्य स्थापित किया। यह चन्द्रवंशियोंका राज्य कहलाया।

इस प्रकार सृष्टिकी वृद्धि होती गयी। भारतमें सूर्य और चन्द्रवंशियोंका राज्य स्थापित हुआ। अन्दर बाहर सर्वत्र सूर्य वंशियोंकाही अधिकार था। वैवस्वत मनु सर्वोपरि थे और वही चक्रवर्ती कहे जाते थे। उनके पास कश्यप, अत्रि, वशिष्ट विश्वामित्र, गौतम, भारद्वाज और यमदग्नि-यह सात ऋषि थे। मनु उनके आदेशानुसार सृष्टिकी व्यवस्था करते थे। ज्यों ज्यों मनुष्य बढ़ते गये, त्यों त्यों उनकी शिक्षा दीक्षा और रक्षाका भार बढ़ता गया। मानुने सबको पृथक पृथक कर्म बता दिये। उनको शिक्षा और उपदेश देनेका काम ऋषियोंने अपने जिम्मे ले लिया।

मनु और ऋषियोंके प्रबन्धसे सृष्टिका कार्य सुचारु रूपसे चलने लगा। प्रजा अपने धर्म्म कर्म्मको समझ, तदनुसार

आचरण करने लगी। लोग यह जान गये, कि ज्ञान तत्व सर्व व्यापक है और उसके साथ सबका सम्बन्ध है। जीवात्मा अपने भले या बुरे कर्म्मानुसार भली या बुरी दशाको प्राप्त होता है। वह कर्म्मानुसार अनेक योनियोंमें जन्म लेता है। दण्ड और कष्ट भोग चुकनेके बाद निर्दोष हो जाता है और फिर कायिक, वाचिक तथा मानसिक कर्म्मोंपर अंकुश रख परमात्मामें लीन हो जाता है। सकाम कर्म्मसे स्वर्ग और निष्काम कर्म्मसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। वेदाध्ययन और वेदार्थपर विचार करनेसे सत्य-कर्म्म और सत्य ज्ञानको अनुभूति होती है।

इस प्रकार समझकर लोग अपने कर्त्तव्यमें लीन रहते थे। इन्द्र, वरुण और अग्निका स्तवन करते थे। यज्ञ द्वारा देवताओंको प्रसन्न रखते थे और तपश्चर्य्या कर परमात्माको प्राप्त करते थे। उस युगमें कोई भी अधर्म्माचरण न करता था। सब लोग सत्य बोलते और सच्चाही आचरण रखते थे, वह दीर्घायु हो; अन्त काल पर्य्यन्त ऐश्वर्य्य भोग, धर्म्मार्थ साधन और मोक्ष सम्पादन करते थे। उनमें परस्पर मनोमालिन्य और ईर्षा द्वेष न रहता था। सब ऐक्यके एकही सूत्रमें बंधे हुए थे। फूटका तो उन्होंने नाम भी न सुना था। ब्राह्मणोंका विशेष महत्त्व था। वही सबको धर्म्म, नीति और विद्याका उपदेश देते थे। उन्हींके कारण आर्य्य प्रजा सर्व कला कुशल, विद्वान और धन धान्यसे सम्पन्न थी। ब्राह्मणोंकी शिक्षासे ही

वह उन्नतिके सर्वोच्च शिखरपर आरूढ़ होनेमें समर्थ हुई थी। महर्षियोंने तत्वज्ञान, धनुर्विद्या, ज्योतिष, खगोल, भूगोल, भूतल, भूस्तर, पदार्थ-विज्ञान, रसायन ज्ञान, कृषिकर्म्म, वैद्यक, विमान, अग्निरथ, संजीवनी विद्या, परकाया प्रवेश, सङ्गीत, नृत्य, वचन-सिद्धि और शस्त्रास्त्र आदि विद्याओंका अविष्कार किया था। उनपर ग्रन्थ लिखे थे और संसार भरको शिक्षा दो थी।

महात्मा मनुका शासनाधिकार संसार भरमें फैला हुआ था और चारों ओर उनकी कीर्त्ति ध्वजा उड़ रही थी। प्रजा उनसे सर्वथा सन्तुष्ट रहती थी। किसीको किसी प्रकार कष्ट न था। सब लोग विद्या, कला, सद्‌गुण और सम्पत्तिसे सम्पन्न थे उनके जानोमाल सुरक्षित रहते थे। अधीन रहनेपर भी लोग स्वाधीनताका सुख भोग करते थे और सभ्यताकी उच्च श्रेणीपर पहुँच गये थे।

मनुके राजत्व कालमें धर्म-नीति और विद्या ज्ञानकी ओर बड़ा ध्यान दिया जाता था। यही कारण था, कि प्रजाने अपनी उन्नति आपीआप कर ली थी। आजकल भारतमें उपर्युक्त दोनों प्रकारके ज्ञानका अभाव पाया जाता है। यदि कहने सुनने के लिये, वह शेष है, तो सर्वथा दोष पूर्ण और अधूरा है। देश की उन्नति इन दोनोंपर ही निर्भर है। हमें अपनी दशा सुधारनेके लिये इनकी ओर पूरा पूरा ध्यान देना चाहिये। धर्मनीति और विद्या ज्ञान द्वारा मनुष्य संसारमें अपने पद और कर्त्तव्य को समझनेमें समर्थ होता है। अपने परम पिताको पहचानना

है और परस्पर वैमनस्य त्याग मिलजुलकर रहना सीखता है। दुर्गुण, सद्गुण और पाप-पुण्यका रूप समझता है और विविध पदार्थोंका उपयोग करना जानता है। आजीवन सुख भोग करता है और मृत्युके बाद मोक्ष प्राप्त करता है। जिसे धर्म नीतिका ज्ञान नहीं है और जो अविद्यासे घिरा है, वह इन बातोंको क्या समझेगा, और क्या करेगा?

प्रजाकी शिक्षा दीक्षा, ज्ञान और उन्नति, राजा और धर्माचार्य्योंपर निर्भर है। वह चाहैं तो प्रजाको ज्ञानी, उन्नत सुशिक्षित और सुखी बना सकते हैं। धर्म्माचार्य्योंसे भी राजा पर इस कार्य्यकी जिम्मेदारी अधिक है। राजा प्रजाके लिये योग्य और सर्व गुण सम्पन्न आचार्य्योंका प्रबन्ध कर दे। तभी प्रजा लाभान्वित हो सकती है, अन्यथा नहीं। धर्म नीति और विद्याके प्रभावसे प्रजाका हृदय निर्मल हो जाता है और वह शान्ति पूर्वक अपना कर्त्तव्य पालन करती है। जब वाणिज्य व्यवसाय द्वारा धनोपार्ज्जनकर प्रजा सुख भोग करेगी, तब राजाको भी लाभ होगा। प्रजाकी उन्नतिसे राजाकी भी उन्नति होती है। जब प्रजा अज्ञानी और निर्धन होगी तो राजाको लाभ कहाँसे होगा?

सत्यका आदर ही राज्योत्कर्षका मूल है। मनुने इस नियमको ध्यानमें रख, प्रजाको तत्वज्ञान, व्यवहार नीति, औदार्य्य, त्याग, तप, धैर्य्य, पराक्रम उद्योग, इत्यादि विषयोंकी शिक्षा दी। वह प्रजाके कल्याणमें ही अपना कल्याण समझते थे। उन्होंने

सांसारिक तुच्छ सुखोंकी इच्छा न की थी। अर्वाचीन शासकोंकी तरह प्रजाको दुःख दे, अपना भण्डार भरनेमें रातदिन ऐशोआराम और ऐश्वर्य्य भोग करनेमें, वह लीन न रहते थे। उनके हृदयमें निरन्तर यही विचार जमा रहता था कि प्रजा किस तरह सुखी हो और मृत्युके बाद भी परम पद प्राप्त कर प्रसन्न रहे। अपने मन्त्रियोंसे वह इस विषयपर परामर्श करते और फिर निश्चयको कार्य्यरूपमें परिणत करते। सामर्थ्य हीन प्रजासे वह राजस्व न लेते। जो देने योग्य थे, उनसे यथोचित प्रमाणमेंही लेते। कृषकोंसे उनकी आयका छठवां भाग ग्रहण करते और उसे प्रजा-रक्षण प्रभृति आवश्यकीय कार्य्योंमें सुचारु रूपसे व्ययकरते। राजकाजसे जब उन्हें अवकाश मिलता, तब वह अपने मंत्री मण्डल तथा विद्वानोंको एकत्र कर प्रजा हितके लिये नियमावली तय्यार करते और प्रजाको समझाते। प्रजा उनसे इस प्रकार प्रसन्न रहती थी कि उसने उन्हें "भगवान्" की उपाधिसे विभूषित किया था। आज भी लोग उन्हें मनुभगवान्‌के नामसे सम्बोधित कर उनके प्रति सम्मान प्रकट करते हैं।

पाठकों! मनुभगवान् आदि स्मृतिकार थे। उन्होंने जिस स्मृतिकी रचना की, वह मनु-स्मृति किंवा मानव-धर्म्म-शास्त्रके नामसे विख्यात है। उनके नियम प्रत्येक कार्य्यके लिये इतने अनुकूल हैं, कि अर्वाचीन विद्वान उन्हें देखकर आश्चर्य्य प्रकट करते हैं। आजकल शासन व्यवस्थाके लिये शासकोंको

वार वार कानूनोंकी रचनाकर, उनमें परिवर्तन और शुद्धि वृद्धि करनी पड़ती है। परन्तु मनुभगवानके नियम ऐसे सिद्ध हैं, कि अद्यापि उनमें परिवर्त्तन करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ी। अब भी आर्यप्रजा और राजा उनकी आज्ञाओंको आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। हमारे लिये यह बड़े आनन्द और गौरवकी वात है। उनकी आज्ञाओंमें उच्च कोटिकी नीति दृष्टिगोचर होती है। और बड़ा विचार करनेके वाद, वह इस रूपमें रक्खी गयी है।

मनुस्मृतिमें शास्त्र, चतुर्वर्ण, चार आश्रम, धनी मानी और निर्धन प्रत्येक के धर्म्म, तथा कर्म्म, क्रिया, व्यवहार, नीति, न्याय और आचारपर विचार किया गया है। अनीति और अन्याय पर दण्ड देनेकी वात भी उसी प्रकार समझायी गयी है। राज्य व्यवहार, राजनीति, राज्यव्यवस्था, धर्म्म व्यवस्था युद्ध नियम, संसार स्थिति, कला, विद्या, गृहस्थाश्रमके धर्म्म इत्यादि मनुष्यके जन्मसे लेकर मृत्यु पर्य्यंतके कर्त्तव्यों पर आज्ञा दी गयी है।

उन्होंने स्त्रीको लक्ष्मी-स्वरूपा कहा है। उसके आशिर्वादसे आनन्द मिलता है। उसे दुःख देनेसे दुःख मिलता है और लक्ष्मीका नाश होता है। स्त्रियोंके लिये पति भिन्न अन्य पुरुषका चिन्तवन करना व्यभिचार वतलाया है। स्त्री पतिके धर्म्मकृत्यकी अर्द्ध भागिनी हो स्वर्ग और मोक्षादिक प्राप्त करती है। विवाहिता स्त्रीको उन्होंने गृहिणी (गृह-रानी) वतलाया

है। व्यभिचारकी बड़ी निन्दाकी है। उन्होंने यह भी कहा है कि जो पुरुष अपनी विवाहिता स्त्रीका त्याग करे, उसे दण्ड देना चाहिये। स्त्रीको पतिकी आज्ञा शिरोधार्य्य कर उसे सुखी रखनेका उद्योग करना चाहिये। पतिको अप्रिय लगे ऐसा आचरण करना पाप है। पराक्रम रूपी वीर्य्य और लज्जारूपी रज-स्त्री पुरुषको सुरक्षित रखने चाहियें। उन्होंने स्पष्ट कहा है, कि व्यभिचारिणी स्त्रीको बीच बाजारमें कुत्तोंसे नोंचवाना चहिये।

मनुभगवान्के वचन मनन करने योग्य हैं। उन्होंने समुद्रमें लकड़ीको तैरते देख, नौकाकी रचना की थी। प्रजाहितके कार्य्य कर अन्तमें वह तपस्या करने चले गये। सारा राज्य अपने पुत्रोंमें बाँट दिया और आप परम पदको प्राप्त हुए। उनके नियमानुसार आचरण करनेसे प्रजा पतित नहीं हो सकती और उनके कथनानुसार दण्ड देनेसे अनाचारका प्रचार नहीं हो सकता। धन्य है ऐसे महापुरुषको!

देवराज नहुष.

नहुषका जन्म सत्ययुगमें हुआ था। उनके पिताका नाम आयु और उनकी स्त्रीका नाम वीरजा था। वीरजा स्वधा नामक पितृकी मानस कन्या थी। नहुषने अनेक यज्ञ किये थे, वर्षों तक तपस्याकी थी और धर्म्मनीति युक्त आचार विचार रक्खे थे। उनके इस धर्म्माचरणको देख देवता और ऋषिगण बड़े प्रसन्न रहते थे।

इन्द्रने जब वृत्रासुरका वध किया, तब उन्हें ब्रह्महत्याका दोष लगा। वह इस पापका प्रायश्चित किये बिना सिंहासन पर नहीं बैठ सकते थे। अतः वे भयभीत हो कर कमलवनमें छिप रहे और उनके विना सुरपुरीमें खलबली मच गयी।

राज-सिंहासन खाली पड़ा था। प्रबन्ध करनेके लिये एक अधिकारीको अत्यन्त आवश्यकता थी। इन्द्रका कहीं पता भी न था। देवता और ऋषियोंने एक सभाकर किसी महान् पुण्यात्माको उस पद पर नियुक्त करनेका निश्चय किया। पवित्र पुरुषकी खोज होने लगी और अन्तमें नहुष उस पदके योग्य समझे गये। यथा विधि उनका अभिषेक हुआ और वह सिंहासनारूढ़ कराये गये। ऋषियोंने उन्हें इन्द्रका पद प्रदान किया और

देवताओंने उनकी अधीनता स्वीकार कर उनका बड़ा सम्मान किया। नहुष बड़ी योग्यताके साथ स्वर्ग लोकका शासन करने लगे और अतुल ऐश्वर्य्यके भोक्ता बन आनन्द पूर्वक दिवस विताने लगे।

ऐश्वर्य्य, धन, पद, राज्य और रूप इत्यादि प्राप्त कर प्रत्येक मनुष्यको अभिमान हो जाता है। नहुष भी अपने आपको उस प्रबल शत्रुसे न बचा सके। जिस पवित्रता और सदाचारको लेकर वह इस उत्कृष्ट पदको प्राप्त कर सके थे, उसे भूल गये। भूतपूर्व इन्द्रकी स्त्री सती और साध्वी थी। मदान्ध हो नहुष उसे कुदृष्टिसे देखने लगे। अपने मनोविकारको वह अधिक दिन पर्य्यन्त न छिपा सके। एक दिन दूतको भेज उन्होंने अपनी अभिलाषा व्यक्त की और इन्द्राणीको बुला भेजा। इन्द्राणी चिन्तातुर और क्रुद्ध हुई। उसने सारा हाल देव गुरु बृहस्पतिसे निवेदन किया। बृहस्पतिने उसे आश्वासन देकर शान्त किया और किसी युक्तिसे काम लेनेका आदेश दिया।

देवताओंको किसी प्रकार इन्द्रका पता मिल गया। वह उनका पातक दूर करनेके लिये प्रायश्चित करानेकी योजना करने लगे। अश्वमेध यज्ञ कराना स्थिर हुआ। उसी कमल काननके तटपर यज्ञारम्भ हुआ और यज्ञकी समाप्तिके साथ ही साथ इन्द्रका पातक भी दूर हो गया। उनका दोष, वृक्ष, नदी, पर्वत, पृथ्वी, और स्त्री इन पाँचके शिर पड़ा और वह स्वयं ब्रह्म हत्याके पापसे मुक्त हो गये।

उधर यह उद्योग हो रहा था और इधर इन्द्राणीको प्राप्त करनेके लिये नहुष लालायित हो रहे थे। इन्द्राणीने उनसे भेंट करना स्वीकार कर लिया; परन्तु कहला भेजा कि,— "आप किसी अपूर्व वाहनपर आरूढ़ हो कर मेरे पास आइये, मैं आपसे मिलनेको तय्यार हूँ, मगर वाहन वह हो, जिसपर आज तक कोई चढ़ा न हो।"

इन्द्राणीने सोचा था, कि न अपूर्व वाहन मिलेगा न नहुष मेरे पास आवेगा। मगर कामान्धके हृदयमें धैर्य्य कहाँ! लज्जा और विवेक को वह पहलेही जलाञ्जलि दे देता है। नहुष की बुद्धि भ्रष्ट हो गयी थी। वह अपूर्व वाहनकी खोज करने लगा जब विनाशका समय आ जाता है तब बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है; और जिनकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है उनका अनेक प्रकारसे पतन होता है। नहुषने ऋषियोंको बुलाया और उनसे पालकी उठवायी। आप उसमें आसीन हुआ। उसे यह वाहन अपूर्व प्रतीत हुआ। सचमुच, कामी मनुष्य नेत्र रहते हुए भी अन्धा हो जाता है। उसके ज्ञान चक्षु भी बेकार हो जाते हैं और उसे कुछ भी भला बुरा नहीं सुझायी पड़ता।

ऋषियोंने पालकी उठायी और इन्द्राणीके मन्दिरकी ओर ले चले। राजाको हमारे शास्त्रकार ईश्वरका अंश बताते हैं। उसकी आज्ञाका विरोध करना ईश्वरका अपमान करना है। यही समझकर ऋषियोंने उसकी अनुचित आज्ञाका विरोध न किया। उन्होंने कभी पालकी उठायी न थी अतः उसे उठाकर ठीकसे

चल न सकते थे। उनकी धीमी चालसे नहुषका धैर्य्य छूट गया। वह इन्द्रानीसे मिलनेको अधीर हो रहा था। उसने बारम्बार ऋषियोंको त्वरा पूर्वक चलनेको आज्ञा दी अन्तमें उसने एक ऋषिके मस्तकको पैरसे ठुकराकर कहा,—"सर्प की तरह जल्दी चलो!"

ऋषिगण उसका अत्याचार देख, पहलेसे ही क्रुद्ध हो रहे थे। अब उनसे न रहा गया। अगस्त्यने रुष्ट होकर कहा—"नहुष! अब तू अपने दुष्कर्म्मका फल भोगनेको तय्यार हो जा! तू हमे सर्पकी चाल चलाना चाहता है अतः तू स्वयं सर्पहो कर दुःख भोग करेगा।" यह कह उन्होंने पालकी वहीं पटक दी।

नहुष यह शाप सुन कांप उठा। उसका-होश ठिकाने आ गया। वह तुरन्त ऋषिके पैरोंपर गिर पड़ा और क्षमा प्रार्थना करने लगा। अगस्त्यने उसके पूर्व कृत्योंका खयाल कर दया दिखाते हुए कहा—"राजन्! मेरा शाप मिथ्या नहीं हो सकता। तुझे सर्प होनाही पड़ेगा परन्तु हमारे अनुग्रहसे तुझे पूर्व जन्मकी बातें याद रहेंगी। तेरी शारीरिक शक्ति क्षीण न होगी और तू बलवानसे बलवान प्राणीको भी पकड़ रखनेमें समर्थ होगा। द्वापरके अन्तमें जब महाराज युधिष्ठिर तेरे पास आवें तब उनसे प्रश्न करना। उनका उत्तर श्रवण करनेसे तेरी मुक्ति होगी।"

इसके बाद नहुष सर्पहो पृथ्वीपर गिर पड़ा और मत्य

लोकमें दिन बिताने लगा। स्वर्गके राज सिंहासनपर पुनः इन्द्रने अपना अधिकार जमा लिया।

हिमालयके यामुनगिरि शिखरके पास द्वैत वनमें विशाखयूप नामक स्थान था। नहुष वहीं अजगरके रूपमें दिन व्यतीत करता रहा। पाण्डव जब वनवास भोग रहे थे तब घूमते फिरते वहां जा पहुँचे। उसने भीमको पकड़ लिया और निगल जाना चाहा। भीमने मुक्त होनेके लिये बड़ा उद्योग किया परन्तु सफल न हुए। उनको खोजते हुए युधिष्ठिर भी वहीं आ पहुँचे। नहुष उन्हें देख बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने उनसे निवेदन किया, कि यदि आप मेरे प्रश्नोंका उत्तर देना स्वीकार करें तो मैं आपके भाईको मुक्त कर दूँगा। युधिष्ठिर अजगरके मुखसे मनुष्य कीसी वाणी सुनकर, बड़े विस्मित हुए उन्होंने उत्तर देना स्विकार किया। नहुषने कहा-धर्म किसे कहते हैं?" युधिष्ठिर बोले-सत्य, दम, तप, पवित्रता, सन्तोष, लज्जा क्षमा, कोमलता, दया और ध्यान यह धर्मके लक्षण हैं!

नहुष—सत्य,दम, तप और शौच किसे कहते हैं!

युधिष्ठिर—प्राणी मात्रपर दया-दृष्टि रखते हुए आचार विचार शुद्ध रखनेको सत्य कहते हैं। मनपर अंकुश रखना दम, स्वधर्म पालन तप, और वर्ण संकरतासे रहित होना शौच है।

नहुष—सन्तोष, लाज, क्षमा और कोमलता किसे कहते हैं?

युधिष्ठिर—विषयोंका त्याग सन्तोष है। बुरे कामोंके प्रति

घृणा और संकोच उत्पन्न होना तथा उनसे दूर रहना लज्जा है। सुख दुःख सहन करनेको क्षमा और सर्वत्र समान चित्त रखनेको कोमल कहते हैं।

नहुष—ज्ञान, शम, दया और ध्यान किसे कहते हैं?

युधिष्ठिर—आत्मतत्वको जानना ज्ञान है। चित्तकी प्रसन्नताको शम, प्राणी मात्रको सुखदायक दृष्टिसे देखनेको दया और मनको विषयसे रहित बनानेको ध्यान कहते हैं।

नहुष—दुर्जेय शत्रु, अनन्त व्याधि, तथा साधु किसे कहना चाहिये?

युधिष्ठिर—क्रोध दुर्जेय शत्रु है। लोभ अनन्त व्याधि है। प्राणी मात्रका हित चिन्तक साधु और निर्दयी असाधु है।

नहुष—मोह, मान और शोक किसे कहते हैं?

युधिष्ठिर—धर्ममें मूढ़ता मोह है। अपने पर अभिमान किंवा गर्व होना मान है और अज्ञानताही शोक है।

नहुष—स्थिरता, धैर्य्य, स्नान, और दान किसे कहना चाहिये?

युधिष्ठिर—स्वधर्म पालनमें दृढ़ रहनेको स्थिरता, इन्द्रियोंके निग्रहको धैर्य्य, मनकी मलीनतादूर करनेको स्नान और अभय वचन देनेको दान कहना चाहिये।

नहुष—मूर्ख, पण्डित, संसारका मूल और ताप किसे कहते हैं?

युधिष्ठिर—धर्मात्माको पण्डित, नास्तिकको मूर्ख, वासना

को संसारका कारण और परहित न देख सकनेको हृदयका ताप समझना चाहिये।

नहुष—अक्षय नरक और अक्षय स्वर्गका अधिकारी कौन होता है?

युधिष्ठिर—साक्षी बनकर झूठ बोलनेवाला, अतिथिका सत्कार न करनेवाला, क्षत्रिय वैश्य किंवा शूद्र होकर ब्राह्मणकी स्त्रीसे समागम करनेवाला, वेद, देवता तथा ब्राह्मणकी निन्दा करनेवाला, पतिसे विमुख हो व्यभिचार करनेवाली स्त्री इत्यादि अक्षय नरकके भोक्ता होते हैं और यज्ञ, होम, जप, स्नान देव पूजन तथा दानादि सुकर्म करनेवाला अक्षय स्वर्ग-सुखका अधिकारी होता है। परोपकार करनेवाला, ध्यान पूर्वक ईश्वर भजन करनेवाला, निन्दित कर्मोंसे दूर रहनेवाला, यौवन रूप और द्रव्य पाकर भी गर्व न करनेवाला भी स्वर्गका अक्षय सुख भोग करता है।

इस प्रकार अनेक प्रश्नोत्तर हुए। अन्तमें नहुषका उद्धार हुआ। वह दिव्य रूप धारणकर कहने लगा,—"हे धर्मराज! अभिमानी नृपति अपना राज्य और स्वर्ग सुख भी खो बैठता है। यदि वह सिंहासनारूढ़ हो धर्म्मानुकूल आचरण करें तो स्वर्गीय-सुखका भोक्ता बन सकता है, परन्तु मदिराके मदसे उन्मत्त हो जिस तरह मनुष्य पाप-कर्म्मसे नहीं डरता उसी तरह ऐश्वर्य्य मदसे अन्धा हो मनुष्य सत्पुरुषको नहीं देखता। जो मदान्ध हो जाता है वह अवश्य मेरी तरह दुःखी होता है।

मेरे हृदयमें अन्धकार छा गया था। अभिमानके कारण मैं अन्धा हो गया था। उस समय मुझे कुछ भी न सुझायी पड़ता था। आज मेरी अधोगति हो गयी है। साथही मेरे ज्ञान-चक्षु भी खुल गये हैं। इस लोक और परलोकमें अपना हित चाहनेवालोंको अभिमान सर्वथा त्याग देना चाहिये। अभिमानसे जो हानि होती है, उसका मुझे प्रत्यक्ष अनुभव हुआ है। ब्राह्मण तीनों लोकमें पूजनीय हैं, उनका अपमान न करना चाहिये। अग्निको उसने सर्व भक्षी बनाया, विन्ध्याचलकी वृद्धि रोक दी, समुद्र-पान किया, चन्द्रमाको क्षय रोगी बनाया और पृथ्वीको इक्कीस बार क्षत्रिय हीन किया। ऐसे शक्तिशाली ब्राह्मणोंको छोड़कर संसारमें कौन पूजनीय कहा जा सकता है? मैंने सुना है, ब्राह्मणोंने कृष्ण और रुक्मिणीको जुटाकर उनसे रथ चलवाया था। ऐसे ब्राह्मणोंका कोप-भाजन हो कौन जीवित रह सकता है? बलभद्रने एक समय श्रीकृष्णसे कहा था, कि ब्राह्मण शाप दे, कटु वचन कहें और क्रुद्ध हों, तब भी उन्हें नमस्कार करना चाहिये। जो ऐसा नहीं करते, वह पाप करते हैं। सर्वदा ब्राह्मणोंका पूजन और सत्कार करना चाहिये—इत्यादि।

इस प्रकार कह युधिष्ठिरको प्रणामकर नहुष स्वर्ग चला गया। युधिष्ठिर और भीमसेन उसकी चर्चा करते हुए अपने आश्रमको लौट आये। पाठकोंको भी इस जीवनीसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। ऊँचे पदपर प्रतिष्ठित होकर भी अभिमान न

करना चाहिये। किसीका अपमान करना अधर्म्म है। सबको सम्मानकी दृष्टिसे देखना चाहिये। नहुषने तपोबलसे इन्द्रका पद प्राप्त किया,परन्तु ऋषियोंका अपमान करनेसे उसपदपर स्थिर न रह सका। उसे पदच्युत हो, अपने कियेका फल भोग करना पड़ा। कितनाही ऊँचा पद, कितनाही सम्मान और द्रव्य मिले, तब भी नम्र रहना चाहिये। स्वप्नमें भी मदान्ध होना हानिजनक है। विनय, नम्रता और विवेकादि गुणोंको धारण करना चाहिये। सदा सदाचारी रहना चाहिये। नहुषकी तरह स्त्रीपर मोहित हो, सत्पुरुषोंका अपमान न करना चाहिये। ऐश्वर्य्य पाकर अभिमान करना, स्त्रियोंपर मोहित होना और मनोविकारके वश हो, विवेक शून्य बन जाना यह तो निरे मूर्खोंका काम है। अज्ञानी मनुष्य ऐसा करही बैठते हैं। परन्तु जो अपनेको अच्छा बनाना चाहते हों, कुछ बुद्धि रखते हों और अपनेको शिक्षित समझते हों, उन्हें इन दूषणोंसे सदा दूर रहना चाहिये।

बृहद्रथ-जनक ।

इस समय बिहार प्रान्तके जिस प्रदेशको तिरहुत कहते हैं, वह प्राचीन कालमें मिथिलाके नामसे विख्यात था। दरभङ्गाके पास जनकपुर नामक नगर था और वहीं उस राज्यकी राजधानी थी। वर्त्तमान नैपालकी उत्तरीय सीमा पार्य्यन्त उस राज्यका विस्तार था और जनक-वंशी राजा उस के अधिकारी थे।

जनकपुरमें अनेक जनक राजाओंने दीर्घकाल पर्य्यन्त शासन किया। उनमें बृहद्रथ-जनक बड़े धर्म्मशील, दयालु, ज्ञानी, नीतिज्ञ, दानी और ईश्वर भक्त थे। उनके पुत्रका नाम महावीर था। जनक कुलके वह भूषण थे। ऋषि मुनि और विद्वानोंको आश्रय देते थे। उनके यहाँ जब तब धार्म्मिक सम्मेलन हुआ करते थे। उन सम्मेलनोंमें नाना प्रकारके तत्वोंपर वाद-विवाद होता था। जनककी योग्यता इतनी चढ़ी बढ़ी थी, कि मुमुक्षुगण उनका उपदेश श्रवण करने आते थे। वह आत्मज्ञानके प्रवीण पण्डित गिने जाते थे। स्वनाम धन्य शुकदेवजी भी उनका उपदेश श्रवण करने आये थे। ब्रह्मज्ञानको लेकर जनकने नव योगेश्वरोंसे विवाद किया था और अपनी विद्वत्ताका परिचय दिया था।

वृहद्रथ जनकके पिताका नाम देवरात जनक था। इस पर से वह देवराति भी कहे जाते थे। सती सीता इन्हींकी पुत्री थी और मर्य्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्रका विवाह इन्हींके यहा हुआ था। यह इस समय जनकके ही नामसे पुकारे जाते थे अतः हम भी इन्हें जनक नामसे ही लिखेंगे। परशुरामने जब विनाश किया, तब जनक कुलको बचा दिया था, क्योंकि वह क्षत्रियोंमें पूर्ण ब्रह्मनिष्ट नीतिज्ञ, धर्म्मिष्ट और प्रजा वत्सल थे।

जनक मुमुक्षु थे। वह किसी पूर्ण-ब्रह्मनिष्ठकी शरण लेना चाहते थे उसका उपदेश श्रवण करना चाहते थे। ऐसा करनेके पूर्व वह परीक्षा द्वारा यह जान लेना चाहते थे, कि कौन सबसे अधिक विद्वान् और ज्ञानी है। उन्होंने एक युक्ति सोची और तदनुसार यज्ञारम्भ किया। अनेक ऋषियोंको उसके निमित्त निमन्त्रित कर बुला भेजा। महर्षि यज्ञवल्क्य, आश्वलायन, आर्तभाग, भुज्यु ऋषि, चाक्रायण संज्ञक कहोड़ ऋषि, आरुणि संज्ञक उद्दालक ऋषि, विदग्धाख्य संज्ञक शाकल्य ऋषि, ब्रह्मनिष्ठा गार्गी तथा अन्यान्य अनेक ऋषि मुनि तथा ज्ञानी मनुष्य जनकपुरमें एकत्र हुए। जनकने सबका यथोचित सत्कार कर उनके ठहरनेका प्रबन्ध किया।

यज्ञकी समाप्ति होने पर जनकने एक वस्त्राभूषण भूषित गाय मगायी और उसे दान करना चाहा। उन्होंने ऋषि मुनियोंसे कहा, कि आप लोगोंमें जो श्रेष्ठ ब्रह्मनिष्ट हो वह इस दानको ग्रहण करे। सभी ऋषि ब्रह्मनिष्ट थे। वह अपने

अपने मनमें सोचने लगे, कि इस गायको लेना अपने आपको सर्वश्रेष्ट सिद्ध करना है। उसका अर्थ यह होगा, कि दूसरे ब्रह्मनिष्ट नहीं हैं, केवल लेने वालाही ब्रह्मनिष्ट है। इससे सबका अपमान होगा।

इसी तरहके सोच विचार और असमञ्जसमें पड़ किसीने दान ग्रहण न किया। ऋषियोंकी यह दशा देख अन्तमें याज्ञवल्क्यने अपने प्रोक्तकारी नामक शिष्यको भेज कर गाय लेली। ऋषि मण्डलमें इस घटनाने खलबली मचादी और प्रत्येक ऋषि अपना अपना अपमान समझने लगे। वह लोग याज्ञवल्क्यका श्रेष्ठत्व स्वीकार करनेको तय्यार न थे। अन्तमें प्रत्येकने याज्ञ-वल्क्यसे शास्त्रार्थ करनेका निश्चय किया। याज्ञवल्क्यको बाध्य हो कर वैसा करना पड़ा। प्रत्येकने तत्वज्ञानको लेकर भिन्न भिन्न विषयोंपर शास्त्रार्थ किया। याज्ञवल्क्यने सबको यथो-चित उत्तर दे, अपनी योग्यताका पूरा परिचय दिया और विजयी हुए। विदुषी गार्गीने बड़े गम्भीर विषय पर वाद विवाद किया था। उसी समय उस साध्वी स्त्रीकी बुद्धिमत्ता देख सबोंने दांतों तले उँगली दाब ली थी याज्ञवल्क्य भी बड़े चक्करमें पड़ गये थे और कठिनाईके साथ उसके प्रश्नोंका उत्तर दे सके थे। बृहदारण्य उपनिषदमें उसका विस्तृत विवरण दिया गया है। पाठकोंको एक बार अवश्य देखना चाहिये। हमारे देशकी स्त्रियाँ भी विदुषी थीं, यह देख हमें अभिमान होता है। आज न जाने, वह दिन कहाँ चले गये!

याज्ञवल्क्यने सबको पराजित किया और सर्व श्रेष्ठ सिद्ध हुए। जनकने उनको अपना गुरु बनाया और उनके निकट ब्रह्मविद्या प्राप्त की। एक दिन जनकने उनसे कहा, कि आपने बारंबार बतलाया है, कि बिना वैराग्यके मुक्ति नहीं होती, परन्तु वैराग्य किसे कहते हैं। यह आपने नहीं बतलाया। याज्ञवल्क्य यह सुन कर विचारमें पड़ गये और दूसरे दिन वैराग्यका प्रत्यक्ष स्वरूप दिखा कर उनकी शङ्का निवारण की।

ब्रह्मज्ञानके विषयपर जनक और याज्ञवल्क्य तथा श्वेतकेतु आदि ऋषियोंमें जो वार्तालाप हुआ था; वह शतपथ ब्राह्मणमें अङ्कित है और उसको देखनेसे पता चलता है, कि जनकने एक दिन पूछा था, कि यज्ञ करनेसे क्या लाभ होता है? श्वेतकेतुने उनके इस प्रश्नका उत्तर देते हुए बतलाया था, कि यज्ञ करनेसे यश और सुख प्राप्त होता है तथा सायुज्य मुक्ति मिलती है। फलतः यज्ञ करने वाला देवताओंके साथ रहनेका सौभाग्य प्राप्त करता है।

संसारमें अच्छे और बुरे दोनों प्रकारके पदार्थ परमात्माने उत्पन्न किये हैं। उनका जो जैसा उपयोग करता है, वैसा फल पाता है। अच्छी वस्तु सबके लिये अच्छी नहीं होती और बुरी सबके लिये बुरी नहीं होती। विष भी रोगीके लिये अमृतका काम देता है, जबकी उसका आवश्यक समयपर उचित रीतिसे उपयोग किया जाता है। विवेक बुद्धिसे काम लेने पर अच्छा फल मिलता है, परन्तु अविवेकी और बुद्धिहीनके

लिये अमृत भी विष बन जाता है। सार और असारपर बुद्धिमान ही पूरा विचारकरता है। जो सारासारका विचार नहीं करता, वही मूर्ख है।

सारासारका विचार करनेवाला मनुष्य किसी वस्तुको देखता है, तो उस पर विचार करता है। चाहे बुरीसे बुरी क्यों न हो, परन्तु वह उसके सार असार गुण और दुर्गुण का पृथक्करण करता है। अन्तमें असार त्याग देता है और सार ग्रहण कर लेता है। परमात्माकी सृष्टिमें मनुष्य भी एक अद्भुत पदार्थ है। जो बुद्धिमान हैं, वह उसमेंसे सार स्वरूप परम तत्व परमात्माको पकड़ लेते हैं और बाकी देहादिक असार भागको उससे भिन्न और अनित्य समझते हैं। सार वस्तु पर वह विशेष प्रीति रखते हैं और असारपर कम। असार भागको वह सारके समान उपयुक्त नहीं समझते। उसपर वह मोह नहीं रखते—न उसे प्रिय ही समझते हैं, न अप्रिय ही। जब बुद्धिमान मनुष्य जगतका सच्चा स्वरूप समझ लेता है, तब वह उसके बाह्यरूपमें अनुरक्त नहीं होता, बल्कि उसके सार स्वरूप परमात्मासे वह प्रेम करने लगता है। परम विवेकी जनकके हृदयमें एक दिन एक शङ्का उत्पन्न हो गयी थी। अनेक ऋषि उसका निवारण करनेमें असमर्थ हुए। अन्तमें आठ वर्षके अष्टावक्र नामक एक ऋषि कुमारने उस शङ्काका समाधान किया। यह विचित्र और उपदेशप्रद वृत्तान्त जानने योग्य है। वह इस प्रकार है—

एक दिन जनक अपने प्रासादमें रत्न जटित सुवर्ण-प्रय्यङ्कपर अर्धनिद्रित दशामें पड़े हुए थे। उन्होंने उस समय एक विलक्षण स्वप्न देखा। उन्हें मालूम हुआ, कि किसी परदेशी राजाने जनक-पुरीपर आक्रमणकर उसे चारों ओरसे घेर लिया है। जनकने उसके साथ भीषण युद्ध किया, परन्तु उनकी समस्त सेना नष्ट हो गयी और वह पराजित हो, जङ्गलकी ओर भाग गये। वनवन भटकते रहे और अन्तमें किसी नगरमें जा पहुँचे। भूख बड़े जोरोंसे लग रही थी, अतः भीख मांगकर एक हँड़िया और थोड़े दाल चावल प्राप्त किये। खालिस खिचड़ी न खायी जायगी यह विचार कर घीवालेसे बड़ी प्रार्थना की और थोड़ासा घी भी प्राप्त कर लिया इस प्रकार सामग्री एकत्र कर स्वप्न हीमें जनकने खिचड़ी पकायी। खिचड़ी पक गयी और जनक मनमें विचार करने लगे, कि हाय! मैं कौन था और क्या हो गया? सचमुच लीलामयकी लीला बड़ी विचित्र है। क्षण भरमें वह अमीरको फकीर और फकीरको अमीर बना सकता है। उसकी गति विश्वसे न्यारी है इत्यादि प्रकारके विचार करते हुए उन्होंने खिचड़ीमें वह घी मिला दिया। ज्योंही ईश्वरका नाम ले प्रथम ग्रास उठाया त्यों ही दो सांढ़ लड़ते हुए वहां आ पहुंचे। उनकी झपेटमें हँड़िया फूटकर न जाने कहाँ चली गयी और सारी खिचड़ी मिट्टीमें मिल गयी। "हाय रे दुर्भाग्य! धन्य मेरी प्रारब्ध! यह कहते हुए जनक चौंककर उठ बैठे। देखा तो वही मन्दिर, वही प्रय्यङ्क वही पुष्पशय्या

वर्त्तमान है। न कहीं वह नगर है न अलमस्त सांढ़, न मिट्टी में मिली हुई खिचड़ी।

जनक जागकर विकल हो उठे। उनकी विकलता देख कर दास दासी दौड़ पड़े और चँवर डुलाने लगे। जनकको कुछ भी रुचता न था। उनका ध्यान स्वप्नकी बातोंमें अटक रहा था। अद्यापी कलेजा काँप रहा था और आँखोंके सामने वह दृश्य नाच रहा था। पर उनके आश्चर्य्यका पारावार न था। वह सोच रहे थे, कि यह मैंने क्या देखा? स्वप्नमें मेरी कैसी दुर्गति हुई! यह स्वप्न है या सत्य! जो कुछ मैंने देखा, वह मुझे याद है। जो दुःख हुआ, वह प्रत्यक्ष है और अब भी मेरा हृदय काँप रहा है। मैं भूलता हूँ। यह स्वप्न नहीं है। मैंने अवश्य दुःख भोग किया है। मैं अवश्य निर्धन और भिक्षुक बन गया था। मैंने स्वयं अपने भाग्यको कोसा था, परन्तु बड़े आश्चर्य्यकी बात है कि मैं फिर भी अपनेको पूर्व रूपमें पाता हूं मैं वास्तवमें भिक्षुक हूं या मिथिलेश जनक? दो मेसे मैं कौन हूं? यदि मैं मान भी लूँ कि भिक्षुक हूं तो यह दास दासी और ऐश्वर्य्यको क्यों अपने पास देख रहा हूं। यदि यह मान लेता हूँ कि राजा हूँ तो अभी मै भूखों मर रहा था और एक हंडियामें खिचड़ी पका रहा था। सांढ़ोंकी लड़ाई भी तो मैंने प्रत्यक्ष देखी है। अब भी हृदयकी धड़कन बन्द नहीं हुई। उस बातको झूठ कैसे मान लूँ? इन दोनोंमें सत्य किसे समझूँ। यह सत्य है या वह? किसीसे यह शङ्का निवारण कराना चा-

हिये। परन्तु मैं स्वयं किसीसे यह हाल क्योंकर कहूँगा? राजा होकर भीख मांगनेकी बात मैं स्वयं नहीं कह सकता। कहने योग्य यह बात है ही नहीं। तब क्या करना चाहिये। समाधान क्योंकर हो?

जनक इसी चिन्तामें दुर्बल हो रहे थे। उनका मन किसी काममें न लगता था। सांसारिक सुखोंकी ओरसे वह विरक्त हो गये थे। "यह सच है या वह" इसी विचारमें मग्न रहते थे। अन्तमें वह बड़े बड़े ऋषि और मुनियोंको निमन्त्रित कर बुलाने लगे। हरएकसे वह यही प्रश्न करते, कि यह सच है या वह? कायदेका प्रश्न हो तो कोई उत्तर देनेवाला मिले। इस विलक्षण प्रश्नका कोई क्या उत्तर दे? प्रश्न सुनकर ऋषि मुनि अवाक् रह जाते थे। कोई कोई तो सोचने लगते थे, कि जनकको उन्माद हो गया है। परन्तु उन्हें तो यही धुन थी, कि यह सच है या वह? वे बड़े बड़े ज्ञानियोंको बुलाकर उन्हें सिंहासन पर बैठाते और उनकी पूजा करते अन्तमें पूछते, कि यह सच है या वह? जब उन्हें उत्तर न मिलता, तब वह दुःखित हो करुणापूर्ण शब्दोंमें कहते,—कि महाराज! अधिक क्या कहूं मुझे इसी चिन्ताके कारण अन्न भी नहीं भाता। मेरी दशा शोचनीय होती जा रही है और मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता।

जनक इतना कह करही न रह जाते थे। वह प्रत्येक ऋषि मुनिको अपनेही पास रोक लेते थे। कहते—मुझे ऐसी दशामें छोड़ आप कैसे जा सकते हैं? आप हम सबोंको धर्मो-

पदेश देते हैं। सदाचार सिखाते हैं अतः हमारे पिता तुल्य हैं। शास्त्रमें आचार्य्यको भी पिता बतलाया है। मुझे और मेरी प्रजाको आप अपनी सन्ततिके समान समझिये। जो कुछ आवश्यकता हो, वह अपनाही समझ कर लीजिये। नित्यकर्म्म, अग्निहोत्र और देवार्चनादिके लिये यथेच्छ सामग्री आपको यहीं मिल जायगी और मैं सदा आपकी सेवामें उपस्थित रहूँगा। जब तक मेरे प्रश्नका उत्तर न मिल जाय, तब तक आप यहीं रहिये और मेरा आतिथ्य ग्रहण करिये। यदि आप मेरी प्रार्थना पर ध्यान न देंगे तो फिर मैं कहां जाऊँगा और किससे अपना दुःख कहूंगा। इस समय आपही मेरे आधार हैं"

जनककी यह प्रार्थना सुन प्रत्येकको दया आ जाती और वह वहीं रह जाता। जनक सब प्रकारसे सेवा करते और पानी मांगने पर दूध मंगा देते। एक एक दिन करते वर्ष बीत गये परन्तु उनके प्रश्नका कोई उत्तर न दे सका जो लोग वहां ठहरे हुए थे, वह भी अधीर हो उठे।

एक दिन जनक पालकीमें बैठे कहीं जा रहे थे। कितनेही कर्म्मचारी और सेवक उनके साथ थे। सबके आगे एक विलक्षण स्वभावका मन्त्री चल रहा था और उसके पीछे जनक तथा अन्यान्य लोग थे सवारी एक सङ्कीर्ण पथसे जा रही थी। उस पथके बीचो बीचमें एक ब्राह्मणकुमार बैठा हुआ देखा गया। सवारी वहीं रुक गयी और अश्वारूढ़ वह मन्त्री

उसे उठाने दौड़ा। उस ब्राह्मण कुमारके अङ्ग बड़ेही विचित्र और टेढ़े मेढ़े थे। उसे देखनेसेही प्रतीत हो जाता था, कि इसे चलनेमें बड़ा कष्ट होता होगा। मन्त्री घोड़ेको दौड़ाता हुआ उसके पास जा पहुँचा और कहने लगा—"यह रास्तेमें कौन पड़ा है? महाराजकी सवारी आ रही है। उठ, एक किनारे हो जा, रास्ता छोड़ कर बैठ!"

मन्त्रीकी यह बात सुन उस कुमारने क्रुद्ध होकर कहा—"हे अन्ध! हे सनेत्रान्ध! क्या तुझे अपनी आँखोंसे दिखायी नहीं देता जो तू पूछता है कि कौन पड़ा है? तुझे यह भी नहीं मालुम कि किसे हटना चाहिये। तू तो मूर्खही है, परन्तु तू जिसके जानेके लिये मुझे हटा रहा है वह जनक भी मुझे मूर्खही मालूम होता है। मैं यहांसे नहीं हटूंगा, तुझे जो करना हो वह कर! मैं तेरी आज्ञा नहीं मान सकता। जनकसे जाकर कह दे, कि रास्ता बन्द है, वह किसी दूसरे रास्तेसे चला जाय।"

बालकके यह निर्भीक वचन सुन कर वह मन्त्री दंग रह गया। वह उसके उत्तरमें एक भी शब्द न बोल सका। चुपचाप जनकके पास गया और उनसे सारा हाल निवेदन किया। जनक बुद्धिमान थे। वह मामलेको कुछ कुछ समझ गये। उन्होंने मन्त्रीसे कहा, कि उस कुमारका कहना यथार्थ है। उसका तेज और उपवीत देखनेसे ही ज्ञात हो जाता है, कि वह ब्राह्मण है। फिर भी तूने कहा-रास्तेमें कौन पड़ा है? तूने

जो यह बात कही, वह न कहने योग्य थी। इसी लिये उसने तुझे निःसङ्कोच सनेत्रान्ध कहा। "किनारे हो जा रास्ता छोड़ दे" यह आज्ञा भी सर्वथा अनुचित है, क्योंकि एक तो वह ब्राह्मण है और हम क्षत्रिय। हमें स्वयं किनारे होकर उसे मार्ग देना चाहिये। दूसरे वह पङ्गु और शक्ति हीन है। ऐसे मनुष्यको तो रास्ता देनाही चाहिये। यदि हम उसे शीघ्रता पूर्वक हटाना चाहें तब भी वह विवश है और हट नहीं सकता। हमें किसी प्रकार उसे हटानेका अधिकार नहीं है। इसी लिये उसने तुझे मूर्ख कहा। साथही सेवक अन्यायी हो तो उसके मालिकके विषयमें भी वैसाही अनुमान किया जा सकता है, बल्कि सेवकके अपराधका जिम्मेदार मालिक ही समझा जाता है। उसने यही सोच कर मुझे भी मूर्ख कहा है। उसकी बातोंसे मालूम होता है, कि वह बड़ाही विलक्षण जीव है। उसे जाकर मेरे पास बुला ला।"

मन्त्री जनककी आज्ञा शिरोधार्य्य कर उस कुमारके पास गया और कहने लगा—"हे ब्रह्मपुत्र! मैं आपको वन्दन करता हूँ। मेरा अपराध क्षमा करिये। राजा जनक आपको बुला रहें हैं। कृपया उनके पास चलिये।"

बालकने कहा—"बड़े आश्चर्य्यकी बात है! कितना अभिमान! कितना गर्व! कितना उन्माद! लाखों मनुष्योंपर शासन करने वाला नरेश जब स्वयं न्याय और नीतिके अनुसार आचरण नहीं करना जानता तब वह दूसरों पर शासन कैसे कर

सकता है। प्रजाको क्या इसी बिरते पर न्याय नीति सिखा-वेगा? जनक जानता है, कि मैं चलने फिरनेमें असमर्थ हूं। वह इस समय न्यायासन पर नहीं बैठा है जो कहें कि उठ कर आ नहीं सकता। वह रास्तेहीमें है और मैंने रोक रक्खा न होता तो इस समय वह इस स्थानसे भी आगे पहुंच गया होता। फिर क्या कारण है, कि वह यहां तक चला न आया। आप वहां खड़ा है और मुझ पंगुको बुला रहा है। क्या यह न्याय है? इसे उसका उन्माद ही कहना चाहिये। मैं तो नहीं जाऊंगा, उसकी इच्छा होगी तो वह स्वयं मेरे पास आवेगा।"

मन्त्री यह सुनकर जनकके पास लौट गया और उनसे सारा हाल कहा। जनकने विस्मित होकर कहा,—"वास्तवमें यह कोई विचित्र जीव है। चलो, मैं स्वयं उसके पास चलता हूं।"

इतना कह जनक पालकीसे उतर पड़े और उस बालक के पास पहुंचे। बालकका रूप ऐसा था कि उसे देख रोता हुआ मनुष्य भी एकबार हंस पड़े। जनकने शापके भयसे हंसी रोक रक्खी और प्रणाम करते हुए कहा—"ब्रह्मदेव आपने बड़ी कृपा की जो यहां आकर जनकपुरीको पावन किया। आपको देखकर मुझे बड़ा हर्ष हुआ। मुझे विश्वास है, कि आप मेरे गृहको भी इसी प्रकार पवित्र करेंगे। आप किसके पुत्र हैं, और आपका स्थान कहा है? आपका नाम क्या है और किस कार्य्यके लिये यहांतक आनेका कष्ट उठाया है?"

बालकने यह सुनकर कहा,—"हे राजन् ! मैं कहोड़ ऋषिका पुत्र हूँ। मेरा आश्रम सरस्वतीके तटपर है। पिताजी बहुत दिनोंसे आश्रममें नहीं है अतः आजकल मैं अपनी माताके पास अपने मामाके यहां रहता हूँ। मेरा नाम अष्टावक्र है। मेरे आठो अङ्ग टेढ़े हैं, इसीलिये मेरा यह नाम रक्खा गया है। मैंने सुना है, कि जनक नामक राजर्षिके एक प्रश्नका कोई उत्तर नहीं दे सका। सब अपने बाल बच्चोंको छोड़कर एक प्रकार से उसके बन्धनमें पड़ गये हैं। राजा अपने मनमें सोचता होगा कि ब्राह्मणोंमें अब वह बात नहो रही। इसीलिये मैं यहां आया हूं और उसे दिखा देना चाहता हूँ, कि अब भी ब्राह्मण ज्ञान गरिमामें अपना जोड़ नहीं रखते। क्या जनक तेराही नाम है ? तेरा वह क्या प्रश्न है जिसका तुझे उत्तर नहीं मिलता ?"

जनकने कहा,—"महाराज ! मैं ही जनक हूँ और अद्यापि मेरी शङ्काका निवारण नहीं हुआ, परन्तु पहले आप कृपा कर मेरे मन्दिरमें चलकर मुझे कृतार्थ करें। फिर मैं आपसे अपना प्रश्न निवेदन करूंगा।"

जनकका आग्रह देख अष्टावक्रने उनका आतिथ्य ग्रहण करना स्वीकार किया। जनकने पालकी मंगायी और उसमें उन्हें तथा उनके मामाको बैठालकर राजमन्दिर ले गये। वहां यथा विधि पूजनादि कर भोजन कराया और एक भव्य भवनमें ठहरनेका प्रबन्ध कर दिया।

दूसरे दिन जनकने एक महती सभाकी। जब ऋषि

मुनि और सभाजन एकत्र हो गये तब उन्होंने प्रतिहार द्वारा अष्टावक्रको बुला भेजा। अष्टावक्र अपने मामा सहित आ पहुँचे; यह एक लकड़ीके सहारे चलते थे। सब लोग अष्टावक्रको देखनेके लिये उत्सुक हो रहे थे। ज्योंही वह सभाके द्वार पर पहुँचे त्योंही सब लोग उठ कर खड़े हो गये। परन्तु उनका विचित्र आकार-प्रकार देख उनके आश्चर्य्यका वारापार न रहा। अष्टावक्र ज्योंही पैर उठाते त्योंही उनके आठो अङ्ग झुक जाते और सारा शरीर काँप जाता। उनकी यह चाल देख सबको हंसी आ गयी। दोही चार कदम वह आगे बढ़े होंगे कि लकड़ी और पैर आपसमें उलझ गये। अष्टावक्रने अपनेको बहुत सम्हाला परन्तु गिरही पड़े। अब जनक भी अपनी हंसीको न रोक सके और मुँहमें रूमाल लगाकर हंसने लगे। अष्टावक्रको उनके मामाने उठाकर खड़ा किया और सहारा दे आसन तक पहुँचा दिया। लोगोंको हंसते देख अष्टावक्र भी दृष्टिकोण बदल कर हंसने लगे। जनकको यह देख बड़ा आश्चर्य्य हुआ। वह सोचने लगे, कि अपना मान-भङ्ग देख क्षोभ होना चाहिये, परन्तु यह बालक हंसता क्यों है? उन्होंने हाथ जोड़ कर अष्टावक्रको वन्दन किया और पूछा—महाराज! हम लोग हंसे तो हँसे पर आप क्यों हँसे?"

अष्टावक्रने कहा—"मैं तेरी मूर्ख सभाको देख कर हंसा और सभा मुझे देख कर हँसी, परन्तु तू क्यों हँसा यह बता।"

जनकने कहा—"आप क्रोध न करियेगा, मैं सच्चाही हाल

बतलाता हूं। मैंने आपको दशा देख कर सोचा कि मेरी सभामें एकसे एक विद्वान, ज्ञानी, ध्यानी ब्रह्मनिष्ट और तेजस्वी महापुरुष एकत्र हैं। अपने प्रतापसे वह सूर्य्यकी गतिको भी रोक देनेमें समर्थ हैं। जब वह मेरे प्रश्नका उत्तर न देसके, तो आप क्या दे सकेंगे? इसी लिये मुझे हंसी आ गयी।

यह सुन अष्टावक्रने क्रुद्ध होकर कहा—"तू बड़ा मूर्ख है। मुझे आश्चर्य्य होता है कि तू इन अविवेकी लोगोंके बीचमें बैठ कर प्रजाका कल्याण किस प्रकार करता है? जो गुण दोषका विचार नहीं कर सकते, वह तुझे क्या सलाह देते होंगे? बड़े खेदका विषय है, कि जिस राज्य-सभामें सर्वगुण सम्पन्न तथा सत्यासत्यकी तुलना करनेवाले विवेकी और प्रौढ़ विचारक होने चाहियें, वहां मैं विचार-रहित केवल नर-पशुओंको देख रहा हूं।"

बालकको निःसङ्कोच ऐसी बात कहते देखकर सारी सभा चकित हो गयी। चारों ओर निस्तब्धता छा गयीऔर लोगोंने अपनी अपनी दृष्टि नीचेको कर ली। अष्टावक्रने पुनः कहा—"जनक! विचार कर। तृषातुर मनुष्यको गङ्गाका निर्मल जल पीना चाहिये या उसके टेढ़े-मेढ़े और कीचड़ भरे किनारे देखने चाहिये? चारों ओर पक्के घाट बंधेहो, हरे भरे वृक्ष लगे हों, फूल खिल रहे हों, परन्तु सरोवरमें जल न हो तो तृषा-तुरके वह किस काम आयेगा। क्षुधितके लिये केवल अन्न चाहिये, वह चाहे सुवर्ण पात्रमें रक्खा हो, चाहे मिट्टीके ठीक-

देमें। सोने चांदीके थाल हों, परन्तु उनमें मिट्टी रख दी जाय तो क्या क्षुधातुरकी क्षुधा शान्त हो जायगी? वह उन पात्रोंको देखकर प्रसन्न भलेही हो ले, परन्तु अपनी क्षुधाको दूर नहीं कर सकता। उसी प्रकार मैं कुरूप और कुबड़ा हूं, मेरे हाथ पैर सभी विचित्र और बेडौल हैं, परन्तु तुझे इस बातसे क्या पड़ी है। तेरे प्रश्नका उत्तर मेरे हाथ, पैर, सिर, पेट पीठ, नाक, कान, चक्षु इत्यादि कोई न देंगे। वह काम तो मेरी वाचा करेगी। देख वह तो कानी कुबड़ी नहीं है? चल अब देर न कर बता तेरा प्रश्न क्या है?"

अष्टावक्रकी यह बातें सुन सभाजन तथा जनकको बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्हें निश्चय हो गया, कि इस आठ वर्षके बालकमें कोई अद्भुत शक्ति भरी है। राजाने उठकर उन्हें प्रणाम किया और अपने अपराधके लिये क्षमा प्रार्थना की। अष्टावक्र शान्त हुए और बोले—"बोल, तेरा क्या प्रश्न है?"

लोग जनकके प्रश्नका उत्तर सुननेके लिये आतुर हो रहे थे। जनकने पुनः प्रणाम कर कहा—"महाराज, यह सच है या वह? केवल यही मेरा प्रश्न है।"

अष्टावक्रने उसकी उपेक्षा करते हुए कहा—"बस, यही प्रश्न है? क्या इतनेहीके लिये तूने अनेक ऋषियोंको कष्ट दिया और रोक रक्खा? प्रश्नमें जरा भी दम नहीं है, केवल लज्जाने तुझे मार डाला। यदि सङ्कोच छोड़, तूने सारा हाल साफ साफ कह दिया होता, तो कबका उत्तर मिल गया होता।

इसमें तेराही दोष है। अब तू यदि अपने प्रश्नका उत्तर आपही समझना चाहता है, तो श्रवण कर।"

इतना कह कर अष्टावक्रने उत्तर देना आरम्भ किया। सब लोग कान लगा कर सुनने लगे। जनक ज्योंके त्यों खड़े थे। अष्टावक्रने कहा—"जैसा यह है वैसाही वह है। दोनोंमें जराभी अन्तर नहीं है। जो दिखायी देता था, वह भी नहीं है, और जो दिखाई पड़ता है, वह भी नहीं है। न यही सच है, न वही।"

अष्टावक्रकी यह बात सुनकर जनक उनके चरणोंपर दण्डकी तरह गिर पड़े और "धन्य हो धन्य हो" कहने लगे। उनका सन्देह तो इन थोड़े ही शब्दोंसे दूर हो गया; परन्तु सभा जनोंकी उत्कण्ठा और भी बढ़ गयी। उनके हृदय अधिक शङ्काशील हो गये। उन्होंने ऋषि कुमारसे प्रार्थना की,—"हे ब्रह्मपुत्र! इस प्रकार गुह्यार्थ करनेसे हमारा उपकार न हुआ। एक जनककी शङ्का दूर हो गयी और हम अनेकोंकी शङ्का बढ़ गयी। हम लोग कुछ भी नहीं समझ सके। आप कृपाकर इस प्रकार समझाइये, जिससे हमारा भी सन्देह दूर हो जाय।"

अष्टावक्रने जनककी ओर देखकर कहा,—"राजन्! इनका कहना उचित ही है। मैं स्पष्ट शब्दोंमें रहस्योद्घाटन करता हूं। स्वप्नकी बातें सच नहीं हुआ करतीं। जिस प्रकार वह मिथ्या है, उसी प्रकार संसार भी मिथ्या है। ज्ञानी जन संसारको भी स्वप्न ही कहते हैं। तूने स्वप्नमें अपना राज्य खो

दिया, क्षुधित हुआ, भीख मांगी, खिचड़ी पकायी और अन्तमें वह भी तेरे काम न आयी। तेरी निराशा ज्योंकी त्यों रही और तू दुःखी ही बना रहा। वास्तवमें तेरे हाथ कुछ भी न लगा और तुझे जरा भी सुख न मिला। तूने जागरित होकर जो ऐश्वर्य्य देखा, दास-दासी देखे, वह भी उसी स्वप्नके समान थे। आज तू विचारकर और देख। स्वप्नावस्थाका वह दुःख किंवा जागरित दशाका सुख, क्या एक भी तेरे पास है? इस समय तुझे उस दुःखसे दुःख या सुखसे सुख होता है? आज तेरे पास न वह दुःख ही है, न वह सुख ही। यदि स्वप्न और संसार सत्य हों तो उनकी बातें निरन्तर एक ही रूपमें स्थिर रहनी चाहिये। जिस प्रकार स्वप्नकी बातें स्थिर नहीं रहती, उसी प्रकार संसारकी बातें भी स्थिर नहीं रहतीं। दोनोंमें अन्तर केवल इतना है, कि स्वप्नावस्थाका स्वप्न छोटा होता है और जागरित अवस्थाका यह संसार स्वप्न बड़ा होता है। स्वप्नकी बातें, स्वप्नके दृश्य और स्वप्नके सुख दुःख दो चार घण्टोंमें समाप्त हो जाते हैं और संसारका घटना चक्र बहुत दिनों तक चला करता है। एक सेर अन्न एक दिन चलता है और मन भर चालिस दिन चलेगा। दोनोंमें इतनाहीं अन्तर है।

परमात्माने संसार भी स्वप्नहीके समान बनाया है। जिस प्रकार किसीकी प्रतिमा देखनेसे उसके मूल स्वरूपका स्मरण होता है, उसी प्रकार स्वप्नावस्थाके स्वप्नसे संसार स्वप्नका ज्ञान होता है। बारम्बार मैं यही कहता हूँ, कि जैसा वह है वैसा

ही यह है। दोनोंमें जरा भी अन्तर नहीं है। हे राजन् ! केवल सारासारका विचार करनेसेही सत्य वस्तुकी प्राप्ति होती है। स्वप्न और संसार दोमें कौन सच है, यह जाननेकी इच्छा हुई और तूने उद्योग किया तब आज तुझे मालूम हो गया, कि दोनों मिथ्या हैं। न यह सच है, न वह। वास्तवमें सारासारका विचार करनेवाला मनुष्य ही अन्तमें सुखी होता है।"

समस्त सभा ऋषि-कुमारकी यह बात सुन आनन्दाश्चर्यमें लीन हो गयी और ऋषिगण आशीर्वाद देते हुए उनकी प्रशंसा करने लगे। जनकने कहा—"भगवान् ! आपके समाधानसे मेरे हृदयमें एक नवीन शङ्का उत्पन्न हुई है। मुझे यह बतलाइये, कि जब संसार और स्वप्न दोनों असार हैं, तो उनमें सार क्या है ?"

ऋषि-पुत्रने कहा—"धन्य हो ! ऐसा सूक्ष्म प्रश्न करना यही सच्चे मुमुक्षुका लक्षण है। सार वस्तुको जानना दूर रहा, जाननेकी इच्छा रखनेवाला भी विरलाही होता है। सुनो, संसार और स्वप्न दोनों असार हैं, दोनोंही मिथ्या हैं। जो उन दोनोंका अनुभव प्राप्त करता है, स्वप्न और जागृत दशाओंको जो जानता है, वही साक्षी स्वरूप परमात्मा केवल सार भूत है, वह सचराचरमें व्याप्त है। अतः उसे विष्णु भी कहते हैं। तू, मैं, ऋषिगण, मन्त्रि-मण्डल, सर्व सभा और प्राणीमात्रमें वही साक्षी स्वरूप अनूप रूप बसा हुआ है। वही नित्य है, सार है और वेद वर्णित पुराण पुरुषोत्तम है। उसेही प्राप्त करनेके लिये ज्ञानी भक्ति करते हैं और योगी ध्यान धरते हैं। वही

इस जगतका उत्पन्न, पालन और प्रलय कर्त्ता है। युग युगमें अवतार ले धर्म्मकी स्थापना और ज्ञानियोंकी रक्षा करता है। वही ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरके त्रिगुणात्मक रूपमें रमण करता है। वही इन्द्र और देवताके रूपमें विराजमान है और वही सर्व भूत, प्राणी मात्र जड़ चेतनमें व्याप्त हो रहा है। वह वड़ेसे वड़ा और छोटेसे छोटा है। वही निर्गुण और वही सगुण है। वही निराकार और वही साकार है। वही अमूर्त्ति और वही मूर्त्तिमान है। जहां कहें, जहां देखें, वहीं वह विद्यमान है। सर्वत्र चारों ओर केवल वहीं वह है। उसेही सारभूत समझ।"

अष्टावक्रका यह वक्तव्य सुनकर समस्त सभा चित्रित चित्रसी स्थिर रह गयी। जनकके अन्तःकरणमें हर्षकी हिलोरें उठने लगीं। वह विचार करने लगे, कि यह परमात्माकी ही कृपाका फल है, कि आज मुझे घर वैठे सद्गुरुकी प्राप्ति हुई। जगदीश हीने अनुग्रह कर, इस ज्ञान मूर्त्तिको यहाँ भेज दिया है। मुझे व्यर्थ समय नष्ट न कर उनका उपदेश श्रवण करना चाहिये। यह सोचकर वह बोले—"हे प्रभो! आज मेरे सौभाग्यसेही आपका यहाँ आगमन हुआ है। अब आप परमात्माका स्वरूप कैसा है, यह बतलाकर मुझे कृतार्थ करिये। आपका ब्रह्मोपदेश सुन मैं अपनेको धन्य समझूँगा।

अष्टावक्रने कहा,—"राजन्! ब्रह्मोपदेशकी बात अब पीछे होगी। पहले तेरी शङ्काओंका समाधाम हुआ, अतः मुझे गुरु-दक्षिणा मिलनी चाहिये।"

जनकने यह सुन अपने कोषाध्यक्षको आज्ञा दी और वह सोनेके दो थाल अत्युत्तम रत्नोंसे भरकर ले आया। जनक वह अष्टावक्रको अर्पण करने लगे परन्तु अष्टावक्रने हंसकर कहा—"मैं यह द्रव्य लेकर क्या करूंगा? ऐसे रत्नोंके अगणित और अक्षय भण्डार ज्ञानी लोग क्षणमात्रमें उत्पन्न कर सकते हैं। उनके सम्मुख ऋद्धि और सिद्धियाँ हाथ जोड़े खड़ी रहती हैं। मैं इन थोड़ेसे रत्नोंको लेकर क्या करूं? मैं इनसे सन्तुष्ट नहीं हो सकता। मैं द्रव्यके वशीभूत होकर यहाँ नहीं आया। मैं तो परोपकारके लिये आया हूं। तूने समझ लिया होगा, कि अब संसारमें कोई ज्ञानी नहीं रहा। मैं तेरी इस धारणाको दूर करनेके लिये ही यहा आया हूं। मैं द्रव्य और मानका भूखा नहीं हूं। अनेक ज्ञानी महापुरुषोंको तूने रोक रक्खा था एक प्रकार से उन्हें वन्दी बना लिया था, वह घर जानेके लिये अधीर हो रहे थे, मैं उनका उद्धार करनेके लिये ही आया हूं। यदि तुझमें देनेकी शक्ति है, तो मुझे जो चाहिये वह दे, अन्यथा मुझे कुछ न चाहिये।"

जनकने कहा,—"भगवन्! आप जो कहें वह देनेको मैं तय्यार हूं। आप आज्ञा दीजिये।"

ऋषि-पुत्रने कहा—"जनक! यदि तू सचमुच दे सकता है। तो मुझे तू अपना तन मन और धन, अर्पण करदे।"

जनकने तुरन्त तीनों चीजें ऋषि-पुत्रको अर्पण करदीं और हाथ जोड़ खड़े हो गये। अब अष्टावक्र क्या कहते हैं यह सुन-

नेको सब लोग उत्कण्ठित हो रहे थे। जनक भी ब्रह्मोपदेश श्रवण करना चाहते थे। वह समझते थे, कि अष्टावक्र शीघ्रही मेरे अन्तिम प्रश्नका उत्तर देंगे। सब लोग मुखकी ओर ताक रहे थे। इतनेमें एक दुखी ब्राह्मण जनकको पुकारता हुआ सभामें आ पहुंचा। उसने कहा,—"हे जनक! हे मिथिलेश! मैं बड़ा ही दीन और दुःखी ब्राह्मण हूं। मेरी रक्षा करो। मेरा दुःख दूर करो।"

गौ ब्राह्मण प्रतिपाल राजा जनक उसकी बातें सुनकर छट-पटा उठे। उसे क्या दुःख है, यह जाननेके लिये वह प्रश्न करना ही चाहते थे, कि उन्हें खयाल आ गया, कि मैंने अपना तन मन और धन-गुरुदेवको अर्पण कर दिया हैं अब मुझे उसकी ओर आँखे उठाकर देखनेका भी अधिकार नहीं है। मैं उससे क्यों कर पूछ सकता हूं? यह सोचकर जनकने पूछना तो दूर रहा उसकी ओर आँख उठाकर देखा भी नहीं। ब्राह्मण उच्च स्वरसे विलाप करने लगा और बोला—"हे धर्म्मावतार! मैं ऋणी हूँ, मुझे महाजनोंको बहुत रुपये देने हैं। उन लोगोंने मेरी सारी सम्पत्ति हरण करली, फिर भी मैं मुक्त नहीं हो सका। मेरे बाल बच्चे दाने-दानेको तरस रहे हैं, उनके पास एक भी कपड़ा नहीं रहा, अब मैं क्या करूं? विवश हो आपकी शरणमें आया हूं। एक तो लज्जा, दूसरी क्षुधा, तीसरे महाजनोंका भय, मैं इन सब कारणोंसे व्याकुल हो यहाँ आया हूं। हे क्षत्रिय कुल भूषण! हे मिथिलेश! मेरा दुःख अवश्य दूर करिये।"

ब्राह्मणका विलाप और उसकी बातें सुनकर जनकका धैर्य्य छूटा जा रहा था। वह उसका दुःख दूर करनेके लिये व्याकुल हो रहे थे। सोचा—कुछ धन देनेसे इसका दुःख दूर हो सकता है। थालसे एक रत्न उठाकर दे दूँ तो विचारेका दरिद्र दूर हो जाय। इतनेही में ध्यान आ गया, कि मैं तो अपना धन भी अर्पण कर चुका हूं। अब यह रत्न मेरे नहीं रहे। न उस ब्राह्मणकी ओर देखा न उससे कुछ कहा।

ब्राह्मणको यह देख बड़ा आश्चर्य्य हुआ। वह सोचने लगा, कि दूरके ही ढोल सुहावने होते हैं। लोग जनककी प्रशंसा करते हैं। गौ ब्राह्मण प्रतिपालक कहते हैं, परन्तु वह तो मेरी ओर देखता भी नहीं है। ब्राह्मणको यह सोचतेही सोचते क्रोध आया। वह जनकका तिरस्कार कर कहने लगा,—बड़े आश्चर्य्यकी बात है! त्रेतायुगमें आज मैं कलियुगकी सी बात देख रहा हू। समय बड़ाही विचित्र है। धिक्कार है, मुझे जो मैं ऐसे कृपण, दाम्भिक, और मिथ्या गौ ब्राह्मण प्रतिपालक कहाने वालेकी शरणमें आया। मैं यहाँ न आकर किसी कुएंमें गिरपड़ा होता तब भी यह दुःख दूर हो गया होता। क्याही अच्छा होता यदि मैं इस राजाका मुख न देखता। अपना दुःख तो मुझे अब भूल गया। परन्तु यह व्यर्थका सन्ताप जी जला रहा है। धिक्कार है ऐसे राजाको जिसके द्वारसे अतिथि और शरणागत निराश हो लौट जायें। जो लोग दूर देशान्तरोंमें रहते हैं और वास्त-

विक दशाको नहीं जानते, वह व्यर्थ ही इसकी प्रशंसा करते हैं। अरे जनक! धन भलेही न देता, जरा मुहसे तो बोल देता-बड़े खेदकी बात है।"

ब्राह्मणके यह शब्द सुन जनकको बड़ा दुःख हुआ। उनका हृदय फटा जा रहा था। वह सोचने लगे—हाय! आज मुझे व्यर्थ ही कलङ्क लग रहा है। है भी बड़े दुःखकी बात। एक दीन हीन, शरणागत, और वह भी ब्राह्मण, मेरे द्वारसे खाली हाथ निराश हो लौट जाय! हाय मैं क्या करूं? इतनेमेही जनकका ध्यान दूसरी ओर चला गया। वह आत्मगत कहने लगे—मैं ऐसा विचारही क्यों करता हूं। मन भीतो मैंने गुरु देवको अर्पण कर दिया है। विचार करनेका भी मुझे अधिकार नहीं है। तन मेरा होता तो ब्राह्मणको बुलाता और दुःख सुख पूछता धन मेरा होता तो उसे देकर सन्तुष्ट करता और मन मेरा होता तो मैं उसकी बातोंके लिये खेद करता। जब मेरा कुछ है ही नहीं, तब क्या दूं? कैसे बुलाऊं और खेद भी क्यों करूं! यह सोचकर जनक ज्योंके त्यों मूर्त्तिवत खड़े रहे। उनकी सभी गति विधि बन्द थीं। वह केवल जड़ और स्तब्ध हो रहे थे। न हिलते थे, न डोलते थे।

जनककी यह दशा देख अष्टावक्रने पूछा,—"तू कौन है?"

जनकने कहा,—"मैं जनक हूं।"

यह सुनकर अष्टावक्र हंस पड़े। कहने लगे,—"अब भी तू मूर्खही बना रहा। बता, तू जनक किसे कहता है? तेरे

शरीरमें जनक कहां है ? हाथ, पैर, शिर, हृदय, पेट, पीठ, मुख, नाक, कान, बुद्धि प्राण इनमें तू किसे जनक समझता है ?'

जनकको कुछ भी सूझ न पड़ा। वह पहले हीकी तरह हाथ जोड़े खड़े रहे। बहुत कुछ सोच विचार किया; परन्तु कहीं जनकका पता न लगा। वह कुछ भी उत्तर न दे सके और अचल भावसे ज्योंके त्यों खड़े रहे। ऋषि-पुत्रने कहा—"राजन् ! बस, यही मेरा उपदेश और तेरा सच्चिदानन्द ब्रह्म स्वरूप है। अब मैं और कुछ भी कहना नहीं चाहता।"

जनकको यह सुन कर ज्ञान हो गया। वह अष्टावक्रके चरणों पर गिर पड़े और कहने लगे—"भगवान् ! मैं अब आरण्यमें जाकर तप करूंगा।"

अष्टावक्रने कहा—क्या, बिना मेरी आज्ञाके ? अपना तन मन और धन तो तू मुझे दे चुका है। अब तेरे पास क्या है। तेरा अब अस्तित्व कहां रहा ?"

जनक यह सुन कर पुनः स्तब्ध हो गये। ऋषि-कुमारने कहा—"राजन् ! जिस तरह कोई अपना धन और गृह इत्यादि दूसरेके जिम्मे कर देता है, उसे अमानतके रूपमें रख देता है, उसी तरह यह राज्य तेरा, तन-मन-धन मेरा है और वह मैं अमानतके रूपमें तुझे सौंपता हूं। प्रजा भी मेरी ही है और तू भी मेराही है। मेरे एक सेवककी तरह तू न्यायनीति पूर्वक शासन कर देह होने पर भी वह तेरी नहीं है। अतः मैं तेरा नाम "विदेह" रखता हूं। अब तक संसारमें कोई बिना

देह वाला नहीं हुआ, परन्तु तू इसी नामसे पुकारा जायगा और वास्तवमें है भी वैसाही।"

इस प्रकार कह कर अष्टावक्रने जनकको अपनी ओरसे सिंहासनारूढ़ कराया और समस्त अधिकार प्रदान किये। जनकने सर्व प्रथम उस ब्राह्मणको रत्नादि धन दे सन्तुष्ट किया और फिर ऋषियोंको सम्मान पूर्वक विदा किया। ऋषियोंने अष्टावक्रकी बड़ी प्रशंसाकी और आशीर्वाद दिया। यहीं अष्टावक्रके पिता आ पहुँचे। उन्होंने अष्टावक्रको मधुविता नामक नदीमें विधि पूर्वक स्नान कराया, फलतः उनके अङ्गोंका दोष जाता रहा और वह कामदेवके समान सुन्दर हो गये। उस नदीका नाम उस दिनसे समङ्गा पड़ा।

अष्टावक्र अपने मामा और पिताके साथ अपने आश्रममें जा पहुँचे और जनक विदेह पूर्वकी भांति न्याय पूर्वक शासन करने लगे।

संसारमें सारासारका विचार करनेवाला अवश्य सुखी होता है। जनकने उसकेही द्वारा कल्याण-साधन किया। स्वप्नकी जरासी घटना पर वह विचार न करते तो अष्टावक्रसे भेंट कैसे होती। वह अपूर्व ब्रह्म ज्ञान कहां पाते? संसार और स्वप्नमें क्या सार है यह जानने की इच्छा की—उसके लिये उद्योग किया तो वह सार भूत परमात्माको प्राप्त कर सके। संसारमें उनका नाम अमर हो गया और इस लोक तथा परलोकमें सुखी हुए। सारासारका विचार करना, सत्य तत्वोंकी खोज करना, यही मनुष्य मात्रका कर्त्तव्य है।

भ्रातृप्रेमी लक्ष्मण

इस शेषावतारी महावीर पुरुषके अद्भुत पराक्रमोंको कौन नहीं जानता ? जिसने चौदह वर्ष आहार और निद्रा छोड़ कर अखण्ड ब्रह्मचर्य्यका पालन किया, जिसने ज्येष्ठ बन्धु श्रीरामचन्द्रकी आज्ञा सदा शिरोधार्य्यकी, जिसने विपत्तिकालमें भी उनका साथ न छोड़ा, जिसने बन्धु-पत्नीको माता समान पूजनीय समझा, जिसने सूपर्णखा जैसी भयानक राक्षसीको अनुचित वाग-विलासके कारण उचित दण्ड दिया, जिसने महा पराक्रमी मेघनादका प्राण हरण किया, जिसने अनेक राक्षसोंका विनाश किया, जिसने परदाराको माता समझ एक पत्नी-व्रत पालन किया, जिसने निरन्तर नीति पर ही प्रीति रक्खी, जिसने कभी अधर्म्माचरण नहीं किया, उस इक्ष्वाकु कुलोत्पन्न दशरथ-पुत्र सुमित्रा-नन्दन राजकुमार लक्ष्मणका नाम किसने नहीं सुना ?

महावीर लक्ष्मण शेषावतारी गिने जाते हैं। वह सुमित्राके उदरसे भूमिष्ठ हुए थे और उन्हींने उनका लालन-पालन किया था। ब्रह्मर्षि वशिष्ठने उन्हें वेद वेदाङ्ग तथा धनुर्विद्याकी शिक्षा दी थी। लक्ष्मणका वर्ण गौर, स्वभाव लज्जा

शील था। कीर्ति, गुरुजन तथा वृद्धों पर वह प्रेम भाव रखते थे। वह उच्चकोटिके विचारक थे, और लोक-हित पर ध्यान रखते थे। सब प्रकारके वाहनोंपर आरूढ़ होनेमें वह निपुण तथा चतुर उत्साही, वलिष्ठ, पराक्रमी, धर्म्मिष्ठ, दयावान, निर्भीक, और ज्ञानी थे। आत्माभिमान, साहस और क्रोध इत्यादि जातीय-गुणोंसे भी वह युक्त थे। शरसन्धान और सेना-सञ्चालनके कार्य्योंमें भी वह प्रवीण थे और ब्रह्मचर्य्य पालन तथा जितेन्द्रिय रहनेमें उन्होंने पराकाष्ठा दिखा दी थी।

लक्ष्मण अच्छे वक्ता भी थे। प्रजाको धर्मोपदेश तथा धैर्य्य देनेके समय उनकी इस कलाका परिचय मिलता था। वृद्ध, अतिथि, निराश्रय तथा दीन-हीनकी सेवाको वह कर्त्तव्य समझते थे। नीति और शास्त्र ज्ञानके बड़े प्रेमी थे। रामचन्द्रसे बहुधा वह इन विषयोंके प्रश्न पूछा करते थे।

राम यद्यपि कौशल्याके पुत्र थे, परन्तु लक्ष्मण उन्हें सहोदरसे अधिक समझते थे। स्वप्नमें भी उन्होंने रामकी आज्ञा उल्लंघन नहीं की। उनके हृदयमें रामके लिये बड़ाही ऊंचा स्थान था। रामके प्रति वह बड़ा सम्मान और भक्ति-भाव प्रकट करते थे। बचपनसेही लक्ष्मण रामको और राम लक्ष्मणको चाहने लगे थे। दोनों जने एक दूसरेको अपना प्राण समझते थे। लक्ष्मणने कभी रामका साथ नहीं छोड़ा। राम शिकार खेलने जाते तो लक्ष्मण उनके अश्वकी लगाम पकड़ कर आगे

चलते। राम रथारूढ़ हो नागरमें घूमने निकलते तो लक्ष्मण चंवर ले उनके पीछे खड़े रहते। दोनों जनोंकी गति-विधि एक रहती थी। वे साथही खाते, साथही पीते, साथही सोते और साथही रहते थे। विश्वामित्रने यज्ञ-रक्षाके लिये केवल रामको ले जाना चाहा था, परन्तु लक्ष्मण स्वेच्छापूर्वक उनके साथ गये थे। वनवासकी आज्ञा रामहीके लिये हुई थी, परन्तु लक्ष्मणने उनका साथ न छोड़ा। सुखमें साथ देने वाले अनेक बन्धु दृष्टि गोचर होते हैं, परन्तु लक्ष्मणके समान, ऐश्वर्य्यको ठुकराकर, स्वेच्छा पूर्वक वन-वन भटकने वाला, तन-मन न्योंछावर करनेवाला और भाईके लिये कष्ट उठानेवाला भ्रातृ-प्रेमी नहीं देखा गया।

लक्ष्मण बचपनसेही आत्माभिमानी और निर्भीक थे। जनकने जब राज सभामें शोक प्रदर्शित करते हुए कहा कि, अब अपनेको कोई वीर न समझे, क्योंकि धनुषको तोड़ना दूर रहा उसे कोइ उठा भी नहीं सका! कोई बुरा न माने, मैंने जान लिया कि वसुन्धरा वीर-विहीन हो गयी है। आत्मा-भिमानी लक्ष्मणसे यह बातें सुनी न गयी, उनका खून उबल उठा और नेत्रोंमें अरुणता छा गयी। सभामें एकसे एक ज्ञानी ऋषि-मुनि और शक्तिशाली नरेश उपस्थित थे, परन्तु सबके सब अवाक् रह गये। अन्तमें लक्ष्मणसे चुप न रहा गया। वह बोल उठे:—

रघुबंसिन महं जहं कोउ होई * तेहि समाज अस कहै न कोई।

कही जनक जस अनुचित बानी * विद्यमान रघुकुल-मणि जानी।
सुनहु भानुकुल रघुकुल भानू * कहौं सभाव न कछु अभिमानू।
जो राऊर अनुशासन पाऊं * कन्दुक इव ब्राह्मण्ड उठाऊं।
काचे घट जिमि डारों फोरी * सकौं मेरु मूलक इव तोरी।
कमल नाल जिमि चाप चढ़ाऊँ * शत योजन प्रमाण लै धाऊँ॥

लक्ष्मणके यह शब्द उनके साहस, कुलाभिमान, और वीरताके द्योतक हैं। उन्हें सन्देह था, कि राम कहीं रुष्ट न हो जायं अतः संकुचित हृदयसे ही यह बातें कहीं थी, अन्यथा न जाने क्या कह जाते।

धनुष-भङ्गके बाद जब परशुराम आये और उनकी बातें सुन लोग थरथर कांप उठे, तब भी लक्ष्मणने निर्भीक हो साहस पूर्वक उनसे प्रश्नोत्तर किये। लोगोंको विश्वास हो गया था, कि इक्कीसवार पृथ्वीको निःक्षत्रिय करनेवाले, परशुराम अभी इसी क्षण इस बालकका शिर अपने परशुसे उड़ा देंगे, परन्तु लक्ष्मणके हृदयमें शङ्का छू भी न गयी थी।

लक्ष्मणका यह साहस अभिमान और शौर्य्य देख जनक भी बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने उर्मिला नामक दूसरी कन्याका विवाह उनके साथ कर दिया दैवयोगसे जन्म, शिक्षा दीक्षा तथा अन्यान्य कार्य्योंकी भांति लक्ष्मण और रामका विवाह भी एक ही दिन—एक ही साथ हुआ।

लक्ष्मण रामका अहित जरा भी न देख सकते थे। जब रामको वनवासकी आज्ञा हुई, तब उन्होंने कहा,—हे राम! आप

कैकेयीके कहनेसे राजलक्ष्मी छोड़ वन चले जायं, यह मुझे अच्छा नहीं लगता। किसकी सामर्थ्य है, जो आपके अभिषेक में विघ्न उपस्थित करे। मैं आपका दासानुदास हूं, सदा आपके पीछे खड़ा रहूंगा। यदि आपसे कोई चूं करेगा, तो मैं उसे मार ही डालूंगा। यदि विवेकको जलाञ्जलि दे, अनुचित कार्य करे, तो वह चाहे जो हो, उसे शिक्षा देनी ही चाहिये। राज्यके वास्तविक अधिकारी आप हैं, आपको छोड़ कर भरतको राज्य देना सम्पूर्ण अन्याय है। मैं शपथ पूर्वक कहता हूं, आप विश्वास रक्खें, मैं आपके साथ हूं और आपकी आज्ञा शिरोधार्य्य करनेको तय्यार हूं।"

बन्धु-प्रेमके वशीभूत हो लक्ष्मणने इस प्रकारकी अनेक बातें कहीं परन्तु रामने उनको समझाबुझाकर शान्त कर दिया। अन्यथा वह सब कुछ करनेको तय्यार थे, करते और रामको वन न जाने देते। लक्ष्मणके स्वभावमें कुछ उग्रता और उच्छृंखलता थी परन्तु रामका स्वभाव गम्भीर था। राम उनके स्वभावको जानते थे, अतः उन्होंने कर्त्तव्यका स्मरण दिलाते हुए उन्हें शान्त किया और अपना वन जानेका निश्चय प्रकट किया। साथही यह भी बतलाया, कि सीता साथ ही जायगी, वह यहां रहना नहीं चाहती।

रामके निश्चयको जानकर लक्ष्मण भी वन जानेको तय्यार हुए। वह रामके वियोगकी अपेक्षा मृत्युको विशेष पसन्द करते थे। उनकी आँखें डबडबा आयीं और जी छटपटाने लगा!

उन्होंने दीनता पूर्वक रामसे कहा,—"मैं भी आपके साथ चलूंगा। सीताकी तरह मुझे भी साथ चलनेकी आज्ञा दीजिये। आपसे पृथक रहनेपर मुझे तीनोंलोकका राज्य मिलता हो, देवलोक की प्राप्ति होती हो, अमरत्व प्राप्त होता हो, तो वह भी मेरे लिये बेकार है। मैं आपकी सेवामें ही सबकुछ समझता हूं। यदि साथ न ले चलेंगे, तो आप मुझे लौटा कर जीवित न पायेंगे।"

लक्ष्मणकी यह बातें सुन रामने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। उन्हें भी लक्ष्मणका वियोग असह्य प्रतीत होता था। लक्ष्मणके बन्धु-प्रेमका यह ज्वलन्त उदाहरण है। इन्होंने राज-मन्दिरमें रहते हुए ऐश्वर्य्य भोग करनेकी अपेक्षा भाईके साथ वनवन भटकना, कन्दमूल खाना और कष्ट उठाना ही विशेष अच्छा समझा। रामको वे ईश्वरके तुल्य मानते थे और उन की आज्ञाके पालनको अपना परम कर्त्तव्य समझते थे। क्रोधी उग्र, उच्छृंखलत, और धृष्ट होनेपर भी उन्होंने रामके डरसे कभी कोई अनुचित कर्म्म नहीं किया। जनककी राज-सभामें रामका भृकुटि-सङ्केतही देखकर चुप हो गये थे और अपने क्रोधको दबा लिया था।

लक्ष्मण भी जटाजूट रख वल्कल धारणकर रामके साथ वन गये। पीनेके लिये जल और खानेके लिये फलोंका प्रबन्ध वही करते थे धनुष बाण लेकर वह आगे चलते। सीता उनके पीछे रहती और राम सबके पीछे चलते। लक्ष्मण मार्गके कांटे, कंकड़ हटाकर एक ओर कर देते और रास्ता ऊंचा

मौका होता तो राम तथा सीताको उसकी सूचना देते। लक्ष्मण किसी स्त्रीको ओर आंख उठाकर नहीं देखते थे। कभी काम पड़जाता तो नीची दृष्टिसे आवश्यकतानुसार थोड़ी बातें कह देते अधिक समयतक पर स्त्रीसे संभाषण करना वह अनुचित समझते थे। रात्रिमें राम और सीता पर्णशय्यापर सो रहते। तब लक्ष्मण धनुष-बाण ले उनकी रक्षामें प्रवृत रहते।

सूपर्णखा रावणकी बहिन थी। उसका पुत्र दण्डकारण्यमें तप कर रहा था। उसकी आराधनासे प्रसन्न हो उमापतिने एक प्रचण्ड धनुष और एक तीक्ष्ण बाण उसे देना चाहा। उन्होंने आकाश-मार्गसे वह दोनों चीजें उसके पास भेजीं। देवताओंको यह देख बड़ी चिन्ता हुई। सोचने लगे, कि राक्षस ऐसेही बलवान हैं, जब उनके पास इस प्रकारके शस्त्रास्त्र हो जायेंगे तब वह और भी उत्पात करेंगे। निदान, उन्होंने ऐसी युक्तिकी, कि वह धनुष-बाण लक्ष्मणके हाथ लग गया।

एक दिन लक्ष्मण कन्दमूलकी तलाशमें इधर उधर घूम रहे थे, इतनेमें उस राक्षससे कहीं भेंट हो गयी। लक्ष्मणने उसे उसी देवदत्त बाणसे मार डाला। सूपर्णखा उसकी माता क्रुद्ध हो लक्ष्मणकी खोज करने लगी, परन्तु राम लक्ष्मणको देखते ही वह उन पर मोहित होगयी। उसे पूर्वकी बातें भूल गयीं और वह राम लक्ष्मणसे वाग-विलास करने लगी। रामको उसकी बातें अच्छी न लगीं। वह उन्हें अपने साथ विवाह

करनेको समझा रही थी। रामने उसे लक्ष्मणके पास भेज दिया और लक्ष्मणने रामका सङ्केत समझकर उसके नाक कान काट लिये।

सूपर्णखा चिल्लाती हुई खर-दूषणके पास गयी और वह सदलबल रामको दण्ड देनेके लिये दौड़े आये। रामने उन सबोंको परास्त किया और मार डाला। सूपर्णखाने यह देख रावणके पास जाकर उन्हें अनेक प्रकारकी बातें कह उत्तेजित किया (देखो रामचरित्र)। रावणने धूर्त्तता पूर्वक सीताका हरण किया और उन्हें लङ्का उठा लेगया। राम, पत्नी-वियोगसे व्याकुल हो इधर उधर भटकने और सीताकी खोज करने लगे लक्ष्मणने उन्हें शान्त करनेकी चेष्टा की और मधुर वचनों द्वारा आश्वासन तथा धैर्य्य दिया। अब वह ऋष्यमूक पर्वतके पास पहुंचे और सुग्रीवसे भेंट हुई तब उसने कहा, कि एक दिन एक राक्षस आकाश-मार्गसे दक्षिणकी ओर एक रमणीको लिये हुए भागा जा रहा था। उस रमणीने हम लोगोंको यहां बैठे हुए देखकर कुछ वस्त्र और आभूषण नीचे डाल दिये थे वे मेरे पास अभी तक सुरक्षित हैं। आप उन्हें देख कर पहचानिये, वह सीताके हैं या किसी औरके?

इतना कह सुग्रीवने वह वस्त्राभूषण लाकर रामके सम्मुख रख दिये। रामका चित्त व्यग्र हो रहा था। उन्होंने कुण्डल और कङ्कणको हाथमें ले लक्ष्मणको दिखाते हुए कहा—"देखो लक्ष्मण! यह कुण्डल और कङ्कण तो सीताकेही मालूम होते हैं।

लक्ष्मणने कहाः—

कुण्डलं नैव जानामि नैव जानामि कङ्कणे ।
नूपूरे एव जानामि नित्यं पादाभि वन्दनात् ॥

अर्थात्, मैं कुण्डल और कङ्कणोंको नहीं जानता। मैं तो सीताके केवल नूपुरोंका पहचानता हूँ. क्यों कि पैर छूते समय वह रोज मेरी नजर पड़ते थे।

पाठको! लक्ष्मणके इन थोडेसे शब्दोंमें कितनी सुशीलता भरी है? निरन्तर एक साथ रहने पर भी वह सीताके कङ्कण तथा कुण्डल नहीं पहचानते थे! न पहचाननेका कारण यह था, कि वह सीताके प्रति आंख उठा कर देखते भी न थे। कानके कुण्डल और हाथके कङ्कण पर उनकी दृष्टि कभी न पड़ी थी! वह तो उनके पैर छूते थे अतः नूपुरोंकोही पहचानते थे। सीताके प्रति उनका कितना पूज्य भाव था, वह उन्हें कैसी दृष्टिसेसे देखते थे, कितनी मर्य्यादा रखते थे और कितने सुशील थे—यह सब इन बातोंसे स्पष्ट मालूम हो जाता है।

लक्ष्मणको हम योगेश्वर जितेन्द्रिय, महात्मा या साधु पुरुष जो कुछ कहें वह थोड़ा, है। यौवनावस्थामें उर्मिला समान लावण्यवती सुन्दरी और साध्वी प्रियतमाको छोड़कर वह चौदह वर्ष भाईके साथ भटकते रहे। बन्धु-प्रेमके सामने उन्होंने स्त्री-प्रेमका कुछ भी मूल्य न समझा। यह भी न सोचा, कि मेरे वन चले जाने पर उर्मिलाकी क्या दशा होगी? स्वप्नमें भी उन्होंने उर्मिलाका चिन्तवन न किया। राम और सीताकी आज्ञा पाल-

न की और चौदह वर्ष पर्य्यन्त उन्होंकी सेवाकी। एक दिन कहीं भूलसे सीताका स्पर्श हो गया। लक्ष्मणने इस दोषसे मुक्त होनेके लिये बारह वर्ष पर्य्यन्त निराहार रहनेका निश्चय किया। कितना ऊँचा त्याग! कितनी जितेन्द्रियता! कितना तप! कितनी साधुता! धन्य है लक्ष्मण! तुम्हारी जोड़का मनुष्य न हुआ है, न होगा।

लक्ष्मणके तपस्वी-जीवनमें एक दिन बड़ा भयङ्कर बीता। उस दिन उन्हें रामकी आज्ञा न माननी पड़ी। उसी दिन उन्होंने अपनी आत्माके विरुद्ध कार्य किया। उसी दिन वह धर्म सङ्कटमें पड़े और उसी दिन किंकर्त्तव्य विमूढ़ हुए। उसी दिन सती उनसे रुष्ट हुईं और उसी दिनसे विपत्तिका सूत्र-पात हुआ। वास्तवमें लक्ष्मणका कोई दोष न था। ईश्वरकी इच्छाही वैसी थी। विधिके विधानमें कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकता। होनी होकर ही रहती है और कर्मकी रेख पर कोई मेख नहीं मार सकता। जिस दिन रामचन्द्र माया मृगके पीछे पड़े, उसी दिनकी ओर यह सङ्केत है। संसारमें कभी सुवर्ण-मृग देखा या सुन नहीं गया, फिर भी सीताका मन मोहित हुआ और रामने उसे पकड़नेकी चेष्टाकी जब कोई अघट घटना घटित होनेको होती है तब ऐसीही विचित्र तृष्णा उत्पन्न होती है।

रामचन्द्रने लक्ष्मणको सावधान कर उस मायावी मृगका पीछा किया। मृगके वेशमें मारीच नामक कपटी दानव था। जब रामके शराघातसे वह आहत हो कर भूमिपर गिरा और प्राण-

विसर्जन करने लगा, तब उसने लक्ष्मणको उच्चस्वरसे पुकारा। सीता उस शब्दको सुनकर भय-भीत हुई और रामके अनिष्टकी शङ्का करने लगीं। उन्होंने समझा, कि रामपर कोई आपत्ति आ पड़ी है और वह लक्ष्मणको सहायतार्थ बुला रहे हैं। निदान, उन्होंने लक्ष्मणसे जानेको कहा और विनय पूर्वक अनुरोध किया। लक्ष्मण सीताको अकेली छोड़ जाना न चाहते थे। ऐसा करनेके लिये रामकी आज्ञा भी न थी। वह जानते थे, कि रामचन्द्र परम प्रतापी पुरुष हैं, उनपर कोई विपत्ति आ नहीं सकती तथा दैवात् आ जाय तो वह उसका प्रतिकार कर आसानीसे मुक्त हो सकते हैं।

जब वह जानेको तय्यार न हुए तब सीता उनसे रुष्ट हो गयीं उन्होंने अपनी बातपर ज़ोर दिया, साथही कुछ कटु शब्दोंका प्रयोग भी किया। अब लक्ष्मणके प्राण असमञ्जसमें पड़ गये। सीताको भी वह माता समान मानते थे। उनकी भी आज्ञा कभी उल्लङ्घन न की थी। इस समयकी आज्ञा न माननेसे मिथ्या कलङ्क लग रहा था। एक ओर रामका डर दूसरी ओर सीताकी अविचार पूर्ण आज्ञा और मर्मप्रहार, तथा तीसरी ओर आत्म-ग्लानि इन सबने उन्हें किंकर्त्तव्य विमूढ़ बना दिया। अधिक सोचनेका समय न था। तुरन्त उन्हें निश्चय करना पड़ा और अभी लौट आऊंगा, इस विश्वास पर उन्होंने आश्रमका त्याग किया। इसके बाद क्या हुआ सो हमारे पाठकोंको विदित ही है।

हमारे पुराण और काव्य ग्रन्थोंमें अनेक जितेन्द्रिय महापुरुषोंके जीवन-चरित्र अङ्कित हैं, परन्तु लक्ष्मणके समान त्याग, बन्धु-प्रेम और जितेन्द्रियता कहीं नहीं पायी जाती। बारह वर्ष पर्य्यन्त वह निराहार रहे, ब्रह्मचर्य्य पालन किया और निद्रा भी न ली, परन्तु रामको इसका पता भी न लगने पाया। लङ्कामें जब युद्ध हुआ और मेघनादसे मुकाबिला पड़ा तब उन्होंने उसकी वर-प्राप्तिका वृत्तान्त सुना। इन्द्रजीतको इन्द्री-जीत ही मार सकता है—यह जानकर वह निराश हो गये। रामचन्द्र स्वयं उसका वध करनेमें असमर्थ थे। बारह वर्ष पर्य्यन्त जिसने ब्रह्मचर्य्य पालन किया हो, निद्रा न ली हो वहीं उसे मार सकता था। जाम्बवन्तने रामकी चिन्ता दूर करते हुए कहा कि —"आप निश्चिन्त रहें, लक्ष्मणमें यह सब बातें पायी जाती हैं, जो इन्द्रजीतको मारनेवालेके लिये होनी चाहियें लक्ष्मण पूर्ण ब्रह्मचारी और इन्द्रिय-जीत हैं। वह अवश्य इन्द्रजीतको मार सकेंगे।"

जाम्बवन्तकी यह बात सुन रामचन्द्रके आश्चर्य्यका पारावार न रहा। उन्होंने लक्ष्मणको गले लगाकर धन्यवाद दिया। साथही अपनी अनभिज्ञतापर खेद भी प्रकट किया। वास्तवमें यदि लक्ष्मण इन्द्रजीत मेघनादका वध न करते तो राम विजयी होते या नहीं यह बतलाना कठिन है। रामको लक्ष्मणका बड़ा सहारा था और इसमें कोई सन्देह नहीं, कि उनकी सहायतासे ही लङ्काका इतनी जल्द पतन हुआ।

जब लक्ष्मण मेघनादकी शक्तिसे आहत हो मूर्च्छित हो गये और उनके बचनेकी कोई आशा न थी, तब रामने स्वयं उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए करुण-क्रन्दन किया था। उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया था, कि मैं लक्ष्मण बिना अब युद्ध नहीं कर सकता, न जीवितही रह सकता हूं। उन्होंने सौहार्द रसमें सने हुए करुण स्वरसे निम्न लिखित शब्द कहे थे :—

देशे देशे कलत्राणि, मित्राणि च पुरे पुरे।
तं देशं नैव पश्यामि, यत्र भ्राता सहोदरः॥

अर्थात्, स्त्रियां प्रत्येक देशमें प्राप्त हो सकती हैं, मित्र प्रत्येक स्थानमें मिल सकते हैं; परन्तु मैंने ऐसा कोई देश नहीं देखा, जहाँ सगा भाई मिल सकता हो। धन्य है राम लक्ष्मण के पारस्परिक प्रेमको! प्रेम हो तो ऐसा ही हो। आज भी समाजमें उनके प्रेमकी मुहर लगी हुई है। लोग दो सुशील और प्रेमी भाइयोंको देखकर, उन्हें राम लक्ष्मणकी जोड़ी बतलाते हैं।

रावणादिकका विनाश कर रामचन्द्रने विभीषणको सिंहासनारूढ़ कराया और आप अयोध्या लौट आये। अयोध्यामें जब उनका अभिषेक हुआ तो वह लक्ष्मणको युवराजका पद प्रदान करने लगे। लक्ष्मणने उसे अस्वीकार किया और पूर्ववत् कर्त्तव्य पालनमें दृढ़ रहे। उन्होंने ज्येष्ठ बन्धुकी सेवाकोही अपना धर्म मान रक्खा था। आजीवन वह उस धर्मका पालन करते रहे और कभी विचलित न हुए। राज कार्यमें उन्होंने रामचन्द्रको बड़ी सहायता पहुंचायी थी और

प्रजा प्रेम सम्पादन करनेमें भी सफल हुए थे। उर्मिलाके गर्भ से उन्हें दो पुत्र रत्नोंकी प्राप्ति हुई थी। एकका नाम अङ्गद और दूसरेका नाम चित्रकेतु था।

अन्तमें लक्ष्मणका हृदय वैराग्य-शील हो गया था। रामचन्द्रसे वह ब्रह्मज्ञानके विषयमें प्रश्न किया करते थे। रामचन्द्र उनका मनोभाव जानकर उन्हें तत्सम्बन्धी अनेक बातें बतलायीं थीं। लक्ष्मणने रामचन्द्रकी चरण-सेवा करते हुए दीर्घ जीवन व्यतीत किया और अन्तमें स्वेच्छा पूर्वक प्राणविसर्जन कर दिये।

लक्ष्मण वास्तवमें अवतारी पुरुष थे। उनके प्रत्येक कार्यमें अलौकिकता झलक रही है आज भी आस्तिक आर्य्य-प्रजा उन्हें याद करती और पूजती है। राम लक्ष्मण दोनों अभिन्न थे यह दिखलानेके लिये मन्दिरोंमें उनकी मूर्त्तियां साथ ही स्थापित की जाती हैं। उनकी अमर कीर्त्ति, अपूर्व प्रभाव और अतुल प्रतिभा अखिल संसारमें विख्यात है। आर्य्य प्रजा तो यावद् चन्द्रदिवाकरौ उनके गुणोंका गान करेगी।

महावीर हनुमान

इस अजर—अमर महा पुरुषका नाम किसने नहीं सुना ? यह परम पूज्य प्रबल पराक्रमी अद्वितीय वीर अंजनिके पुत्र थे। अंजनिने महा देवकी आराधना कर उन्हें प्रसन्न किया था अतः वायु देवकी कृपासे इस प्रतापी पुत्रकी प्राप्ति हुई थी। इसीलिये वह वायुपुत्र, पवनकुमार और मारुती प्रभृति नामोंसे पुकारे जाते हैं। वज्र समान अङ्ग होनेसे वजरंग और पैरमें चोट आनेसे हनुमान भी कहे जाते हैं।

आर्य्यगण हनुमानको आराध्य देव मानकर उनकी आराधना करते हैं। कार्य्य सिद्धिके लिये उनके नाम रूपी मंत्रका प्रयोग करते हैं और उन्हें दुष्ट-कुल-विनाशक मानते हैं। लोग सङ्कटके निवारणार्थ उनकी उपासना करते हैं. और प्रसाद भी चढ़ाते हैं। ऐसा क्यों होता है ? हनुमानकी गणना देव कोटिमें क्यों होने लगी उत्तरमें यही कहा जा सकता है, यह सेवा भावका महत्व था। वह अखण्ड ब्रह्मचारी, तेज-पुञ्ज, बुद्धिमान और अद्भुत पराक्रमी थे।

हनुमानके विषयमें अनेक चमत्कार पूर्ण कथायें कही जाती है। सबोंमें उनके अलौकिक बल अद्भुत बुद्धि और अनुपम

चातुर्य्यका पता चलता है। जन्म होतेही वह सूर्य्यदेवको फल समझकर ग्रास करनेके लिये आकाशकी ओर तीन सौ योजन पर्य्यन्त उड़े। उनकी यह शक्ति देख इन्द्रने युद्धारम्भ किया, परन्तु उन्हें स्वयं मूर्च्छित होना पड़ा। जब मूर्च्छा दूर हुई, तब उन्होंने पवनकुमार पर वज्रप्रहार किया। वज्राघातसे उनका पैर टूट गया और वह भूमिपर गिर पड़े। अपने पुत्रकी यह दशा देखकर वायुदेव दौड़ पड़े और उन्हें उठाकर हृदयसे लगा लिया। इन्द्रको उन्होंने क्रुद्धहो बड़ा उलाहना दिया। इन्द्रने लज्जित हो क्षमा प्रार्थना की और आशीर्वाद दे हनुमानका पैर ठीक कर दिया। उसी दिनसे वह अजर अमर और निर्भय हो संसारमें विचरण करने लगे और हनुमान नामसे प्रसिद्ध हुए।

हनुमान शूर वीर, उद्योगी, बुद्धिमान, पराक्रमी, चतुर और विद्वान थे। वह वेशधारण और नाट्याभिनय भी कर सकते थे। गुप्त भेदोंका पता लगाना उनके बायें हाथका खेल था। साथही वह उत्साही, राजभक्त, नीतिज्ञ, धार्म्मिक और शिल्प कला-कुशल भी थे।

किष्किन्धा-नरेश सुग्रीव उनके परम मित्र थे। बहुधा वह उन्हींके साथ रहते थे। सुग्रीवने उनको अपना प्रधान मन्त्री बनाया था, क्योंकि वे बलवान, बुद्धिशाली और प्रमाणिक थे। सुग्रीवको उसके भाई वालिने निकाल दिया था। वह उससे डरता था और ऋष्यमूक पर्वत पर कालयापन करता था। जब रावण सीताको उठा ले गया, तब उनकी खोज

करते हुए राम और लक्ष्मण पम्पा सरोवरके पास पहुँचे। सुग्रीवने समझा, कि यह वालिकी ओरसे मुझे दण्ड देने आये हैं अतः भयभीत हो, हनुमानको पता लगानेके लिये उनके पास भेजा। हनुमान ब्राह्मणका वेश धारण कर उनके निकट गये और बोले कि आप कौन हैं और यहां किस लिये विचर रहे हैं? आप कोई दिव्य, पुरुष प्रतीत होते हैं। आपके शस्त्रास्त्र बड़ेही तीक्ष्ण हैं, शरीर पर राजचिन्ह भी वर्त्तमान हैं। ज्ञात होता है, कि आप कोई राज-वंशी हैं। आपका शरीर बड़ा लङ्कारोंसे सुशोभित होने योग्य और अत्यन्त सुकुमार है। मुझे आपका यह तापस-वेश देखकर बड़ा आश्चर्य होता है।

उनकी यह बातें सुन रामने अपना परिचय दिया और लक्ष्मणसे कहा कि, देखो लक्ष्मण! यह ब्राह्मण बड़ा विद्वान प्रतीत होता है। इसकी भाषामें एक भी अशुद्धि नहीं है अतः ज्ञात होता है, कि, इसने व्याकरण शास्त्रका भली भाँति अध्ययन किया।

जब हनुमानको विश्वास होगया, कि यह वालिके मित्र नहीं हैं, तब उन्होंने अपना प्रकृत परिचय दिया और बोले, कि हे राम! इस पर्वत पर सुग्रीवका निवास है। मैं उनका प्रधान मन्त्री हूं। वह वालिसे संत्रस्त हो, यहां अपने दुःखके दिवस विताया करते हैं। आपसे वह मित्रता करना चाहते हैं और इसीलिये उन्हों ने मुझे आपके पास भेजा है।

रामने प्रसन्नहो उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और सुग्री-

चले मिलनेको प्रस्तुत हुए। हनुमान उनकी यह सरलता देखकर आनन्दित हो उठे और उन्हें अपने कन्धोंपर बैठाल सुग्रीवके पास ले गये। उसी क्षण सुग्रीव और राममें सौहार्द स्थापित हो गया। रामने वालिका प्राणहरण कर सुग्रीवको किष्किन्धाको राज्य दिला दिया और सुग्रीवने चतुर्मास व्यतीत होने पर सीताकी खोज करानेका वचन दिया।

चतुर्मास व्यतीत होतेही सुग्रीवने अङ्गदकी अधिनायकतामें हनुमानादि दश प्रवीण वानरोंको दक्षिण दिशामें प्रेषित किया। रामको हनुमान पर बड़ा विश्वास था। वह जानते थे, कि यह सीताका पता लगाये बिना न लौटेंगे अतः उन्हें चिह्नस्वरूप अपनी मुद्रिका दी, अन्यथा सम्भव था, कि, सीता उनपर विश्वास न करतीं।

रामके पाससे विदा होकर हनुमानादि दक्षिणकी ओर अग्रसर हुए। कण्डुक ऋषिके अरण्यमें एक राक्षससे भेंट हो गयी। हनुमानने उसका वध किया। फिर वे निर्विघ्न समुद्रके पास जा पहुँचे। समुद्रको देखकर सबका धैर्य्य छूट गया। उसको पार करना सामान्य काम न था। सबके सब घबड़ाने लगे। क्योंकि एक मास व्यतीत हो चुका था, अब तक सीताका पता न मिला था। अचानक सम्पातीसे भेंट हो गयी। सम्पाती जटायु नामक वनचरका भाई था और उसी स्थानमें रहता था। उसने कहा कि, "सीता लङ्काके अशोक वनमें संतप्त हो रही हैं। यदि आप समुद्र उल्लंघन कर उस पार पहुँच जायं तो उनसे भेंट हो सकती है।"

सम्पातीकी यह बात सुन, अङ्गदने सबकी शक्तिका पता लगाया, परन्तु उन्हें कोई भी इस योग्य न जचा जो समुद्र पार कर सीताके पास पहुंचे और वहांसे सुरक्षित लौट आवे अन्तमें वह और जाम्बुवान हनुमानके पास गये और उनसे कहा—कि आपही ऐसे हैं जो सीताकी खबर ला कर हम लोगोंको प्राण दान दे सकते हैं। आपने अनेक दुस्साध्य कार्य्य किये हैं, आपके लिये यह कर दिखाना कोई कठिन बात नहीं है।

हनुमान उनकी यह बातें सुन तत्काल कटिबद्ध हुए। और परमात्मा की चराचर विभूतिको नमस्कार कर समुद्रकी ओर चल पड़े मार्गमें सुरसा नामक राक्षसीसे भेंट हुई। हनुमान-ने उसका विनाशकर समुद्र पार किया और सूक्ष्म रूप धारण कर लङ्कामें प्रवेश किया।

लङ्काके संरक्षकोंने उन्हें रोकना चाहा परन्तु हनुमान क्यों रुकने लगे! वह उन्हें पराजित कर अग्रसर हुए और लङ्काकी अलौकिक शोभा अवलोकन करने लगे। राज-पथ, उपवन क्रीड़ास्थान, कोषागार, अश्व, रथ, गज, पदाति, शस्त्रास्त्रगृह, यानगृह और राजमन्दिर इत्यादि देखते हुए अशोक वाटिका, में पहुंचे। अशोकवाटिकामें अनेक भव्य मन्दिर, जलाशय और फव्वारे, बने हुए थे। नाना प्रकारके सहस्रावधि वृक्ष, लगे हुए थे, जिनकी डालियाँ फल फूलोंके भारसे झूल रहीं थीं। लङ्काका यह वैभव देखकर हनुमानको बड़ा विस्मय आ।

वह न समझते थे कि एक राक्षसकी नगरी इस प्रकार सम्पन्न होगी और वहाँ सुख सम्पत्तिका इतना आधिक्य होगा।

अन्तमें उन्होंने देखा कि एक वृक्षके नीचे अनेक राक्षसियां एक पीत वसना सुन्दरीको घेरे हुए बैठी हैं। उस सुन्दरीका शरीर दुर्बल हो रहा था और वह दुःखित एवम् ध्यानस्थ दशामें बैठी हुई थी। उसके मुखमण्डलपर दिव्य तेज झलक रहा था। हनुमानने लक्षणों को देख निश्चय कर लिया कि यही सीता है। सीताको देख उन्हें बड़ा आनन्द हुआ। मिलनेके लिये सुयोग्य अवसरकी प्रतीक्षा करते हुए वह उसी वृक्षपर बैठे रहे। और अनेक प्रकारके विचार करते रहे। वह मनहीमन कहने लगे कि रामका शोक बेजा नहीं। ऐसी साध्वी, तेज-पुञ्ज, गुणीय, सुन्दर और देवी स्वरूपा स्त्रीके लिये दुःखित होना स्वाभाविक है।

इसी प्रकारके विचारोंमें वह तन्मय हो रहे थे, इतनेमें वहां रावण आ पहुंचा। उसके साथ कई भयानक राक्षसियां भी थीं। हनुमान अपने आपको उसी वृक्षमें छिपा लिया और उसकी बातें सुनने लगे। रावणने सीताको अनेक प्रकारसे समझाया और वशमें करनेकी चेष्टाकी, परन्तु जब कोई फल न हुआ तब वह उन्हे धमकाकर वहाँसे चला गया। त्रिजटा नामक एक दयालु राक्षसी थी। उसको सीताकी दशापर दया आयी और वह अन्य राक्षसियोंको वहाँसे हटा ले गयी। वे सब सीताको रावणके आज्ञानुसार कष्ट दे रही थी। जब

दुःखिनी सीताने एकान्त देखा, तो अपना केशकलाप छोड़ दिया और उसी द्वारा कण्ठपाश लगा प्राण विसर्ज्जन करनेका विचार करने लगी।

हनुमान यह सब बातें उसी अशोक परसे देख रहे थे। वह रावण और उन राक्षसियोंको चाहते तो मार सकते थे, उनमें शक्तिका अभाव न था, परन्तु अनेक बातोंका विचारकर उन्होंने वैसा न किया और उचित अवसरकी प्रतीक्षा करते रहे। जब सीताने कण्ठ-पाश लगानेकी तय्यारी की तब उन्होंने सोचा, कि यदि अब इन्हें सान्त्वना न दूंगा तो यह प्राण-विसर्ज्जन कर देंगी और कोई उद्देश्य सिद्ध न होगा। परन्तु सान्त्वना किस प्रकार दी जाय? प्रकट होनेसे, सीताको विश्वास न होगा—वह राक्षसी माया समझ विश्वास न करेगी और राक्षसियां देख लेंगी तो रावणको सूचना दे देंगी, अनेकानेक राक्षस मुझपर टूट पड़ेंगे। राक्षसोंका तो भय नहीं है, परन्तु जिस कार्य्यके लिये आया हूँ वह सिद्ध न होगा, यही खेद है। इसी प्रकारकी चिन्ताओंने उन्हें आ घेरा। अन्तमें उन्होंने एक युक्तिसे काम लेनेका विचार किया और तदनुसार बड़ी ही मनोहर भाषामें रामचरित्र वर्णन कर वह शान्त हो गये और उसका क्या प्रभाव पड़ता है, यह देखने लगे।

सीताको अमृतमयी भाषामें रामका गुणानुवाद सुन बड़ा आश्चर्य हुआ। आज तक इस स्थानमें उन्होंने ऐसी बातें न सुनी थीं। वह चकित हो चारों ओर देखने लगीं: परन्तु कोई

दिखायी न पड़ा। अन्तमें वृक्षकी ओर दृष्टिपात कर वह बोलीं—"हे परमात्मा! यह मैं क्या सुन रही हूं। मुझे बड़ा आश्चर्य होता है। रामका इस प्रकार गुण-गान करनेवाले महात्माका मुझे दर्शन क्यों नहीं होता? भगवान्! मेरा सन्देह दूर करो।"

सीताकी यह उत्सुकता देख हनुमान वृक्षसे उतर पड़े और उनके पास जा वन्दन किया। सीताने उन्हें देख कण्ठपाश छोड़ दिया और उनकी बातें सुनने लगीं। बातें सुननेपर भी उन्हें विश्वास न हुआ। एक बार वह इसी प्रकार धोखा खा चुकी थीं। रावण सन्यासीका वेश धारणकर उठा लाया था। उन्हें शङ्का हो गयी, कि यह भी राक्षसोंका कपट-जाल है। वह कहने लगीं—भाई! मैं दुःखिनी हूं। मुझे बार-म्बार धोखा न दो। मेरा हृदय दुखानेसे तुम्हें क्या लाभ होगा?

सीताकी यह बातें सुन हनुमान समझ गये, कि अभी तक सीताको मुझ पर विश्वास नहीं हुआ। वह बोले—देवी! मैं वास्तवमें राम-दूत हूं। आप सन्देह न करें। रामने अभि ज्ञानार्थ यह मुद्रिका दी है। लो, और अपना संशय निवा-रण करो!

मुद्रिकाको देखकर सीताका सन्देह दूर होगया और वह हनुमा-नकी बातों पर विश्वास करने लगीं। हनुमानने, कहा—"हे माते-श्वरि! आपकी इच्छा और आज्ञा हो तो इसी क्षण मैं तुम्हें रामके पास ले चलूं।"

सीताने कहा—नहीं! मेरे उद्धारके साथही रावणको दण्ड भी मिलना चाहिये। मैं एक मास पर्य्यन्त प्राणधारण कर मार्ग-प्रतीक्षा करूंगी। रामसे कह देना, कि वह स्वयं आवें और रावणको मारकर मेरा उद्धार करें। यह चूड़ामणि उन्हें दे देना और मेरा प्रणाम कह देना।"

इस प्रकारकी बातें कह सीताने हनुमानको चूड़ामणि देकर जानेकी आज्ञा दी। हनुमान उनसे विदा हो कुछ दूर गये और फिर लौट आये। वह सोचने लगे, कि यहाँ तक आया तो रावणसे साक्षात अवश्य करलेना चाहिये। उन्होंने उसके पास तक पहुंचनेके लिये एक युक्ति सोची और तदनुसार अशोक वाटिकाको उजाड़ना आरम्भ किया। सुन्दर वृक्षावलियोंको उखाड़ डाला और भवनोंको नष्ट भ्रष्ट कर दिया। उनके इस कार्य्यमें जिन्होंने बाधा पहुंचायी, उन्हें भी मार डाला।

हनुमानके इस उत्पातका समाचार रावणने सुना। उसने अनेक राक्षसोंको भेजा, परन्तु उनकी भी वही दशा हुई। रावणको यह सुन बड़ा क्रोध आया और उसने विरूपाक्ष यूपाक्ष दुर्धर्ष, प्रघस और भासकर्ण इन पांच प्रबल राक्षसोंकी अधिनायकतामें एक सेना भेजी, परन्तु हनुमानने उसे भी परास्त कर दिया। यह हाल सुन, रावणका पुत्र अक्षय आया और हनुमानको पकड़नेकी चेष्टा करने लगा परन्तु हनुमानके प्रहारसे उसकी भी इहलोक लीला समाप्त होगयी। अन्तमें मेघ-

नाद आया। हनुमानने उसे पूछमें लपेट एक गर्तमें डाल दिया और ऊपरसे शिला रख दी। मेघनाद अपनी यह दशा देख अत्यन्त लजित हुआ और ब्रह्मदेवका स्मरण करने लगा। ब्रह्मदेवने उपस्थित हो उसका उद्धार किया और ब्रह्मास्त्र दे कहा, कि इस अस्त्रकी सहायतासे हनुमानको पकड़नेमें तुन्हें सफलता मिलेगी।

मेघनादने हनुमान पर उसी अस्त्रका प्रयोग किया। हनुमान चाहते तो उसका भी प्रतिकार कर देते, परन्तु ब्रह्मदेवका वचन रखनेके लिये उन्होंने वैसा न किया और स्वेच्छापूर्वक उसके वन्दी वन गये। अनेकानेक राक्षस उनपर टूट पड़े और उन्हें मार मारने लगे, परन्तु उनके वज्र तुल्य शरीर पर उनका कोई प्रभाव न पड़ा। अन्तमें वह रावणके सन्मुख उपस्थित किये गये।

रावण एक उच्च सिंहासन पर आरूढ़ था, परन्तु हनुमान अपनी पूंछका आसन वनाकर इस प्रकार वैठे, कि वह उससे भी ऊपर हो गये। हनुमानकी यह धृष्टता देखकर रावणको वड़ा क्रोध आया। उसने उनकी पूछमें वस्त्र लपेट आग लगा देने की आज्ञा दी। राक्षसोंने वैसाही किया, परन्तु पूंछमें किसी प्रकार आग न लगी। रावणने वायुसे प्रार्थनाकी, परन्तु कोई फल न हुआ। हनुमानने कहा, यदि आप स्वयं फूंक मारदें तो आग जल उठे। रावणने विस्मित हो वैसाही किया। फूंक मारते ही ज्वाला प्रकट हुई और जव तक वह हटे हटे तय तक

उसकी दाढ़ी मूछमें आग लग गयी और मुंह जल गया। यह हास्योत्पादक दृश्य देखकर सबको हँसी आ गयी और रावण लज्जित हो आसन पर बैठ गया।

जब पूछमें आग लग गयी तब हनुमानने चारोंओर उछलना कूदना आरम्भ किया। एकके बाद एक सुन्दर भवनोंमें प्रवेश कर उन्होंने आग लगा दी। समूचा नगर धू-धू कर जलने लगा और सर्वत्र हाहाकार मच गया। हनुमानने अनेक राक्षसोंको जलती हुई पूछमें लपेट लपेट कर समुद्रमें फेंक दिया और अनेकोंको मार डाला। इस प्रकार अपने अद्भुत पराक्रमका परिचय दे वह समुद्रमें कूद पड़े और अग्नि शान्त कर दी। इस समय उनका स्वेद एक मकरीके उदरमें चला गया और उससे मकरध्वज नामक महा बलिष्ट वानरका जन्म हुआ।

हनुमान सीताके पाससे विदा हो पूर्वकी भांति पुनः समुद्र पार कर गये। महेन्द्र पर्वत पर अङ्गदादि बैठे हुए उनकी मार्गप्रतीक्षा कर रहे थे। हनुमानने उनसे सारा हाल कहा। सबको उनकी सफलता पर बड़ा हर्ष हुआ और सभी उनकी भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे। सानन्द सब कोई किष्किन्धा पहुचे और राम तथा सुग्रीवादिको समाचार सूचित किये। सीताकी चूड़ामणि देख राम बड़े प्रसन्न हुए और तुरन्तही उन्होंने हनुमानको गले लगा लिया।

हनुमानमें विलक्षण प्रकारकी कार्य्य-शक्ति थी। वह शिल्प कला भी जानते थे। अतः उन्होंने नल और नीलको सेतु रचनामें

बड़ी सहायता दी और समस्त सेनाको समुद्रके पार पहुंचाया। लङ्कामें वह रामके दाहिने हाथ बन गये और प्रत्येक कार्य्यमें योग देने लगे। नृत्य और नाट्याभिनय करनेमें वह बड़े ही निपुण थे। राम लक्ष्मणादि जब उकता जाते और मनोरञ्जनकी आवश्यकता होती तो वह तुरन्त अपनी उस कलाका परिचय दे सबको आनन्दित कर देते थे। समरस्थलीमें वेश धारणकी कलाने बड़ाही काम दिया। हनुमान आवश्यकतानुसार अवधूत, खिलाड़ी, व्यापारी, वैद्य, सन्यासी और ब्रह्मचारी इत्यादि का वेश धारण कर लङ्कामें प्रवेश करते और रावण तथा राक्षसियोंसे मिलकर अनेक भेदोंका पता ले आते। हथेलीपर प्राण लेकर वह कठिनाइयोंका सामना करते और आवश्यक बातोंका पता लगाही लाते। रामको रावणकी व्यूह रचना, सैन्य सञ्चालन और सब प्रकारकी प्रवृत्तियोंका पता यही देते थे। उनकी इस सेवासे बड़ी सहायता मिली थी।

हनुमानने समर क्षेत्रमें सैन्य सञ्चालनका कार्य्य भी दक्षता पूर्वक सम्पन्न किया था। अनेक राक्षसोंका उन्होंने नाश किया था। उनको देखतेही राक्षसगण थर्रा उठते थे। हनुमानने शिविर रक्षाका भार भी अपनेही शिर ले रक्खा था। रातदिन वह उसकी रक्षा करते और शत्रुओंसे सावधान रहते। उनका प्रबन्ध ऐसा उत्तम था; कि रावणके गुप्तचरोंकी भी दाल न गलती थी।

मेघनादकी शक्ति द्वारा जब लक्ष्मण मूर्च्छित हो गिर पड़े

और उनकी दशा शोचनीय हो गयी तब हनुमानही संजीवनी बूटी लेने गये थे। रातही रात वह द्रोणाचल उठा लाये थे। कालनेमि नामक राक्षसने इस कार्य्यमें बाधा पहुंचानेका उद्योग किया था, परन्तु हनुमानने उसको वहीं मार डाला था। जब वह अयोध्याके पाससे आ रहे थे तब भरतने उन्हें राक्षस समझकर बाणमार दिया था। बाण लगतेही हनुमानने रामका स्मरण किया। उनके दाहिने पैरमें चोट आ गयी थी। भरतने उनके निकट खेद प्रगट किया, परन्तु हनुमानको लेशमात्र भी क्षोभ किंवा रोष न हुआ। रामके कुटुम्बपर उनकी अलौकिक भक्ति भाव था।

राम लक्ष्मणको अहिरावण और महिरावण नामक दो असुर एक दिन पाताल उठा ले गये। इस कार्य्यमें रावणका भी हाथ था। वह उन्हें देवीके सम्मुख बलिदान करना चाहता था। हनुमानको राक्षसोंकी इस दुरभिसन्धिका पता लग गया और वह तुरन्त पाताल पहुंचे। दोनों डाकुओंको मारकर वह राम लक्ष्मणको छुड़ा लाये। राम उनकी यह वीरता देखकर बड़े प्रसन्न हुए और उनपर विशेष प्रेम रखने लगे।

हनुमान निर्लोभी भी थे। जब रावणका बध कर लङ्का विभीषणको दे राम अयोध्याके निकट पहुंचे, तब रामने उन्हें भरतको समाचार देने भेजा। रामके आगमनका शुभ समाचार सुन भरतको बड़ा आनन्द हुआ और वह उन्हें इस उपलक्ष्यमें अनेक ग्राम, बहुमूल्य रत्न और मणिमाणिक आदि उपहार देने लगे,

परन्तु हनुमानने वह लेना स्वीकार न किया। भरतका परम आग्रह देखकर उन्होंने उन वस्तुओंको स्पर्श कर लिया और फिर लौटाल दिया। उन्होंने कहा, कि मुझे इन वस्तुओंपर प्रेम नहीं है, मैं तो केवल रामके चरणों पर मुग्ध हूं।

वास्तवमें रामचन्द्रपर हनुमानका अखण्ड भक्ति-भाव था। जिस समय रामका अभिषेक हुआ और उन्होंने सिंहासनारोहण किया, उस समय सीताने अपना अमूल्य रत्नहार हनुमानको पहना दिया और प्रसन्नहो आशीर्वाद दिया कि—तुम्हें कभी व्याधि और कष्ट न होगा। तुम यावच्चन्द्रदिवाकरौ संसारमें विचरण करो और सुखी रहो।"

हनुमानने सीताको प्रणाम किया और एक ओर बैठ कर उन मणियोंको दांतसे तोड़ने। उनका यह कार्य्य देखकर सबको बड़ा आश्चर्य्य हुआ और लक्ष्मणने कहा, कि ऐसा अमूल्य हार इन्हें न देना चाहिये था, देखो वह मणियोंको तोड़ रहे हैं, मानो कोई खानेकी चीज है!

रामचन्द्रने यह सुनकर कहा—"प्रिय लक्ष्मण! हनुमानको निर्गुणी मत समझो। वह अकारणही वैसा नहीं कर रहे हैं। पूछने पर कारण अवश्य बतावेंगे।"

रामचन्द्रकी यह बात सुनकर लक्ष्मणने हनुमानसे वैसा करने का कारण पूछा। हनुमानने कहा—"भाई लक्ष्मण! मैंने इस हारको अमूल्य समझ कर लिया था, परन्तु देखता हूं, कि इसमें रामनाम नहीं है, अतः यह मेरे किसी कामका नहीं है।

मणियोंको तोड़कर मैं देख रहा हूं, शायद उनके अन्दर वह बात हो।"

यह बात सुनकर लक्ष्मणको हँसी आ गयी। उन्होंने व्यङ्गकर कहा—"पवनकुमार! यदि यही बात है और रामनाम-शून्य वस्तु तुम्हारे लिये व्यर्थ है तो यह शरीर क्यों धारण किये हो? इसमें भी तो राम नाम नहीं है।"

लक्ष्मणके यह शब्द सुनकर सभा-जनोंके समक्षही हनुमानने अपना हृदय विदारण कर डाला। सबोंने विस्मित होकर देखा कि उनके प्रत्येक रोममें राम नाम अङ्कित हो रहा है। कोई अस्थि और कोई स्थान उससे शून्य नहीं है। यह दृश्य देखकर लक्ष्मण भी चकित हो गये और उनकी मुक्त कण्ठसे प्रशंसा करने लगे। वास्तवमें जो प्रकृत भक्त है, वह अपने उपास्यको छोड़ दूसरी वस्तुओंपर प्रेम नहीं रखते। उनके निकट वह सभी चीजें व्यर्थ हैं, जिनसे उनके मनो भावकी पुष्टि न होती हो, फिर वह चाहे रत्नही क्यों न हो। सच्चा भक्त वही है जो अपने उपास्य देवकी तुलनामें समस्त सांसारिक पदार्थों को तुच्छ समझे।

हनुमानने रामकी सेवा वृत्तिही स्वीकार की थी। जब राम लक्ष्मण और लव-कुशमें (परस्पर न पहचाननेके कारण) युद्ध हुआ, तभी वह पराजित हुए, अन्यथा सर्वत्र उनकी विजयही होती थी। उस समय लव-कुशने उन्हें बन्दी बना लिया था और बाणोंका गट्ठर उठवाकर बेगार करायी थी जब वह उन्हें

सीताके पास ले गये तव सीताने उनको पहचानतेही छुड़ा दिया और रामके पास चले जानेकी आज्ञा दी। उस समय हनुमान और सीता दोनोंकी आँखोंसे आंसू निकल पड़े थे। बादको वाल्मीकि और उनके समझाने परही रामने सीताको अपने साथ ले जाना स्वीकार किया था।

रामने अनेक वार हनुमानको व्याह करनेके लिये समझाया परन्तु वह राजी न हुए। वह बोले—राजेन्द्र! मैंने आजन्म आपकी सेवा करनेका निश्चय किया है। गृहस्थाश्रममें फंस कर मैं कर्त्तव्य पालन कर सकूंगा। ब्रह्मचर्य्य नष्ट हो जानेसे यह शक्ति और यह बुद्धि न रहेगी, फिर मैं आपके कठिन कार्य्यों को किस प्रकार करूंगा? मैं तो एक क्षणके लिये भी आपसे दूर नहीं होना चाहता, यह फिर कैसे हो सकेगा। गृह-जालमें पड़कर अनेक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है, भांति भांतिकी चिन्तायें लगी रहती हैं और जीवन दुःखमय भी हो जाता है। मुझे यह कुछ न चाहिये मैं तो आपकी सेवामें ही जीवन व्यतीत करना चाहता हूं।"

इस प्रकार वह गृहस्थाश्रमसे सदा दूर रहे और अखण्ड ब्रह्मचर्य्य पालन किया। राम उनकी सेवा और भक्ति देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए, फलतः उन्हें ब्रह्मविद्याका उपदेश दे कल्याण पथ दिखाया।

श्रीमद्भागवतादि ग्रन्थोंमें लिखा है, कि रामचन्द्रने उन्हें कल्पान्त पर्य्यन्त पृथ्वीपर रहनेकी आज्ञा दी है और तदनुसार वह
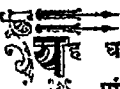
हिमालयके गन्ध मादन पर्वतपर निवास करते हैं और लोगोंको रामचरित्र सुनाते हैं। वह अजर अमर और व्याधि मुक्त हैं।

नाटक रामायण उन्हींकी रचना है और उन्हींके नामसे प्रसिद्ध है। एक बार उन्होंने भीमका अभिमान चूर्ण किया था। इस लोकमान्य और वीर पुरुषने लोगोंको अनेक प्रकार सुख दिये थे। यही कारण है, कि आज भी प्रजा प्रेमोन्मत्त हो उनकी पूजा करती है और देवताकी तरह स्मरण करती है। क्या यह सामान्य प्रेमका चिन्ह है? क्या इससे थोड़ा महत्व दर्शित होता है? धन्य है हनुमान! तुम्हारी जय हो! दीन-हीन भारतीयोंका पुनः उद्धार करो!

धर्मराज युधिष्ठिर

यह धर्म्म-विवेकी प्रतापी पुरुष चन्द्रवंशीय राजा पांडुके ज्येष्ठ पुत्र थे। इनकी माताका नाम था कुन्ती। इनका जन्म द्वापरमें हुआ था। यम-धर्मके मन्त्र-प्रभावसे उत्पन्न हुए अतः धर्मराजके नामसे प्रसिद्ध हैं। उनका शरीर कृश, वर्ण गौर, नेत्र विशाल थे। वह शान्त, क्षमा शील, धर्म्म-विवेकी, न्याय निपुण, सदाचारी, प्रतिज्ञा पालक राजनीतिज्ञ, धर्म्मिष्ठ, पापभीरु, दयालु, सत्यवादी, भले और धैर्य्यवान थे। वह वेदाङ्गादि शास्त्रोंके ज्ञाता और प्राणी मात्रके मित्र थे। बड़ोंको वह सम्मानकी दृष्टिसे देखते और उनकी आज्ञा शिरोधार्य्य करते थे। समस्त संसारमें उनका कोई शत्रु न था, अतः वे अजात शत्रुभी कहे जाते थे।

युधिष्ठिरने धनुर्विद्याका ज्ञान प्रथम कृपाचार्य्य और फिरद्रोणाचार्य्यके निकट प्राप्त किया था। वह बरछी चलानेमें बड़ेही निपुण थे, परन्तु अभ्यस्त न होनेके कारण भीषण युद्धमें अधीर हो जाते थे। रथ-विद्यामें उनको विशेष ख्याति हुई थी। इसके अतिरिक्त उन्हें सांकेतिक वर्बर भाषाका भी अच्छा ज्ञान था। पांडु राजाके दो स्त्रियाँ थीं—कुन्ती और माद्री। कुन्तीसे

युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन तथा माद्रीसे नकुल और सहदेव यह पांच पुत्र उत्पन्न हुए थे। कुन्तीने पांचोंका स्नेह पूर्वक लालन पालन किया था और पांचोंमें परस्पर बड़ा प्रेम था। एक दूसरेको वह प्राणसे अधिक चाहते थे। कभी उनमें मनो मालिन्य होते नहीं देखा गया। युधिष्ठिर सबोंमें ज्येष्ठ शेष चारों भाई उनके प्रति सम्मान प्रकट करते और कायदेके साथ रहते थे। सर्वदा वह उनकी आज्ञा शिरोधार्य्य करनेको प्रस्तुत रहते थे, चाहें वह कठिन और दुःसाध्यही क्यों न हो। पांडुके यह पांचों पुत्र पांडव नामसे प्रसिद्ध है।

धृतराष्ट्र पांडुके ज्येष्ट-बन्धु थे और पांडुके न रहनेपर अन्ध होते हुए भी शासन कार्य्य करते थे। उनके सौ पुत्र थे और वह कौरव नामसे पुकारे जाते थे। कुन्ती अपने पुत्रोंसहित उन्हींके आश्रयमें रहती थीं। हस्तिनापुर उनकी राजधानी थी। पाण्डव गुणोंमें कौरवोंसे श्रेष्ठ थे अतः कौरव उनसे द्वेष रखते थे। धृतराष्ट्र पाण्डवोंसे प्रसन्न थे और युधिष्ठिरको युवराज भी बना दिया था। युधिष्ठिर उन्हींके आदेशानुसार राजकाज करते और कर्त्तव्य पालनमें त्रुटि न आने देते थे। उनके व्यवहारसे प्रजाको बड़ा लाभ हुआ। अतः उनका सुयश दिगन्तोंमें व्याप्त हो गया।

दुर्योधन धृतराष्ट्रका ज्येष्ट पुत्र था। उसे पाण्डवोंकी कीर्त्ति सुनकर बड़ा क्षोभ हुआ। एक दिन एकान्तमें वह पितासे बोला कि हम लोगोंको आप अयोग्य क्यों समझते हैं? आप पां-

ज्येष्ठ-बन्धु हैं और हम आपके पुत्र हैं, अतः सिंहासनपर हमारा प्रथम अधिकार है। हमारे रहते हुए पाण्डवोंका राज्यपर कोई अधिकार नहीं है।

धृतराष्ट्रने कहा,—पुत्र! पांडु बड़ेही योग्य शासक थे। उनके सामान और होना असम्भव है। उनके न रहनेपर विवश हो यह भार-ग्रहण करना पड़ा। मैं अन्ध हूँ, अतः नामकाही राजा हूं। युधिष्ठिरमें वह सभी गुण पाये जाते हैं जो एक शासकमें होने चाहिये। प्रजा भी उससे सन्तुष्ट रहती है। इसी लिये मैंने उसे शासनाधिकार दे रक्खा है। वह तुमसे कहीं अधिक गुणी और नीतिज्ञ है मैं उसे क्योंकर पदच्युत करूं?

दुर्योधनने असन्तुष्ट हो कहा, यदि यही बात है तो आप युधिष्ठिरको रखिये, मैं आत्महत्या कर प्राण त्याग कर दूंगा। अपना यह अपमान—यह मान भङ्ग मैं नहीं सहन कर सकता।

धृतराष्ट्रने कहा नहीं पुत्र! ऐसा क्यों करोगे? अधीर न हो! यदि तुम शासन ही करना चाहते हो तो वैसी व्यवस्था हो जायगी। समूचा राज्य तुम दोनोंमें बराबर बराबर बांट दिया जायगा, दोनों जन सन्तुष्ट हो राज करो, कभी झगड़ा भी न होगा।

दुर्योधनने कहा—अच्छा ऐसाही सही, परन्तु बँटवारेमें तो विलम्ब न होना चाहिये। जो करना हो वह जल्दी कर डालिये। मैं आपके आदेशानुसारही शासन करूंगा और हस्तिपुरमें ही रहूंगा।

इस प्रकार पिता पुत्रमें मन्त्रणा हुई और पाण्डवोंको हटानेकी युक्तियां होने लगीं। धृतराष्ट्रने युधिष्ठिरको बुलाकर कहा—तुम अपनी माता और भाइयों सहित वाराणावत जाओ और वहीं रहो। कुछ दिन बाद जब मैं बुलाऊं तब फिर यहां चले आना। युधिष्ठिर सरल हृदयके मनुष्य थे, अतः उनकी दुरभिसन्धि न समझ सके और माता तथा भाइयोंको साथ ले यात्रार्थ प्रस्तुत हुए। चलते समय विदुरने उन्हें बर्बर* भाषामें सङ्केत कर सावधान किया और कहा, कि दुर्योधनने तुम्हें लाक्षागृहमें स्थान दे जला देनेका षड्यन्त्र रचा है। और भी एक श्लोक पढ़ उन्होंने कहा, कि मैं एक मनुष्यको तुम्हारे पास भेजूंगा। वह इसी श्लोकका उच्चारण करे तब उसे पहचान लेना और वह जैसा कहे वैसा करना।

युधिष्ठिरके लिये पुरोचन शिल्पीने पहलेहीसे एक राज भवन तय्यार कर रखा था। उसीमें उनको स्थान दिया गया। विदुरकी बात सुन कर पाण्डव सावधान हो गये थे अतः उन्हें रात्रि भर निद्रा न आयी थी। शीघ्रही विदुर-प्रेषित एक मनुष्य आ पहुंचा और उसने एक गुप्त मार्ग तय्यार कर दिया। इस बातकी किसीको कानोंकान खबर भी न हुई।

युधिष्ठिर, माता और बन्धुओंको सहित वहीं रहने लगे।

*युधिष्ठिर और विदुरमें जो संभाषण हुआ था वह ज्योंका त्यों महाभारतमें अंकित है। बर्बर भाषा कैसी और किसकी थी यह आज उसी परसे जाना जा सकता है।

दुर्योधनने पुरोचनको उन पर देख भाल करनेके लिये नियत कर दिया था। उसने अवसर देख उस गृहमें आग लगा देनेकी भी आज्ञा दे रक्खी थी और तदनुसार वह उसी बातमें लगा रहता था। क्षणमात्रके लिये भी वह द्वारसे विलग न होता था। पाण्डवोंकी प्रवृत्ति पर पूरा पूरा ध्यान रखता था, परन्तु उसे दुष्कर्म चरितार्थ करनेका अवसर न मिलता था। युधिष्ठिर हस्तिनापुरकी तरह यहां भी अन्नादि दान करते थे जिन्हें कहीं कुछ न मिलता, वह इनके यहां आते और भोजन कर क्षुधाग्नि शान्त कर जाते। अनेक ब्राह्मणोंको भी प्रति दिन वहां भोजन मिलता था। एक दिन सायङ्कालके समय एक नियादिनी अपने पांच पुत्रों सहित आयी और भिक्षा मांगने लगी। यथा नियम भोजन करा कर वह बिदा कर दी गयी, परन्तु वह रात्रि हो जानेके कारण कहीं न गयी और उसी भवनके एक कोनेमें सो रही। किसीको यह बात विदित न थी। दैवयोगसे भीमको उसी समय विदुरकी सूचना याद आ गयी और उन्होंने माता तथा भाइयोंको उसी गुप्त-पथसे बाहर भेज दिया। इसके बाद अवसर देख कर उन्होंने स्वयं उस लाक्षागृहमें अग्नि लगा दी और आप भी उसी पथसे बाहर निकल गये। नियादिनी तथा उसके पुत्र और पुरोचन, उसी अग्निमें जलकर भस्म हो गये।

माता सहित पांचो पाण्डव वहांसे निकल दक्षिणको ओर रवाना हुए और भागीरथीके तीर पर जा पहुंचे। वहां विदु-

रने एक नौकाका प्रबन्ध कर रक्खा था, उसीमें बैठकर वह उसके उस पार पहुंचे।

इधर लाक्षागृहको अग्निमें लय होते देख कर वारणावतकी प्रजा व्याकुल हो दौड़ पड़ी और उसे शान्त करनेकी चेष्टा करने लगी, परन्तु कोई फल न हुआ। पाण्डवोंकी दुर्गति देख कर सबको बड़ाखेद हुआ और अग्निशान्त होतेही वह उनकी खोज करने लगे अनेकोंका अनुमान था, कि वह जले न होंगे, परन्तु जब उन्हें उस भवनमें सात शव मिले तब उनका सन्देह दूर हो गया और वह शोकसागरमें लीन हो गये। एक शव पुरोचनका था। शेष भिल्लिनी और उसके पुत्रोंके। लोगोंने समझा, कि पुरोचनके अतिरिक्त यह छः शव कुन्ती और पाण्डवोंके ही हैं। यह शोक समाचार हस्तिनापुर भेजा गया। वहां भीष्म और धृतराष्ट्रादि कितनेही लोगोंको खेद और दुर्योधनादि दुर्जनोंको आनन्द हुआ।

पांडवोंने भागीरथी पारकर एक वनमें प्रवेश किया। और विदुरके आदेशानुसार वेश बदल डाला। वनमें पाण्डवों पर हाडिंब राक्षसने, आक्रमण किया, परन्तु भीमने उसे मार डाला। हाडिम्बके हडिम्बा नामक एक बहिन थी। वह भीमका पराक्रम देखकर उनपर मोहित हो गयी और उन्हें विवाह करनेके लिये समझाने लगी कुन्ती और युधिष्ठिरकी आज्ञासे भीमने उसका पाणिग्रहण किया। यथा समय उसने घटोत्कच नामक एक पराक्रमी पुत्रको जन्म दिया।

कौरवोंका अन्याय देख कर भी पाण्डव उनका कुछ न कर सकते थे, अतः अज्ञात रूपसे अपना समय बिताना ही उन्होंने उचित समझा। कुछ कालके उपरान्त वह विप्र वेशमें एक नगरमें पहुंचे और एक ब्राह्मणके यहाँ रहने लगे। वहां भीमने बकासुरका वध कर प्रजाका कष्ट निवारण किया। वहां रहते हुए उन्हें पता चला, कि पांचाल देशमें राजा द्रुपदके यहां द्रौपदीका स्वयंवर होने वाला है। अतः वे वहां गये और अर्जुनने मत्स्यवेध कर द्रौपदीको प्राप्त कर लिया।

कुछही दिनोंमें यह समाचार सर्वत्र फैल गया और लोगों को ज्ञात होगया, कि अभी पाण्डव जीवित हैं। लोकलाजके लिहाजसे धृतराष्ट्रने उन्हें हस्तिनापुर बुला भेजा और उन्हें आधा राज्य दे कर, खाण्डवप्रस्थमें रहनेकी सलाह दी। पाण्डवोंने वनको जला कर वहां इन्द्रप्रस्थ नगर बसाया और वहीं शासन करने लगे।

कुछही दिनोंमें इन्द्रप्रस्थकी सम्पत्ति बढ़ गयी और वह बड़े नगरोंमें गिना जाने लगा। पाण्डवोंके शासनसे उनकी प्रजाभी अत्यन्त प्रसन्न रहती थी। पाण्डवोंका सभा-भवन मय नामक एक प्रसिद्ध शिल्पीने बनाया था और वह शिल्पकलाकी दृष्टिसे अनुपम था। एक दिन वहाँ घूमते हुए देवर्षि नारद आ पहुंचे। उन्होंने युधिष्ठिरका ऐश्वर्य्य देखकर उन्हें राजसूय यज्ञ करनेकी अनुमति दी, ताकि पाण्डव राज अपनेको चक्रवर्ती सिद्ध कर सके।

युधिष्ठिरको उनकी यह बात रुचिकर हुई और उन्होंने यज्ञारम्भ किया। उसी समय जरासन्धका वध किया गया, क्योंकि वह पाण्डवोंके मार्गमें कण्टक रूप था। उस प्रसंगपर अनेकानेक नरेश तरह तरहके उपहार ले इन्द्रप्रस्थमें उपस्थित हुए। युधिष्ठिरने सबको अलग अलग काम बांट दिया था। ब्राह्मणोंके पैर धोनेका काम स्वयं श्रीकृष्णने लिया था। जब राजाओंके सम्मान करनेका अवसर आया तो सर्व प्रथम श्रीकृष्ण को अर्घ्य दिया गया। श्रीकृष्णकी यह पूजा शिशुपालको असह्य हुई। वह भरी सभामें श्रीकृष्णकी निन्दा करने लगा। श्रीकृष्ण बहुत देरतक उसके कुवाक्योंको सहते रहे, अन्तमें सुदर्शन चक्रसे उसका शिर काट डाला। सब लोगोंने महाराज युधिष्ठिर-को चक्रवर्ती स्वीकार किया और युधिष्ठिरने सबोंको सम्मान पूर्वक विदा कर दिया।

सब लोगोंके चले जानेपर भी मय रचित सभाभवन देखनेके लिये दुर्योधन और शकुनि वहाँ ठहर गये। वहाँ अपनी मूर्खताओंके कारण दुर्योधनको कुछ अपमानित होना पड़ा। सभाभावनमें ऐसी कारीगरी थी कि, जलके स्थानमें स्थल और स्थलके स्थानमें जल प्रतीत होता था। स्थलको देख दुर्योधनको जलका भ्रम हो गया और जहां जल था वहां स्थल समझ वह धड़धड़ाता हुआ चला गया। फल यह हुआ, कि वह जल कुण्डमें गिर पड़ा और उसके बहुमूल्य वस्त्र भीज गये। भीमने उसे हाथका सहारा दे बाहर निकाला किन्तु द्रौपदीसे

न रहा गया। वह उस दृश्यको देख हंस पड़ी। दुर्योधन इन सब बातोंको देख, बड़ा लज्जित और विपन्न हुआ। इसके बाद नकुल और सहदेव उसका हाथ पकड़, चारों ओर घुमाने और आश्चर्य-जनक रचनाओंको दिखाने लगे। एक स्थानमें प्रकृत द्वार न था, परन्तु उसे द्वार समझ कर दुर्योधनने प्रवेश करना चाहा अतः दीवारसे टकरा गया। यह देख भीमने व्यङ्ग कर कहा—"धार्तराष्ट्र! (अन्धपुत्र)" जरा देख कर चलिये।

दुर्योधनको भीमका यह व्यंग अच्छा न लगा। वह स्वयं सब बातोंसे अप्रतिभ हो रहा था, परन्तु वश न देख शान्त रहा और मनही मन अपनी ईर्षाको दबा बिदा हो, हस्तिनापुर लौट आया। हस्तिनापुरमें आकर वह उनके सर्वनाशका अयोजन करने लगा। उसने अपने मामा शकुनिसे सलाह की। शकुनि धूर्त और द्यूत क्रीड़ामें परम प्रवीण था। वह जानता था कि पाण्डव द्यूत क्रीड़ामें अवश्य हार जायँगे अतः उसने द्यूत खेलनेकी ही अनुमति दी। पाण्डव भी इस व्यसनसे मुक्त न थे। धृतराष्ट्र को कौरवोंने समझाया और किसी समारम्भके बहाने पाण्डवोंको हस्तिनापुरमें निमन्त्रित किया। पाण्डवोंने द्रौपदी सह वहां उपस्थितहो द्यूत क्रीड़ामें भाग लिया। फलतः वे अपना सर्वस्व खो बैठे और अन्तमें द्रौपदीको भी हार गये। युधिष्ठिरने ज्ञान-शून्य हो अपने तथा भाईयोंके शरीरको भी दांवमें लगा दिया था। दुर्भाग्यवश वह हारतेही चले गये और उनका भाग्यरवि अस्त होगया।

दुर्योधनने द्रौपदीको पकड़ लानेकी आज्ञा दी और तदनुसार

दुःशासन उसे बाल पकड़ सभामें घसीट लाया। दुर्योधनने उसके वस्त्र हरण करनेकी आज्ञा दी। भीष्म द्रोण और धृत-राष्ट्रादि वयोवृद्ध मनुष्योंने भी शिर नीचा कर दिया, परन्तु इस अनुचित कार्य्यका विरोध न किया। द्रौपदीने दुःखित हो सबकी ओर देखा, परन्तु किसीने सहायता न की। वह सर्व शक्तिमान परमात्माका ध्यान करने लगी। अतः परमात्माकी दयासे उसके चीरको खींचते खींचते सब थक थक गये। पर उसे विवस्त्रा न कर सके।

इस घटनासे बड़ी हलचल मची। अन्तमें धृतराष्ट्रने लज्जित हो, द्रौपदी और पाण्डवोंको मुक्त कर दिया और अन्तमें यह स्थिर हुआ कि इस हारके बदले युधिष्ठिर आदि बारह वर्ष वनवास तथा एक वर्ष अज्ञात वास करें। उन्होंने अपनी वृद्धा माता तथा अन्याय स्त्रियोंको विदुरके यहां छोड़ दिया और स्वयं द्रौपदीसह वन जानेको तय्यार हो गये।

नगरनिवासियोंको यह काम बड़ा बुरा लगा। वह दुर्योध-नकी निन्दा करने लगे। सैकड़ों लोग पाण्डवोंको बिदा करने गये और धौम्य ऋषि जो कि उनके पुरोहित थे, अन्त तक उनके साथ रहे। उन्होंने कितनाही समय द्वैत और काम्य वनमें व्यतीत किया; फिर भारतके अन्य प्रान्तोंमें भ्रमण करते रहे। वनमें भी अनेकानेक ब्राह्मण युधिष्ठरके साथ थे। पांचो भाई उनके लिये फल फूल और कन्दमूल जुटा लाते थे। दिन

प्रतिदिन उनके साथियोंकी संख्या बढ़ती गयी और नये नये ऋषि मुनि तथा ब्राह्मण उनके पास आते गये। युधिष्ठिर उन्हें देख बड़े चिन्तातुर हुए, कि सबका निर्वाह कैसे होगा। धौम्य ऋषिने उन्हें सूर्य्यदेवकी आराधना करनेका आदेश दिया। युधिष्ठिरने ऐसाही कर उन्हें प्रसन्न किया और उन्होंने उन्हें एक अक्षय-पात्र प्रदान किया। अक्षयपात्रके प्रतापसे सबको षड्रस भोजन मिलने लगा और उनकी चिन्ता दूर हो गयी।

एक दिन दुर्योधनकी बात सुन दुर्वासा ऋषि पाण्डवोंको शाप देने गये, परन्तु पाण्डवोंने उन्हें शिष्यों सहित सन्तुष्ट किया। दुर्वासाको उलटा दुर्योधन पर क्रोध आया और उन्होंने उसेही शाप दे दिया। "खोदे सो गिरे" यह कहावत तत्काल चरितार्थ हो गयी।

एक दिन उनके आश्रममें किर्मीर राक्षस आ उत्पात करने लगा, किन्तु पराक्रमी भीमने उसे मार डाला। अर्जुनने परिश्रम कर अनेक प्रकारके शस्त्रास्त्र प्राप्त किये और युद्धकलामें निपुणता प्राप्त की। इन्द्रकील शिखरसे फिर वह द्वैतवनमें लौट आये। यहां उनके दुःख परिहारार्थ लोमस ऋषिने उन्हें नलाख्यान सुनाया। बृहदश्वने अनेक इतिहास सुनाये और अक्ष तथा अश्व-हृदय नामक विद्याओंकी शिक्षा दी। अक्षविद्याके ज्ञानसे द्यूत और अश्वहृदय विद्यासे युद्धमें विजय होती थी। पुलस्त्य ऋषिने तीर्थोंका वर्णन और उनकी महिमा कह सुनायी। इसके बाद उन्होंने लोमश ऋषिके साथ तीर्थाटन किया। उस समय

लोमशने उन्हें अगस्त्य इल्वलवध, वृत्रासुर वध, ऋष्यशृंग, यम-दग्नि, परशुराम महत्व, श्येनकपोतीय, अष्टावक्र, और यवक्रित आदिका इतिहास सुनाया था। महेन्द्राचल, कैलासगिरि गन्ध-मादन इत्यादि स्थानोंमें विचरण करते हुए वह नारायणाश्रम पहुंचे। वहां भीमने जटासुर नामक राक्षसका वध किया वहीं से वह फिर गन्धमादनपर गये। वहां कुवेरके सेनापति मणि-मानसे युद्ध हुआ,और भीमने उसे मार डाला। एक दिन उन्हें अज गरने ग्रास कर लिया। वह अजगर वास्तवमें राजा नहुप था और महर्षि अगस्त्यके शापसे उसकी यह दशा हो गयी थी। युधि-ष्ठिरने उसके प्रश्नोंका यथोचित उत्तर दिया तब उसने भीमको छोड़ दिया और साथही स्वयं भी मुक्त हो गया (देखो नहुष चरित्र) इसके बाद मार्कण्डेयसे भेंट हुई। उन्होंने मत्स्यो-पाख्यान, मण्डूकोपाख्यान, नहुष, शिवि, इन्द्रद्युम्न, धुन्धुमार स्कन्दोत्पत्ति, केशी पराभव, महिषासुर वध इत्यादिका इति-हास कह सुनाया। इसके बाद वह ऋषिगण अपने अपने आश्र-ममें चले गये और युधिष्ठिर द्रौपदी और भाइयों सहित अरण्य वास करने लगे।

एक दिन एक ब्राह्मणकी अरणि (अग्नि उत्पन्न करनेवाला काष्ट) कोई हरण कर ले गया। ब्राह्मण दुःखित हो युधिष्ठिरके पास गया और उनसे वह ला देनेकी प्रार्थना करने लगा। युधिष्ठिरने उसे आसन दे कर बैठाया और भीमको ला देनेकी आज्ञा दी। भीम अरणि चुरानेवालेकी खोजमें चारों ओर भटकने लगे, परन्तु

कहीं उसका पता न लगा। उन्हें तृषा बड़े वेगसे लग रही थी अतः किसी जलाशयकी खोज करने लगे। कुछही देरमें उन्हें एक सरोवर दिखायी दिया और वह आतुर हो उसके पास पहुंचे। सरोवरका जल बड़ाही निर्म्मल और शीतल था। हस्तपाद प्रक्षालन कर ज्योंहीं वह जलपानके लिये उद्यत हुए, त्योंहीं एक वृक्षपरसे एक यक्षने कहा—सावधान! मेरे प्रश्नका उत्तर दिये बिना जलपान कर लेगा तो तत्काल मृत्यु हो जायगी।

भीम तृषासे व्याकुल हो रहे थे अतः उसकी बातपर ध्यान न दे जल पी लिया। पीनेके साथही वह चेष्टा रहित हो भूमि पर गिर पड़े और उन्हें अपने तनोबदनकी सुधि न रही। जब भीमको लौटनेमें विलम्ब हुआ तब युधिष्ठिरने क्रमशः अर्जुन, नकुल और सहदेवको भेजा। दैवयोगसे उनकी भी वही दशा हुई। जब कोई न लौटा तब विस्मित हो स्वयं युधिष्ठिर उन की खोजमें निकल पड़े। जब वह उसी सरोवरके पास पहुंचे, तो वहां चारों भाइयोंको अचेत दशामें पाया। उन्हें देख वह बड़ी चिन्तामें पड़ गये और कुछ भी स्थिर न कर सके। वह भी तृषातुर हो रहे थे अतः जलपान कर शान्ति होनेका विचार किया। ज्योंहीं जलपान करने चले, त्योंहीं उस यक्षने पूर्ववत् शब्दोच्चार किया। युधिष्ठिरने अञ्जलिका जल वहीं फेंक दिया और बोले—कहो, तुम्हारा क्या प्रश्न है? मैं यथामति उत्तर अवश्य दूंगा।

यक्षने एकके बाद एक अनेक प्रश्न किये और युधिष्ठिरने

उनका यथोचित उत्तर दिया। अन्तमें वह सन्तुष्ट हो बोला, कि मैं धर्म्मराज हूं। लोग मुझेही यमदेव कहते हैं। तुम्हारे साथ सम्भाषण करनेके लियेही, मैंने यह वेश धारण किया है। मैंनेही उस ब्राह्मणकी अरणि हरण कर तुम्हारे भाईयोंकी यह गति की है। अब मैं प्रसन्न हूं, इन चारोंमें तुम जिसे कहो उसे सजीवन कर दूं।

यमराजकी यह बात सुन युधिष्ठिर बड़ी चिन्तामें पड़ गये। चारो भाई उन्हें समान ही प्रिय थे। कुछ देरतक निरुत्तर रहे, फिर बोले—मेरी दो मातायें थीं—कुन्ती और माद्री। कुन्तीका ज्येष्ठ पुत्र-मैं जीवित हूँ, अब आप माद्रीके ज्येष्ठ पुत्र नकुलको सजीव कर दीजिये, ताकी उनकी भी आत्माको दुःख न हो।

युधिष्ठिरकी यह बात सुन यमराज बड़े ही प्रसन्न हुए। वह केवल उनके विचारोंको जानना चाहते थे। युधिष्ठिरके अन्तःकरणका पता लगानेके लिये ही उन्होंने उपरोक्त प्रश्न किया था। जब युधिष्ठिरने उसका विचार पूर्ण और उचितही उत्तर दिया, तब वह प्रसन्न हो उठे और उनके चारों भाइयोंको सजीवन कर दिया। इसके बाद वह ब्राह्मणको अरणि दे, अन्तर्धान हो गये। युधिष्ठिर प्रसन्न हो भाइयों सहित आश्रममें चले गये और उस ब्राह्मणको उसकी अरणि दे विदा किया।

अब बारह वर्ष व्यतीत हो गये और तेरहवां वर्ष आरम्भ हुआ तब वह अज्ञात वासके लिये आयोजन करने लगे। उन्होंने स्वयं पुरोहित धौम्य ऋषिको द्रुपदके यहां भेज दिया और

आप वेश बदल कर राजा विराटकी राजधानीमें पहुंचे। उन्होंने अपने शस्त्रास्त्र जङ्गलमें छिपा दिये और अपने अपने नाम बदल कर राजा विराटकी नौकरी करली। प्रथम युधिष्ठिर गये और बोले, कि मैं अक्षविद्यामें प्रवीण हूं। मेरा नाम कङ्क है। मैं पाण्डवोंके यहां रहता था, परन्तु वह वनको गये तबसे निराश्रित हो गया हूं। विराटने उन्हें सानन्द स्थान दिया। राजकाजसे निवृत्त हो बहुधा वह उनके साथ अक्षक्रीड़ा कर जी बहलाया करते थे। इसी प्रकार अर्जुन, भीम, नकुल, और सहदेव भी वहाँ नाम बदलकर रहने और विराटकी सेवा करने लगे। द्रौपदी भी रनवासमें पहुंच कर सैरिन्ध्री नाम धारणकर रानीकी दासी बन गयी और रहने लगी।

पाण्डवोंने विराटके कितनेही ऐसे कठिन कार्य्य किये, कि लोगोंको ज्ञात हो गया, कि यह कोई सामान्य पुरुष नहीं हैं। जब एक वर्ष पूरा हो गया, तब उन्होंने अपना प्रकृत परिचय दे सबको आश्चर्य्यमें डाल दिया। विराटने स्वकन्याका विवाह अर्जुनके पुत्र अभिमन्युके साथ कर सम्बन्ध स्थापित कर लिया और उन्हें सब प्रकारकी सहायता देने लगे।

पाण्डवोंने भावी कर्त्तव्य स्थिर करनेके लिये श्रीकृष्णादिको बुलाकर सलाह की। विराटके पुरोहितको दूत बनाकर हस्तिनापुर भेजा और अपना राज्य लौटा देनेकी प्रार्थना की। कौरवोंने उनकी प्रार्थनापर ध्यान न दिया और दूत निराश हो लौट आया। अब युधिष्ठिरादि युद्धके लिये तय्यारी करने लगे।

स्वार्थपर धृतराष्ट्रने सञ्जयको युधिष्ठिरके पास भेजा और कहलाया कि—युधिष्ठिर! तुम धर्म्मनिष्ट हो अतः शान्त रहो। युद्धार्थ प्रस्तुत होनेका विचार न करो। दुर्योधन यदि तुम्हें राज्य नहीं देता तो भिक्षावृत्तिपर निर्वाह करो, परन्तु तेरहवर्ष की कठिन तपस्या और कीर्त्तिको युद्धकर नष्ट न करो। यह शरीर क्षण भङ्गुर है अतः अभिमान वश विषयोंमें लिप्त होनेकी इच्छा न करो। उचित है, कि तुम आजीवन तप करो और अक्षय सुख भोग करनेका उद्योग करो।"

धृतराष्ट्रका यह अन्याय और स्वार्थपूर्ण उपदेश एवम् सन्देश सुन सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। सञ्जय और उपस्थित जन समुदायमें धर्म्माधर्म्मपर बड़ा वादाविवाद हुआ श्रीकृष्ण ने कहा—"हे सञ्जय! कौरवोंने पाण्डवोंके साथ बड़ाही अन्याय किया है, अतः उनका विनाश होना ही उचित है। आज पर्य्यन्त पाण्डवोंने क्षमा शीलतासे काम लिया, परन्तु अब युद्धके अतिरिक्त कोई उपाय नहीं है। यदि कौरव अब भी पाण्डवोंका राज्य लौटा दें तो युद्ध टल सकता है।"

इसके बाद युधिष्ठिरने कातर हो कहा—"सञ्जय अर्ध राज्य नहीं तो नहीं सही, हम पांच भाइयोंको पांच ग्राम ही दे दो, हम सन्तुष्ट हो जायँगे। कुलका नाश न करो।"

सञ्जय यह सब बातें सुन हस्तिनापुर लौट गये और दोनों ओरसे युद्धकी तय्यारियां होने लगीं। दुर्योधनने अन्तिम प्रस्ताव भी स्वीकार न किया, फिर भी युधिष्ठिरने सन्धिकी चेष्टा

करना श्रेयस्कर समझा। आर्य्यावर्त्तको सर्वनाशसे बचानेके लिये स्वयं श्रीकृष्णने दूत कार्य अङ्गीकार किया। वे रथारूढ हो हस्तिनापुर गये और धृतराष्ट्रकी सभामें उपस्थित हुए। शान्ति रक्षाके लिये जो कुछ भी कहा जा सकता था, उन्होंने कहा और सन्धिके लिये चेष्टा की, परन्तु दुराग्रही दुर्योधनने अपना हठ न छोड़ा। वह पाण्डवोंको सुईकी नोकके बराबर भूमि भी देनेको तय्यार न था। श्रीकृष्ण निराश हो लौट आये और युधिष्ठिरको सारा हाल कह सुनाया। इसके बाद युद्ध होना अनिवार्य्य हो गया।

दोनों ओरकी सेनायें कुरुक्षेत्रमें शिविर डालकर युद्धके लिये तय्यार हो गयीं। युधिष्ठिरने अनन्तविजयी नामक शङ्ख और महेन्द्र नामक धनुष धारण किया। इनका रथ हाथी दाँतका था और उसपर ध्वजाके स्थानमें सुवर्णका चन्द्र तारा गणों सहित सुशोभित हो रहा था। युधिष्ठिरने रणक्षेत्रमें पहुँच शङ्खनाद किया और सबको सावधानकर घोषणा की, कि अब भी कौरवोंका पक्ष छोड़, जो मेरे पक्षमें आना चाहें, वह आ सकते हैं, मैं उनको अपने दलमें मिला लूंगा।"

इसके बाद युद्धारम्भ होनेको ही था, कि युधिष्ठिरने अपने हथियार रख दिये और रथसे उतरकर कौरवोंकी सेनाकी ओर पैदल ही चले। सबको यह देख बड़ी चिन्ता हुई और श्रीकृष्ण तथा उनके चारों भाई भी उनके पीछे दौड़ पड़े। कौरवोंकी सेनाको चीरते हुए युधिष्ठिर भीष्मपितामहके पास

पहुंचे और उनके चरण स्पर्श कर बोले—हे वीर शिरोमणि! मैं आप की आज्ञा मागने मांगने आया हूं, युद्धके लिये मुझे अनुमति और आशिर्वाद दीजिये।" इसी प्रकार वह द्रोणाचार्य्य, कृपाचार्य्य और मामा शल्यके पास गये और उनकी आज्ञा एवम् आशिर्वाद मांगा। सबोंनेही प्रसन्न होकर उन्हें आशीर्वाद दिया और कहा, कि हमलोग विवश हैं। मनुष्य अर्थका दास है। हमें कौरवोंने दासत्वमें बांध रक्खा है, अन्यथा हम आपसे युद्ध न करते। आप हमारी सहायताके अतिरिक्त जो चाहे सो मांग सकते हैं।"

युधिष्ठिरने कहा,-मुझे केवल आपलोगोंका आशिर्बाद चाहिये और कुछ नहीं। सबोंने प्रसन्न होकर कहा "तुम्हारी जय हो"। युधिष्ठिर यह आशिर्वाद ले लौट आये। उनकी यह शिष्टता देख लोग बड़े प्रसन्न हुए। यहां तक कि धृतराष्ट्रका युयुत्सु नामक एक पुत्र दुर्योधनका पक्ष छोड़कर उनके दलमें आ मिला।

युधिष्ठिरने अपनी सेनाका आधिपत्य धृष्टद्युम्नको दिया और कौरवोंने भीष्म पितामहको अपना अधिनायक बनाया। युद्धके बाजे बज उठे और दोनों दलोंमें घमासान युद्ध होने लगा। पाण्डव कौरवों पर और कौरव पाण्डवोंपर टूट पड़े। वीरोंके सिंहनादसे आकाशमण्डल गूंज उठा। भीष्मने नव दिन रीत्यनुसार युद्ध किया और दसवें दिन घायल हो, रथसे गिर पड़े। उनके बाद द्रोणाचार्य्य सेनापति हुए। द्रोणाचार्य्यने पांच दिवस महाभयङ्कर युद्ध किया। इसी बीचमें

एक दिन अर्जुनकी अनुपस्थितिमें वीर अभिमन्यु मारे गये। अर्जुनको अपने प्रिय पुत्रकी मृत्युका समाचार सुन बड़ा क्षोभ हुआ। उन्होंने अस्त्र रख दिये और कहा—अब मैं राज्य लेकर क्या करूँगा!

अर्जुनकी व्याकुलता देखकर सब लोग विकल हो गये। व्यासने आकर उन्हें सान्त्वना दी और पौरव, शिवि, शशबिन्दु, दाशरथी, राम, दिलीप, अम्बरीष, भरत, पृथु, मान्धाता, भगीरथ इत्यादिका इतिहास कह सुनाया। वह बोले—यह सब बड़े पराक्रमी और प्रतापी थे, सबोंने धैर्य्य पूर्वक कठिनाइयोंका सामना किया था, परन्तु अन्तमें कोई न रहे। उन्हें भी एक न एक दिन काल कवलित होना पड़ा। संसारमें मृत्यु अनिवार्य्य है अतः शोक करना व्यर्थ है। श्रीकृष्णने भी उन्हें आश्वासन दिया और अनेक प्रकारका उपदेश दे, पुनः युद्धार्थ प्रस्तुत किया। उन्होंने अर्जुनको उत्तेजित करनेके लिये जो ज्ञान दिया वह मनन करने योग्य है।

युधिष्ठिरने कभी अग्रणी बन युद्धमें विशेष रूपसे भाग नहीं लिया, तथापि एक दो बार उन्होंने अस्त्र धारण कर द्रोण और कर्णादि कौरवोंको संत्रस्त कर दिया था।

द्रोणाचार्य्यने बड़ा ही भयङ्कर युद्ध किया था। युद्धमें उनको परास्त करना कठिन था, अतः श्रीकृष्णने सोचा, कि मोह उत्पन्न करा उनकी शक्तिका ह्रास किया जाय। अश्वत्थामा नामक एक हाथी मार डाला गया और श्रीकृष्णके आग्रहसे

युधिष्ठिरने उच्चस्वरमें द्रोणाचार्य्य के सन्मुख कहा, कि अश्वत्थामा हतो नरो वा कुंजरो वा। जिस समय नरो वाकुंजरो वा यह युधिष्ठिर कह रहे थे, उस समय पाण्डव दलने एक साथ वाद्योंका नाद आरम्भ कर दिया। द्रोणाचार्य्य युधिष्ठिरके मुखसे इतनाही सुन सके, कि अश्वत्थामा मारा गया। उसीक्षण पुत्र शोकसे वह व्याकुल हो उठे। उनके हाथ शिथिल हो गये और धनुष नीचे गिर गया। वह पद्मासन लगाकर वहीं बैठ गये और ईश्वरका ध्यान करने लगे। अवसर देख धृष्टद्युम्नने उनका शिर काट डाला।

अभिमानी कर्णकी अब तक मनकी मनमेंही रही थी। द्रोणाचार्य्यके बाद दुर्योधनने उसे भी सेनापति बना कर अपना रण-कौशल दिखानेका अवसर दिया। कर्णने मकरव्यूहकी रचना कर भीषण युद्ध आरम्भ किया। नकुलकी बड़ी दुर्दशा हुई। एक बार कर्णने अपना धनुष उनके गलेमें डालकर खींच लिया और चाहते तो उन्हें मार भी डालते परन्तु दया आ जानेसे छोड़ दिया। कर्णके शराघातसे पीड़ित हो धर्म्मराज भी मैदान छोड़ भागे। अर्जुनको मार डालनेकी कर्णको बड़ी उत्कण्ठा थी; परन्तु उनसे वश न चलते देख, वह भीमसे युद्ध करने लगा।

अर्जुन यह समाचार पाकर, कि युधिष्ठिर शिविरमें चले गये हैं, वहीं उनके पास पहुंचे और कुशल समाचार पूछा। युधिष्ठिर यह देखकर, कि अर्जुन कर्णको बिना मारेही रण-क्षेत्रसे चला आया है, उन्हें भला बुरा कहने लगे। उस समय

वह व्याकुल हो रहे थे। कर्ण पर उन्हें बड़ा क्रोध आ रहा था। उचित अनुचितका विचार न कर उन्होंने कहा—अर्जुन! कर्णको बिना मारे ही तू चला आया, यह देख मुझे आश्चर्य होता है! यदि तू कर्णको नहीं मार सकता तो यह गाण्डीव क्यों धारण करता है? इसे फेंक दे या किसीको दे दे। व्यर्थही धनुर्धरोंमें तू अपनी गणना करता है।"

धर्मराजके यह शब्द सुनकर अर्जुन असन्तुष्ट हो गये। उन्हें उनकी बातोंमें अपना अपमान दिखायी देने लगा। गाण्डीव धनुष पर उन्हें बड़ा प्रेम था अतः उसकी भी निन्दा उन्हें अच्छी न लगी। उनके नेत्र अरुण हो गये और वह भी कुछ कह बैठे पासही श्रीकृष्ण खड़े थे। उन्होंने अनर्थकी आशङ्कासे अर्जुनका हाथ पकड़ लिया और उन्हे बलाक नामक व्याधा और कौशिक ब्राह्मणका इतिहास सुनाकर शान्त किया। उन्होंने समझाया, कि धर्मराजका हृदय संतप्त था, अतः उनके मुखसे वैसे शब्द निकल गये। वह बड़े भाई हैं, अतः तुम्हें सब कुछ कह सकते हैं, परन्तु तुमने उन्हें उत्तर दिया, यह बेजा किया। वास्तवमें तुम्हीं अपराधी हुए।

श्रीकृष्णकी यह बात सुन अर्जुनका क्रोध जाता रहा और उन्हें अपने कर्त्तव्यका ज्ञान हुआ। तुरन्तही युधिष्ठिरसे उन्होंने क्षमा प्रार्थना की और कर्णको मारनेका प्रण किया। युधिष्ठिरने प्रसन्न हो उन्हें आशिर्वाद दिया और वह युद्धार्थ चले गये। श्रीकृष्ण उपस्थित न होते तो क्षणिक क्रोधके

आवेशमें कोई अनर्थ हो जाता और सम्भव था, कि युद्धके परिणाम पर भी उसका प्रभाव पड़ता। क्रोध वास्तवमें मनुष्यको विचारहीन बना देता है।

इसके बादही अर्जुनने कर्णपर भयङ्कर बाण वर्षा आरम्भ कर दी। दैवदुर्विपाकसे कर्णके रथका पहिया कीचड़में फंस गया और वह रथसे उतर कर उसे निकालनेका उद्योग करने लगा। अर्जुनको यह अच्छा अवसर मिला। उन्होंने गाण्डीव पर एक तीक्ष्ण शर सन्धानकर कर्णपर छोड़ दिया कर्णकी जीवन अवधि समाप्त हो चुकी थी। शर लगतेही उसका शिर धड़ामसे भूमि पर आ गिरा। कर्णके मरतेही युद्ध बन्द हो गया। धर्म्मराजको यह समाचार सुन बड़ा हर्ष हुआ।

दूसरे दिन कर्णका स्थान महारथी शल्यने ग्रहण किया। मद्रराज शल्य युधिष्ठिरके मामा थे, परन्तु वचन बद्ध हो दुर्योधनकी ओरसे लड़ रहे थे। आज स्वयं युधिष्ठिरने उनसे लोहा बजाना स्थिर किया। मामा और भानजेमें बड़ाही भीषण युद्ध हुआ। दोनोंकी वीरता दर्शनीय थी। युधिष्ठिरने आजसे पहले कभी ऐसा विक्रम न दिखाया था। सन्ध्या होते उन्होंने मद्रराजका प्राण हरण कर लिया। आजका युद्धही अन्तिम युद्ध था। सत्रह दिनके युद्धमें दोनों ओरकी बहुतसी सेना मारी जा चुकी थी। धृतराष्ट्रके केवल बारह पुत्र शेष रह गये थे। भीमने ग्यारहको मार डाला। सहदेवने शकुनि और उसके पुत्रका अन्त कर दिया। इसी प्रकार बचे खुचे कौरव वीर और

सैनिक भी पाण्डु दल द्वारा निहत हुए। केवल दुर्योधन जीता बचा और एक सरोवरमें जा छिपा।

कौरवोंके शिविरसे सब स्त्रियां युयुत्सुके साथ हस्तिनापुर भेज दी गयीं। वयोवृद्ध धृतराष्ट्रको युद्धका परिणाम सुन बड़ा खेद हुआ। पाण्डव दुर्योधनकी तलाश कर रहे थे। धीवरोंके एक दलने आकर उन्हें सूचना दी, कि दुर्योधन तालाबके अन्दर एक स्तम्भमें छिप रहे हैं। पाण्डव गण श्रीकृष्ण सहित वहीं पहुंचे और दुर्योधनको युद्धके लिये ललकारा। युधिष्ठिरने कहा, दुर्योधन! इतने लोगोंका संहार करा अब तू यहां क्यों छिपा है? तुझे लज्जित होना चाहिये। क्षत्रिय होकर युद्धार्थ प्रस्तुत न होना अनुचित है। बाहर निकल कर युद्ध कर जय पराजय ईश्वराधीन है।

दुर्योधनने कहा—अब मुझे राज्य न चाहिये। मेरे अगणित बन्धु मित्र और आत्मीय जनोंका विनाश हो चुका अतः राज्य मेरे किस काम आयगा? मैं इच्छा करूं तो अब भी तुम्हें पराजित कर सकता हूं, परन्तु आज न भीष्म हैं न द्रोण हैं न कर्ण। अब विजयी होना न होना बराबर है अतः तुम राज्य करो, मैं युद्ध न करूंगा। मेरा पीछा छोड़ दो, अब वल्कल पहन तपस्या करूंगा-अपने कर्मका फल भोग करूंगा।

युधिष्ठिरने कहा—दुर्योधन! अब दया प्रार्थना व्यर्थ है। पहलेकी बातें याद कर और युद्धार्थ प्रस्तुत हो। तू जीवित रहेगा तो कभी न कभी उत्पात करेगा। तेरी बातोंपर हम विश्वास नहीं कर सकते।

दुर्योधनने इन बातोंका कोई उत्तर न दिया और कर्त्तव्य स्थिर करने लगा। इतनेहीमें भीमने गरजकर कहा—अरे अध-र्मी, बाहर निकल। अब तेरा प्राण नहीं बच सकता। न निकलना हो तो कह दे, हम कोई दूसरा उपाय करें।

दुर्योधन भीमकी यह गर्जना सुन कर बाहर निकल आया। वाक्य प्रहार सहन करनेकी उसमें क्षमता न थी। भीमने फिर ललकारा और उत्तेजित किया। फलतः उन दोनोंमें गदायुद्ध ठहर गया। दोनोंमें बड़ा भीषण युद्ध हुआ दुर्योधनकी मारसे भीमका कवच टूट गया और वह व्याकुल हो उठे। अन्तमें नियमको तोड़कर भीमने दुर्योधनकी जंघापर प्रहार किया। गदा लगतेही उसके पैरकी अस्थियाँ चूर्ण हो गयीं और वह वहीं गिर पड़ा। मरते समय युधिष्ठिरने उसे धैर्य्य दिया और समवेदना प्रकट की। दुर्योधनने कहा—मैंने तुम्हारे साथ अन्याय किया है, परन्तु प्रजाको किसी प्रकारका कष्ट नहीं दिया। परमात्मा मुझे इस सुकृत्यका फल अवश्य देगा।"

इसके बाद ही दुर्योधनके प्राण पखेरू उसका देह-पिञ्जर छोड़ कर उड़ गये। सबोंने आश्चर्य्यके साथ देखा, कि उसके मृत शरीरपर आकाशसे पुष्प वृष्टि हो रही है और गन्धर्व समुदाय गान कर रहा है।

इस प्रकार पाण्डवोंकी विजय हुई। सब लोगोंने शङ्खनाद कर हर्ष ध्वनि की और युधिष्ठिरकी जय मनायी। युधिष्ठिरने वहाँसे लौटकर आत्मीय जनोंकी उत्तर क्रिया की और गङ्गाके

तटपर एक मास निवास किया। अब युधिष्ठिरने अपनी चारों ओर अन्धकार पाया। आज न भीष्म थे, न द्रोण, न वे महारथी। आत्मीय जनोंके स्मरणसे उनके हृदयमें शोक सागर उमड़ पड़ा। उन्होंने कहा, कि मैं अब राज्य न करूंगा और किसी वनमें जा कर अपना जीवन व्यतीत करूंगा। अनेक ऋषि मुनियोंने उन्हें समझाया और शान्त किया। व्यासने उन्हें भीष्म पितामहके पास जानेका आदेश दिया। उन्होंने कहा, कि वह तुम्हें राज नीति बतलावेंगे और तुम्हारा विषाद दूर कर देंगे।

महात्मा भीष्म अभी रणक्षेत्रमें शरशय्यापर कालयापन कर रहे थे। रथारूढ़ हो श्रीकृष्ण और भाइयों सहित युधिष्ठिर उनके पास गये। भीष्मने धर्म्मराजको राजनीतिक रहस्य बतलाये और उनका खेद दूर किया। उत्तरायण होनेपर भीष्म परलोक वासी हुए। युधिष्ठिरने उनका भी यथा विधि अग्नि संस्कार किया।

युधिष्ठिरको श्रीकृष्णने कहा,—सबकी इच्छा है, कि आप ही सिंहासनारूढ़ हों। लोकमत भी: ऐसाही है, अतः हस्तिनापुर चलिये और शासनभार स्वीकार करिये। ऋषि मुनियोंके उपदेश, भीष्मकी शिक्षा और कृष्णके उद्योगसे अब उनके शोक का शमन हो चुका था अतः वे चलनेको प्रस्तुत हुए।

धर्म्मराज रथारूढ़ हुए। भीम उनके सारथी बने। अर्जुन ने छत्र उठाया और नकुल तथा सहदेवने चमर लिये। इसी ठाठसे वह हस्तिनापुर पहुँचे। जनताने उनका बड़ी धूम धामसे स्वागत किया। यथाविधि युधिष्ठिरका अभिषेक

हुआ और वह सिंहासनारूढ़ हो प्रजाका पालन-पोषण करने लगे। अर्जुन सेनापति बनाये गये और भीमको युवराजका पद मिला। उनकी सुनीति और शासनसे प्रजाको बड़ा सुख प्राप्त हुआ और वह उन्हें कोटि कोटि आशीर्वाद देने लगी।

यह सब होने पर भी युधिष्ठिरका चित शान्त न हुआ। वह सर्वदा उदास बने रहते। वह कहते, कि मेरे पीछे समराग्निमें इतने धन जनकी आहुति होगयी, लक्षावधि मनुष्योंका संहार हुआ और देशका समस्त बल और प्रताप विलुप्त हो गया! मैं इस दोषसे कब मुक्त हूंगा?

भीष्म पितामहने युधिष्ठिरसे अश्वमेध यज्ञ करनेको कहा था। श्रीकृष्णने भी उनका ध्यान बटानेके उद्देश्यसे उस बातका समर्थन किया। युधिष्ठिरने उनकी बात मान ली और उनकी आज्ञासे शेष चारो पाण्डव यज्ञका आयोजन करनेमें संलग्न हुए। ठीक समय पर पुरोहितोंने उन्हें दीक्षित किया। दिग्विजयके लिये घोड़ा छोड़ा गया और अर्जुन उसकी रक्षाके लिये चले। कितनेही राजाओंने उसे बांधा, परन्तु वे सब परास्त कर दिये गये। निर्दिष्ट समय पर सब राजागण यज्ञमें सम्मिलित हुए और सारा कार्य्य निर्विघ्न समाप्त हुआ: युधिष्ठिर चक्रवर्ती राजा स्वीकार किये गये।

इस प्रकार कीर्ति और पुण्य सम्पादनकर धर्म्मराज धर्म्मानुसार राज्य करने लगे। कुछ कालके उपरान्त धृतराष्ट्र, गान्धारी विदुर और सञ्जय वनको चले गये। कुन्ती भी उन्हींके साथ

गयाँ । युधिष्ठिरने सबको दान-पुण्य करनेके लिये बहुत साधन दिया । वनमें विदुरने योगद्वारा अपना शरीर त्याग दिया और धृतराष्ट्रादि वनमें आग लग जानेसे वहीं भस्मसात् हो गये। उधर द्वारिकामें श्रीकृष्णका भी शरीरान्त हो गया। यह सब समाचार सुन युधिष्ठिरको वैराग्य आ गया। उन्होंने राज्यभार अभिमन्युके पुत्र परीक्षितको सौंपकर वनकी राह ली। द्रौपदी और चारों भाइयोंने भी उनका साथ दिया।

यत्र तत्र विचरण करते हुए वह सब हिमालय पहुँचे। हिमालयमें क्रमशः द्रौपदी, सहदेव, नकुल, अर्जुन और फिर भीम सद्गतिको प्राप्त हुए। युधिष्ठिरके लिये विमान आया। परन्तु युधिष्ठिरने एक कुत्तेको देखकर कहा, पहले यह बैठे तब मैं बैठूंगा। उनका यह भाव देख, यमदेव प्रसन्न हो गये और कुत्तेका वेश त्याग दिया। उन्होंने युधिष्ठिरकी अन्तिम परीक्षा लेनेके लिये कुत्तेका रूप धारण किया था। युधिष्ठिरको उन्होंने अपना प्रकृत रूप और स्वर्गका दृश्य दिखाया। युधिष्ठिरने दुर्योधनादिक कौरवोंको स्वर्गमें देखा परन्तु द्रौपदी और भाइयोंको न देखकर पूछा, कि वे सब कहां हैं?

यमराजने उत्तर दिया, कि उनकी दूसरीही गति हुई है, उन्हें स्वर्गमें स्थान नहीं दिया गया। यह सुन युधिष्ठिरको आश्चर्य और दुःख हुआ। उन्होंने कहा—मैं भी स्वर्ग न जाऊँगा। जहां वह सब हों वहीं मुझे भी ले चलो। उनके सहवासमें मैं नरकको भी स्वर्ग समझूंगा।

युधिष्ठिरकी यह बात सुन यमराजने उन्हें नरक भेज दिया। नरकका दृश्य देख वह जरा भी विचलित न हुए, बल्कि द्रौपदी और भाइयोंको वहां देखकर उन्होंने वहीं रहना स्वीकार किया। उनका यह स्वार्थत्याग और बन्धु प्रेम देख कर देवतागण प्रसन्न हो उठे। यमराजने उन्हें अधिक समय भ्रममें न रक्खा! उसी क्षण युधिष्ठिर द्रौपदी तथा भाइयों सहित अपनेको स्वर्गमें पाया। यमराजने स्पष्टीकरण करते हुए बतलाया, कि यह सब माया आपकी परीक्षा लेनेके उद्देश्यसेही की गयी थी।

युधिष्ठिरने एकाकी स्वर्गमें रहनेकी अपेक्षा स्वजनोंके साथ नरकमें रहना श्रेष्ठ समझा। यहां उनके बन्धु-प्रेमकी परमावधि हो गयी। वास्तवमें भाई हो तो ऐसे हों। पारस्परिक प्रेम और ऐक्यके समान दूसरा सुख नहीं है। युधिष्ठिरकी आज्ञा, उनके भाइयोंने सदासर्वदा शिरोधार्य्यकी थी। सुख दुःखमें एक साथ रहना, क्षमाशील होना, समानता रखनी, प्रजाको सुख देना इत्यादि सद्‌गुणोंसे जो लाभ होता है, वह हमें युधिष्ठिरकी जीवनीसे ज्ञात होता है। उन्होंने चालीस वर्ष पर्य्यन्त इन्द्रप्रस्थमें और युद्धके बाद छत्तीस वर्ष पर्य्यन्त हस्तिनापुरमें राज्य किया। युद्धके समय उनकी अवस्था ८० के लगभग थी। यह देखनेसे ज्ञात होता है, कि उन्होंने १२५ वर्षसे भी अधिक की अवस्थामें स्वर्गारोहण किया था। कलियुगमें सर्वप्रथम उन्हींने अपना संवत चलाया था। वह ३०४४ वर्ष चला और उसके बाद विक्रम संवत प्रचलित हुआ। अब भी भारतके दक्षिण

भागमें उसका प्रचार है। युधिष्ठिर, गो ब्राह्मण प्रतिपाल और याचकोंके लिये कल्पद्रुम थे। उनका यश दिगदिगन्तोंमें व्याप्त है। आज भी हम लोग उन्हें धर्म्मिष्ट और साधुपुरुषकी तरह स्मरण करते हैं, और उनके प्रति श्रद्धा एवम् पूज्य भाव प्रकट करते हैं।

धनुर्धर अर्जुन ।

यह विश्वविख्यात वीर नर चन्द्रवंशी राजा पाण्डु के पुत्र थे। कुन्तीके तीन पुत्रोंमें यह सबसे छोटे थे। उनका जन्म दुर्वासाके मन्त्र प्रभाव और इन्द्रके अंशसे द्वापरयुग में हुआ था। अर्जुन और श्रीकृष्ण यह दोनों नर नारायणके अवतार गिने जाते हैं। अर्जुनका वर्ण श्याम, आकृति दीर्घ स्कन्ध उच्च, वक्षस्थल विशाल और नेत्र कमल समान थे। द्रोणाचार्य्यके निकट धनुर्विद्याका ज्ञान प्राप्तकर उन्होंने उनकी प्रीति सम्पादनकी थी। * गुरुने प्रसन्न हो उन्हें ब्रह्मशिरो

* द्रोणाचार्य्यने एक दिन अपने शिष्योंकी परीक्षा लेनेके उद्देश्यसे एक स्थानमें एकत्र किया। उन्होंने एक वृक्षकी चोटी पर एक कृत्रिम पक्षी बैठालकर सबोंसे कहा, कि तुम लोग उसे ताककर तीर मारनेको तय्यार हो जाओ, मैं जब कहूंगा तब तुम्हें उस पक्षीकी आंख फोड़नी पड़ेगी। इसके बाद उन्होंने युधिष्ठिरसे कहा, कि तुम निशाना लगानेको तय्यार रहो, परन्तु जब तक मैं न कहूं बाण न छोड़ना। युधिष्ठिरने कहा—"जो आज्ञा" इसके बाद उन्होंने पूछा, तुम क्या देख रहे हो। युधिष्ठिरने कहा, मैं आपको, अपने भाइयोंको तथा अन्य सबोंको देख रहा हूं। द्रोणाचार्य्यने यह सब उन्हें हटा दिया और दुर्योधन, दुःशासन, कर्ण इत्यादि सबोंसे ऐसाही प्रश्न किया। सबोंने उन्हें वैसाही उत्तर दिया, परन्तु अन्तमें जब अर्जुनसे पूछा, तब उन्होंने कहा, कि मैं तो केवल उस पक्षीकी आंख भर

नामक एक अस्त्र दिया था, जिसमें ब्रह्माण्डको लय करनेकी शक्ति थी। वह सर्व प्रकारकी युद्धकलामें निपुण थे। परन्तु धनुर्विद्या तो उन्हींकी हो गयी थी। वह चतुर, धीर, विजयी और प्रतापी योद्धा थे। स्पष्ट वक्ता होनेपर भी उनका हृदय कोमल था। बड़े भाइयोंका वह बड़ा सम्मान करते थे। वह सत्यवादी, वीर, गोब्राह्मण प्रतिपालक, दृढ़प्रतिज्ञ, शान्त, निन्द्राजित, चालाक, नृत्य और सङ्गीतज्ञ, धर्म्मिष्ट, और नीतिमान थे व्यावहारिक विषयोंका उन्हें पूर्ण ज्ञान था। ईश्वरोपासना इत्यादि नित्यकर्म्म करनेमें वह सदा नियमित रहते थे। बाण चलानेमें वह ऐसे निपुण थे, कि बायें हाथसे भी अचूक निशाना लगाते थे।

द्रोणाचार्य्य पांचालदेशके द्रुपद राजासे अप्रसन्न रहते थे। अतः गुरु दक्षिणामें कौरवोंसे उसे दण्ड देनेको कहा। कौरवोंने द्रुपदसे युद्ध किया, परन्तु पराजित हो लौट आये। यह देखकर अर्जुन गये और उसे बन्दी बनाकर गुरुके पास ले आये। अर्जुनका यह पराक्रम देखकर द्रोणाचार्य्यको बड़ा आनन्द हुआ।

देखता हूं। द्रोणाचार्य्य इस उत्तरसे सन्तुष्ट हुए और उन्हें बाण चलानेकी आज्ञा दी। अर्जुनने तत्काल बाण चलाया और पक्षीकी आंख फोड़कर उसे नीचे गिरा दिया। द्रोणाचार्य्य यह देखकर बड़े प्रसन्न हुए और बोले, कि जब तक चित्त एकाग्र न होगा तब तक कार्य्य ठीक रूपसे न होगा। जिस समय मन एकाग्र हो जायगा, उस समय उस कार्य्यके अतिरिक्त दुनियांकी कोई बात मनमें नहीं आयगी और कार्य्य सिद्धि अवश्य होगी।

धनुर्धर अर्जुन

जिस समय राजा धृतराष्ट्र हस्तिनापुरके सिंहासनको सुशोभित कर रहे थे और युधिष्ठिर युवराज थे, उस समय भी अर्जुनने अनेक प्रसङ्गोंपर वीरता दिखायी थी और सबका प्रेम सम्पादन किया था। इसके बाद जब लाक्षागृहसे बचकर वह वनवास करने लगे तब उन्होंने अङ्गारपर्ण नामक एक गन्धर्वसे युद्धकर उसे पराजित किया। गन्धर्वने उन्हें सूक्ष्म पदार्थ दर्शक-चाक्षुषी-गन्धर्वास्त्र विद्या सिखाई और अर्जुनने उसे अन्यास्त्र विद्या सिखाई। इसके बाद वह द्रौपदीके स्वयम्वरमें गये और मत्स्य वेधकर द्रौपदीको प्राप्त किया। उनकी यह विजय देखकर अनेकोंका हृदय द्वेषाग्निसे जल उठा और उन्होंने झगड़ा मचाया, परन्तु अर्जुनने शस्त्रास्त्र और भीमने एक वृक्ष द्वारा उन्हें परास्त किया।

कुछ कालके उपरान्त जब धृतराष्ट्रने आधा राज्य दे दिया और वह अपने भाइयोंके पास इन्द्रप्रस्थमें रहने लगे, तब एक दिन एक ब्राह्मणने आकर कहा, कि मेरी सवत्स धेनु कोई चुरा ले गया। अर्जुनने उसे धैर्य दिया और स्वयं अपना धनुष बाण लेने गये। दैवयोगसे उनकी दृष्टि युधिष्ठर पर पड़ गयी, जो कि उस समय द्रौपदी सह एकान्त सेवन कर रहे थे। उन्हें देखते ही अर्जुनको अपनी प्रतिज्ञाका स्मरण हो आया। ब्राह्मणकी धेनु तो लाकर उसे दे दी और आप वन जानेको तय्यार हुए।

बात यह थी, कि पांचों भाइयोंने एक दूसरेके अन्तःपुरमें

प्रवेश न करनेकी प्रतिज्ञा की थी। यह भी निश्चय किया था, कि इस प्रतिज्ञाके विपरीत कोई किसीके अन्तःपुरमें चला जायगा और किसीको एकान्त सेवन करते देख लेगा, तो उसे पापका प्रायश्चित करना पड़ेगा। प्रायश्चितमें बारह वर्षका वनवास निश्चित कर रक्खा था। अर्जुन तदनुसार वन जाने को प्रस्तुत हुए। युधिष्ठिरने उनका दोष क्षमा कर दिया और वन जानेके लिये बहुत समझाया। उन्होंने यह भी कहा, कि तुम्हें विवश हो परोकारके लिये उस स्थानमें जाना पड़ा था, अतः तुम दोषी नहीं हो, परन्तु अर्जुनने आग्रह पूर्वक कहा, कि मैं प्रतिज्ञाका अक्षरशः पालन करूंगा। कुछ भी हो, मैं दोषी हूं।

अर्जुन उसी दिन इन्द्रप्रस्थसे निकल पड़े। सर्व प्रथम वह गङ्गाद्वार गये और वहां स्नान किया। वहांसे लौटते समय उ-लूपी नामक गन्धर्वकी कन्यासे भेंट हो गयी। उसका आग्रह देख कर अर्जुनने उसके साथ गन्धर्व विवाह कर लिया। उसके द्वारा उन्हें इरावान नामक पुत्रकी प्राप्ति हुई। इसके बाद उन्होंने बद्रीनाथ, केदारनाथ और हिरण्यशृङ्गकी यात्रा की। वहांसे वह नैमिषारण्य गये और तपोवनकी प्रदक्षिणा की। नैमिषारण्य से अङ्ग और बङ्ग गये और वहांसे दक्षिणको प्रस्थान किया। दक्षिणमें महेन्द्र पर्वत देखा। वहांसे वह मणिपुर गये। मणिपुर के राजाका नाम था चित्रवान। चित्रवानके एक चित्राङ्गी ना-मक सुन्दरी कन्या थी। अर्जुनने उसका पाणिग्रहण किया

और तीनवर्ष वहाँ रहे ॥ चित्राङ्गीके उदरसे बभ्रुवाहन नामका प्रतापी पुत्रका जन्म हुआ और वही चित्रवानके राज्यका उत्तराधिकारी हुआ।

चित्रवानसे विदा हो अर्जुन दक्षिणकी ओर अग्रसर हुए और समुद्रके समीप पहुंचे। वहां सौभद्र, पोलोम, अगस्त्य, कारधम और भारद्वाज यह पांच तीर्थ थे, और वह नारीतीर्थके नामसे विख्यात थे। अर्जुनने देखा, कि उनमें एक भी मनुष्य स्नान करने नहीं जाता! उन्हें बड़ा आश्चर्य्य हुआ और वहांके ऋषियोंसे इसका कारण पूछा। ऋषियोंने बतलाया, कि प्रत्येकमें एक एक मगरी रहती है और उन्हींके भयसे कोई उनमें स्नान नहीं करता। कारण जान कर भी अर्जुन भयभीत न हुए। उन्होंने वहां स्नान करनेका निश्चय किया और सर्वप्रथम सौभद्र तीर्थमें प्रवेश किया। प्रवेश करनेके साथही उन्हें मगरीने पकड़ लिया, परन्तु अर्जुन बड़े पराक्रमी थे, वह स्वयं उसके ग्रास न बने बल्कि उसेही बाहर खींच लाये। बाहर आतेही वह मगरी एक सुन्दर रमणीके वेशमें परिणत होगयी।

अर्जुन यह आश्चर्य्य जनक घटना देखकर बड़े विचारमें पड़ गये और उस रमणीसे उसका परिचय पूछा। उसने अपना परिचय देते हुए बतलाया, कि मैं कुवेर सभाकी एक अप्सरा हूं। मेरा नाम है वर्गा। एक दिन मैं सौरभेया, समीची, बुदबुदा और लता इनचार सखियोंके साथ अरण्यमें गायन गाती हुई विचरण कर रही थीं। वहीं एक ऋषिकुमार रहते थे, परन्तु हम उन्हें न देख

सकीं। वह एकान्तमें अध्ययन कर रहे थे। हमारी क्रीड़ासे उनके अध्ययनमें बाधा पड़ी अतः उन्होंने क्रुद्ध हो कर शाप दिया कि तुम पांचो मगरी हो जाओ। शाप सुन हम कांप उठी और उन्हें वन्दनकर मुक्त होनेका उपाय पूछा। उन्होंने कहा, कि सौ वर्ष व्यतीत होने पर किसी महापुरुषके स्पर्शसे तुम्हारा उद्धार होगा। उसी दिनसे मैं मगरी बन गयी और इस तीर्थमें आ पड़ी। आज आपके स्पर्शसे मेरी मुक्ति हुई। बस, यही मेरी आत्मकथा है। मेरी अन्य चार सखियां इन चार तीर्थोंमें पड़ी हैं, कृपया उनका भी उद्धार करिये। अर्जुनने उसकी यह बात सुनकर प्रत्येक तीर्थमें स्नान किया और उसकी चारों सखियोंका उद्धार किया। सबोंने एकत्र हो अर्जुनकी स्तुतिकी और दिव्य रूप धारण कर अपने लोक चली गयीं। उस दिनसे लोगोंका भय जाता रहा और सब तीर्थोंमें स्नान करने लगे।

वहांसे अर्जुन शिवकाञ्ची और विष्णुकाञ्चीके दर्शन करने गये विष्णुकाञ्चीके बाद वह काम्यवनमें आये। वहां शिवका समाधि स्थान था। अर्जुनको बैठे देखकर शिवको बड़ा क्रोध आया। बातही बात दोनोंमें युद्ध होने लगा। शिवके शराघातसे अर्जुन मूर्च्छित होकर गिर पड़े। उन्हें मूर्च्छित देखकर शिवको दया आ गयी। वह उनका युद्ध-कौशल देख प्रसन्न हो उठे थे, अतः उनकी मूर्च्छा दूर कर कवच और कुण्डल उपहार दिये।

इसके बाद अर्जुन रामेश्वर गये। वहां हनुमानसे भेंट हुई। हनुमानने विस्तार पूर्वक उन्हें रामचरित्र कह सुनाया। एक दिन

उन्होंने हँसकर कहा, कि यदि राम इतने प्रतापी और शक्तिशाली थे तो उन्होंने बाणका सेतु क्यों न रचा? हनुमानने कहा, वह इतना मजबूत नहीं हो सकता था। वह तुरन्तही टूट जाता। अर्जुनने कहा, असंभव! मैं होता तो बाणसेही काम लेता। हनुमानने कहा--अच्छा, तुम बाणसे सेतु बनां दो, मैं उसे तोड़कर दिखादूं। अर्जुनने कहा-स्वीकार है, यदि तुम तोड़ दोगे तो मैं अग्नि प्रवेश कर अपना प्राण दे दूंगा। हनुमानने भी स्वीकार किया, कि यदि मैं न तोड़ सकूंगा तो दासता स्वीकार कर तुम्हारी ध्वजा पर बैठा रहा करूंगा।

इस प्रकार प्रतिज्ञाबद्ध हो अर्जुनने एकयोजनका शर-सेतु तय्यार कर दिया और हनुमानने उसे उछल कूद कर तोड़ भी डाला। अर्जुन यह देख विस्मित हुए और प्रतिज्ञा पालनके लिये चिता तय्यार की। उसी समय वहां ब्राह्मण वेशमें श्रीकृष्ण आ पहुंचे। उन्होंने दोनों जनकी बात सुनी और कहा, कि मुझे तुम्हारी बातों पर विश्वास नहीं होता। कोई साक्षी भी है? साक्षी, कोई न था, अतः फिरसे पुल बांधना और तोड़ना स्थिर हुआ। इस बार पुलके नीचे श्रीकृष्णने सुदर्शन चक्र रख दिया अतः वह हनुमानसे न टूट सका। अब वह अर्जुनकी अधीनता स्वीकार करनेको बाध्य हुए और उनकी ध्वजामें बैठे रहने लगे।

यहांसे अर्जुन द्वारिका गये। द्वारिकामें उन्होंने श्रीकृष्णकी सम्मतिसे बलरामकी इच्छा न होनेपर भी सुभद्राका हरण कर उसका पाणिग्रहण किया। इस समय उन्हें इन्द्रप्रस्थ छोड़े

ग्यारह वर्ष हो चुके थे, अतः एक वर्ष और तीर्थाटन करते रहे। बारह वर्ष व्यीतीत होतेही वह सुभद्रा सहित इन्द्रप्रस्थ गये और भाइयोंसे भेंट की। द्रौपदीने सुभद्राको बहिनकी तरह रक्खा और कभी उससे द्वेष न किया। कुछ कालके उपरान्त सुभद्राने अभिमन्यु और द्रौपदीने श्रुतकर्म्मा नामक पुत्रोंको जन्म दिया।

एक समय ग्रीष्मऋतुमें वह कृष्ण, द्रौपदी, सुभद्रा इत्यादि सहित यमुनाके तट पर वन विहार कर रहे थे। वहीं ब्राह्मण वेशमें अग्निदेवने आकर कहा, कि मैं खाण्डव-वनको भक्षण करना चाहता हूं। साथही यह भी कहा, कि इन्द्र मेरे इस कार्य्यमें बाधा देंगे और सम्भवतः उनसे युद्ध भी करना पड़ेगा। अर्जुनने कहा-तुम ब्राह्मण हो अतः मैं तुम्हारी प्रार्थना अस्वीकार नहीं कर सकता। इन्द्रसे युद्ध भी करनेको मैं प्रस्तुत हूं। मेरे पास अनेक शस्त्रास्त्र हैं परन्तु रथ और उत्तम धनुष नहीं है। यह सुन कर अग्निदेव पाताल गये और वरुणके पाससे गाण्डीव धनुष अक्षय तूणीर तथा विजय रथ ला दिया। उसी रथमें आरूढ़ हो कृष्ण और अर्जुन खाण्डव वन गये। अग्निने अपना कार्य्यारम्भ किया, कि इन्द्र प्रेषित दैत्य,राक्षस, यक्ष और गन्धर्वादि आ आकर बाधा देने लगे। अर्जुनने प्रबल पराक्रमसे सबका संहार किया। मयासुरने क्षमा प्रार्थना की अतः उसे अभय दान दिया। अग्नि देव तृप्त हुए और लज्जित हो इन्द्रने भी क्षमा प्रार्थना की।

जब युधिष्ठिरने राजसूय यज्ञ करना स्थिर किया, तब श्रीकृष्ण ने प्रथम जरासंन्धको पराजित करना श्रेयस्कर बतलाया। उस समय भीम और श्रीकृष्णके साथ अर्जुन भी ब्राह्मण वेशमें जरासन्धके पास गये थे। जरासन्ध और भीमसे युद्ध ठहर चुका था अतः उस प्रसङ्गपर अर्जुनको कोई काम न करना पड़ा और भीमने ही उसे मार डाला।

राजसूय यज्ञके लिये धन और जन दोनो चाहिये। चार भाइयोंने चारों ओर जाना स्थिर किया। अर्जुन उत्तरकी ओर रवाना हुए और उधरके राजाओंको पराजित कर उनसे राजस्व ग्रहण करने लगे। उन्होंने इन्द्रप्रस्थसे निकल कुलिन्द, आनर्त कालकूट, अपरवत्तर और सुमण्डल इन देशोंको विजय किया। इसके बाद वह शाकलद्वीप गये और वहांके प्रतिविन्ध्यनी नामक नरेशको पराजित किया। उसे अपने साथ ले वह प्रागज्योतिष गये। वहांके राजाका नाम था भगदत्त। भगदत्त ने किरात और चीन देशकी सहायता प्राप्तकर, आठ दिनोंतकभीषण युद्ध किया, परन्तु अन्तमें पराजित हुआ और अर्जुनने उससे राजस्वमें विपुल धन-राशि प्राप्त की।

अर्जुन जिसे पराजित करते थे, वही उनका प्रेम सम्पादन करनेके लिये लालायित हो उठता और सैन्य सह उनकी सहायता करनेको प्रस्तुत हो जाता था। दिग्विजयके कार्य्यमें इससे बड़ी सहायता मिली। दिन प्रतिदिन अर्जुनकी सेना बढ़ती ही गयी। भगदत्तको पराजित कर, वह पुनः उत्तरकी ओर आगे

बढ़े और अन्तगिरिको जीतकर, उनसे राजस्व कर वसूल किया वहांका राजा उसके साथ हुआ।

इसके बाद वह उलूक देशके वृहन्त राजके पास गये। वहां कतिपय पहाड़ी राजाओंसे युद्ध हुआ, परन्तु वे सब उनकी आधीनता स्वीकार करनेको बाध्य हुए। बादको सेनाविन्दु वामदेव और सुदामा नामक नरेशोंको पराजित किया। साथही अपर, उलूक, पञ्चगण, देवप्रस्थ प्रभृति देश तथा पौरवेश्वर नामक राजाको भी आधीन किया। पर्वतवासी दस्युराज तथा उत्सव, संकेत सप्तगण इत्यादिके अधीश्वरोंको भी पराजितकर उनसे राजस्व ग्रहण किया। इसके बाद काश्मीर लोहित, त्रिगत और कौकनद देशके नरेशोंको आधीन किया। अभिसार देशके चित्रसेन, उरचापुरके रोगमान, सिंहपुरके चित्रायुध, तथा उत्तर सुह्म और उत्तर चोलके नरेशोंसे भी राजस्व ग्रहण किया। महाशूर वालहीक नरेशको भी वश किया तथा काम्बोज सहित दरद देशके निवासियोंपर विजय प्राप्त की। वहांसे वह ईशानकी ओर अग्रसर हुए और एक दस्युराजको आधीन किया। बादको लोह और परम काम्बोज देशपर विजय प्राप्तकर उत्तरकी ओर ऋषिक नामक देश (रूसिया) के शासकको पराजित कर उससे आठ शुकोदर तथा मयूरगतिवाले कितने ही अश्व प्राप्त किये। वहांसे वह हिमालयकी ओर आये और वहांके नरेशोंसे आधीनता स्वीकार करायी। बादको श्वेत पर्वतका अतिक्रमणकर किंपुरुष देश गये

और वहांके सुन्न पुत्रोंको पराजित किया। हाटक देशपर भी विजय प्राप्तकर, वह मानसरोवर और ऋषि कुल्या नदीकी ओर गये। वहांके गन्धर्व रक्षित देशोंको आधीनकर कितनेही विचित्र वर्ण के अश्व प्राप्त किये। वहांसे वह उत्तरकी ओर हरिवर्ष नामक देशमें गये और वहांके विशाल काय मनुष्योंको पराजित किया। इस प्रकार दिग्विजयकर वह इन्द्रप्रस्थ लौट आये और राजस्यमें पाया हुआ समस्त धन युधिष्ठरके चरणोंपर रख दिया।

यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हुआ। दुर्योधन पाण्डवोंका एश्वर्य न देख सका। उसने युधिष्ठरको कपट द्यूतमें आमन्त्रितकर उनका सर्वस्व हरण कर लिया। पाण्डव तेरह वर्षके लिये वन जाने को बाध्य हुए। अद्वैत वनमें व्याससे भेंट हुई। उन्होंने अर्जुनको तीर्थाटन औरतपस्या करनेकी सलाह दी। अर्जुन उनके आदेशानुसार हिमालय पारकर इन्द्रकील पर्वतपर गये और वहां तप करने लगे। पहला मास पत्ते खाकर विताया। दूसरेमें केवल जलपान करते रहे। तीसरे मासमें धूम्रपान किया और चतुर्थ मासमें वायु भक्षण करघोर तप करने लगे वह केवल पदांगुष्ठके सहारे खड़े रहते और हाथ उठाये ध्यानमें लीन रहते थे।

अर्जुनका यह तीव्र तप देखकर देवताओंका आसन हिल उठा शिवने उनकी परीक्षा लेना स्थिर किया। उन्होंने मूक नामक दैत्यको उनके पास भेजा और वह वाराहका रूप धारणकर

उनको तङ्ग करने लगा। अर्जुनने उसे गाण्डीव धनुषसे मार डाला यह देख शिवने किरात रूप धारणकर उनसे कहा, 'कि तूने मेरे वनमें यह हिंसा क्यों की ? तुझे मेरे साथ युद्ध करना पड़ेगा।

अर्जुनको बाध्य हो युद्धार्थ प्रस्तुत होना पड़ा। उन्होंने अनेक बाण मारे, परन्तु कोई फल न हुआ। अन्तमें वह गाण्डीव से दंडका काम लेने लगे और शिवपर प्रहार करने लगे, परन्तु शिवने उसे ग्रास कर लिया। अर्जुन अब निरस्त्र हो मल्लयुद्ध करने लगे परन्तु जर्जर हो रहे थे अतः मूर्च्छित हो गिर पड़े। शिव उनकी यह दृढ़ता देख प्रसन्न हो उठे और उन्हें सचेतकर साक्षात् दर्शन दिया। अर्जुन महेश्वरको खड़े देख गद्गद कण्ठ से उनकी स्तुति की। शिवने प्रसन्न हो उन्हें पाशुपत नामक एक अस्त्र और आशीर्वाद दिया। इसके बाद यम, वरुण और कुबेरादि देवताओंने भी प्रगट हो, उन्हें शस्त्रास्त्र और वरदान दिये। इन्द्रने स्वयं उपस्थित हो उन्हें स्वर्ग देखनेके लिये निमन्त्रित किया और अपना रथ भी भेज दिया।

इन्द्रके रथपर आरूढ़ हो अर्जुन देवलोक गये। इन्द्रने उनकी बड़ी अभ्यर्थना की। अर्जुन वहां पांच वर्ष रहे और इन्द्र का आतिथ्य ग्रहण करते रहे। उन्होंने अपना समय व्यर्थ ही न खोया बल्कि वहां भी अस्त्र, शस्त्र, गायन, वादन और नृत्यादि विद्याओंका ज्ञान प्राप्त किया। निवात कवच, कालकेतु और हिरण्य पुरवासी यह तीन असुर बड़े प्रबल थे और इन्द्र उन्हें पराजित न कर पाते थे। वीर अर्जुनने अनायास ही उनपर

विजय प्राप्त कर ली। अर्जुनका यह पराक्रम देख इन्द्रके हर्षका पारावार न रहा। वह उन्हें बड़े प्रेमसे रखने लगे।

स्वर्गलोकमें अनेक अप्सरायें थीं, जिनमें उर्वशी सर्वश्रेष्ठ थी। अर्जुनकी तेजस्विता देख उनपर मोहित हो गयी और एक दिन हाव भाव करती हुई अर्जुनके पास गयी। अर्जुनने उसे माता कह सम्बोधित किया और बैठनेको आसन दिया। अर्जुनका यह कार्य्य उसकी इच्छाके विपरीत हुआ अतः उसने उन्हें शाप दिया कि तुम नपुंसक हो जाओगे और स्त्रियोंमें तुम्हें रहना पड़ेगा। अर्जुनने यह हाल इन्द्रसे कहा और अपनेको निरपराध बताकर खेद प्रकट किया। इन्द्रने शापकी अवधि एक वर्षकी कर दी और कहा कि चिन्ता न करो, तुम्हें जब एक वर्ष अज्ञात वास करना पड़ेगा तब इसी शापसे तुम्हारा उपकार होगा। इसके बाद अर्जुन अपने भाइयोंके पास चले आये और काम्यवन में रहने लगे।

दुर्योधनका स्वभाव अच्छा न था। पाण्डवोंको चिढ़ाने और उन्हें अपना ऐश्वर्य्य दिखाने केलियेवह उनके पास आ रहा था। मार्गमेंकहीं चित्रसेन नामक गन्धर्वसे युद्ध हो गया और उसने दुर्योधनको पराजित कर बन्दी बना लिया। जब यह समाचार युधिष्ठिरने सुना तो उन्हें बड़ा कष्ट हुआ। उन्होंने तत्काल अर्जुनको उसे छुड़ा देनेकी आज्ञा दी। अर्जुन, भीम, नकुल तथा सहदेवको साथ ले घटनास्थल पर गये और चित्रसेनको पराजित कर दुर्योधनको बन्धन मुक्त किया।

एक दिन पाण्डव मृगया खेलने गये थे। आश्रममें द्रौपदीको छोड़ और कोई न था। दैवयोगसे वहां जयद्रथ जा पहुंचा और द्रौपदीको अकेली देख, उसे बलात् हरण करने चला। पाण्डवोंने शीघ्रही उसका पता लगा लिया और अर्जुन तथा भीमने उसे बन्दी बना कर समुचित दण्ड दिया।

तेरहवें वर्ष पाण्डवोंने वेश बदलकर राजा विराटका आश्रय ग्रहण किया। अर्जुनने बृहन्नला नाम धारण कर अन्तःपुरमें प्रवेश किया और स्त्रियोंको सङ्गीत शास्त्रको शिक्षा देने लगे। उर्वशीके शापसे उनको बड़ी सुविधा हो गयी और कोई उन्हें पहचान न सका। यदि इस वर्ष कौरवोंको पाण्डवोंका पता मिल जाता तो पाण्डवोंको पुनः बारह वर्ष वनमें रहना पड़ता। शर्त ऐसी ही थी। अतः कौरव उन्हें बड़ी सरगर्मीके साथ खोज रहे थे।

विराटके सेनापतिका नाम कीचक था वह बड़ा अवि-चारी था। द्रौपदी भी वहीं सैरन्ध्रीके वेशमें वर्तमान थीं। वह उस पर मोहित हो गया और उस पर अत्याचार करने पर उद्यत हुआ। द्रौपदीने पाण्डवोंसे यह हाल कहा और भीमने विवश हो उसे युक्ति पूर्वक मार डाला। किसीको ज्ञात न हो सका, कि यह कार्य्य किसने किया। कौरवोंने सर्वत्र पाण्डवोंका पता लगाया परन्तु कहीं पता न चला। विराट नग-रमें वह खोज करना चाहते थे परन्तु कोई युक्ति न चलती थी जब उन्होंने सुना कि कीचकको किसीने मार डाला तब उनका सन्देह दृढ़ हो गया। विना सेनापतिके सेना सञ्चालन भी ठीकसे

न होगा यह सोचकर उन्होंने विराट नगर पर आक्रमण कर दिया। अर्जुनको उस प्रसङ्ग पर प्रकट होना पड़ा। अज्ञात वासकी अवधि भी समाप्तहो चुकी थी। अतः भयका भी कोई कारण न था। अर्जुनने विराट कुमार उत्तरको सारथी बनाया और रणभूमिमें पदार्पण किया। उनके शस्त्रास्त्र जङ्गलमें रक्खे हुए थे। अर्जुन वह उठा लाये और गाण्डीव धारणकर कौरव दलपर वाण वर्षा करने लगे। कुछ ही देरमें वह विजयी हुए और शत्रु सेना विश्रृंखलित हो गयी। सबको उसी दिन पाण्डवोंका प्रकृत परिचय मिल गया। तेरह वर्ष व्यतीत हो चुके थे। अतः कौरवोंका उद्योग भी निष्फल रहा। विराटने पाण्डवोंके प्रति कृतज्ञता प्रकट कर क्षमा प्रार्थना की और अर्जुनसे उत्तराका पाणिग्रहण करनेको कहा, परन्तु अर्जुनने उसे शिक्षा दी थी—एक प्रकारसे वह उसके गुरु बन चुके थे, अतः उन्होंने अस्वीकार किया। उनके अस्वीकार करने पर उत्तराका विवाह अभिमन्युके साथ कर दिया गया और सदाके लिये दोनों राज-वंशोंमें सम्बन्ध स्थापित हो गया।

जब महाभारतका भीषण समर आरम्भ हुआ और श्रीकृष्ण ने उनका रथ दोनों दलोंके मध्यमें खड़ा किया, तब अर्जुनके हृदयमें मोह उत्पन्न हो गया। उन्होंने अपने हथियार फेंक दिये और कहा, कि मैं राज्यके लिये आत्मीय जनोंका विनाश न करूंगा। उनकी यह दशा देखकर श्रीकृष्णने उन्हें क्षत्रिय धर्म का तत्व, आत्माका अमरत्व आदि समझाकर उन्हें शीघ्र ही

फिर युद्धके लिये तय्यार कर दिया था। बादको अर्जुनने दस दिन भीष्मसे युद्ध किया और अनेकों महारथियोंके प्राण हरण किये। जब भीष्म आहत हो शर शय्यार पड़ रहे, तब भाइयोंके साथ अर्जुन भी उनके पास गये थे। उस समय भीष्म का शिर लटक रहा था अतः उन्होंने कुछ नीचे रख देनेको कहा। कौरव सुन्दर तकिया ले आये परन्तु वह भीष्मको पसन्द न आया। उन्होंने अर्जुनकी ओर दृष्टिपात किय। अर्जुन उनका भाव समझ गये और तीन बाणोंका तकिया बना दिया। उसी समय भीष्मने जल मांगा। अर्जुनने एक बाण पृथ्वीमें मार दिया। तुरन्तही पाताल गङ्गाकी धारा फूटकर भीष्मके मुखमें पड़ने लगी। उसी दिनसे वह स्थान बाणगङ्गा के नामसे विख्यात हुआ। अर्जुनने इसी प्रकार युद्धमें अनेक पराक्रम किये थे, फलतः पांण्डवोंकी जय और कौरवोंकी परा जय हुई थी।

युधिष्ठिरने अपने राजत्वकालमें अश्वमेध यज्ञ किया था। उस समय नियमानुसार अश्व छोड़ा गया था और अर्जुन दिग्विजय करने गये थे। कतिपय नरेशोंने उनसे युद्ध किया था। परन्तु अर्जुनने उन्हें परास्त कर दिया था। अश्वमेधके अग्नि कुण्डकी रक्षाका भार भी अर्जुननेही ग्रहण किया था। यज्ञ समाप्त होनेपर सब लोग उनकी प्रशंसा करते हुए अपने स्थानको गये थे।

धर्म्मराजने अपने शासनकालमें अर्जुनको सेनापति नियुक्त

किया था। अर्जुनने उस समय भी अपनी योग्यताका परिचय दे सबका प्रेम सम्पादन किया था। कुछ कालके उपरान्त श्री-कृष्णका शरीरान्त हुआ। यह समाचार सुन अर्जुनको अवर्णनीय शोक हुआ। श्रीकृष्णके कथनानुसार वह द्वारिका गये थे और वहांसे उग्रसेन वसुदेव तथा विधवा स्त्रियोंको हस्तिना पुर लिवा लाये थे। श्रीकृष्णके वज्र नामक पौत्रको इन्द्रप्रस्थ और अपने परीक्षित नामक पौत्रको हस्तिनापुरके सिंहासनपर स्थापित कर वह भाइयों सहित उत्तराखण्डको चले गये थे। वहीं कुछ कालके बाद वह सद्‌गतिको प्राप्त हुए।

धनुर्धर अर्जुन रण चतुर और युद्धकला कुशल थे। उनके समान धनुर्विद्यामें विशारद और कोई नहीं हुआ। बड़े भाइयों पर सदा पूज्य भाव रखते थे। अनेक बार श्रीकृष्णके साहाय्य से वह विजयी हुए थे, तथापि वह अद्वितीय वीर और अद्भुत शक्तिशाली थे। अनेक बार उन्होंने अकेले ही विजय प्राप्त की थी। वह अपने बुद्धि, बल, उत्साह, और धनुर्विद्याके कारण विख्यात हैं। अर्जुन बाणावलीके नामसे आज भी लोग उन्हें स्मरण करते हैं और आदरकी दृष्टिसे देखते हैं। धन्य है ऐसे प्रतापी पुरुषको!

भीष्मपितामह ।

यह परमपवित्र दैवी महापुरुष चन्द्रवंशीय कुरु-कुलोत्पन्न राजा शान्तनुके पुत्र थे । उनकी माताका नाम था गङ्गा । यह आठवसुओंमें एक वसुके अवतार गिने जाते हैं । गङ्गाने शापित हो मर्त्यलोकमें जन्म लिया था । जब शापकी अवधि पूरी हो गयी तब वह स्वर्ग चली गयीं और शान्तनुकी इच्छासे भीष्मको भी साथ लेती गयी । गङ्गाने उनका लालन पालन किया और जब वह बड़े हुए तब वृहस्पतिके पास विद्योपार्जन करने लगे । वृहस्पतिने उन्हें वेद वेदाङ्ग और धनुर्वेदकी शिक्षा दी । इन्द्रादि देवोंने प्रसन्न होकर उन्हें अनेक प्रकारके शस्त्रास्त्र दिये । इसके बाद गङ्गाने उन्हें शुक्राचार्य्य और परशुराम के पास भेजा । भीष्मने उनके निकट धनुर्विद्याका विशेष ज्ञान प्राप्त किया । चौबीस वर्षकी अवस्था होनेपर गङ्गाने उन्हें शान्तनुको सौंप दिया । गङ्गाके पुत्र थे अतः वे गङ्गेय नामसे भी पुकारे जाते थे । अखण्ड ब्रह्मचर्य्यके प्रतापसे वह देव समान देदीप्यमान प्रतीत होते थे । अतः लोग उन्हें देवदत्त भी कहते थे ।

राजा शान्तनुका चित्त प्रिय पत्नीकी विरह-व्यथासे व्यथित

रहता था। जबसे गङ्गा भीष्मको सौंप पुनः लौट गयी तबसे वह और भी व्याकुल हो उठे थे। उनको संसार असार प्रतीत होता था परन्तु विवश हो किसी प्रकार कालयापन कर रहे थे। एक दिन वह यमुनाके तटपर वायु सेवन कर रहे थे। एकाएक उनकी दृष्टि एक लावण्यवती तरुण कन्यापर पड़ी। उन्होंने उससे उसका परिचय पूछा। उत्तरमें उसने कहा, कि मेरा नाम सत्यवती है और मैं एक धीवरकी कन्या हूं। वह इतनी रूपवती थी कि शान्तनुको उसकी बातपर विश्वास न हुआ। एक धीवरके यहाँ उन्होंने लावण्यराशिका उत्पन्न होना असम्भव समझा। कुछ भी हो वह उसकी कमनीय कान्तिको देखकर मुग्ध हो गये और उसका पाणिग्रहण करनेको लालायित हो उठे। पता लगानेसे उन्हें यह भी ज्ञात हुआ कि वह क्षत्रिय-कन्या है और धीवरने उसका लालन पालन किया है।

शान्तनुने उस धीवरसे अपनी इच्छा व्यक्त की, परन्तु उसने कहा कि—"यदि आप सत्यवतीके पुत्रको अपना उत्तराधिकारी बनानेका वचन दें तो मैं उसका विवाह आपसे कर सकता हूं अन्यथा नहीं।" धीवरकी यह बात सुन शान्तनु बड़ी द्विविधामें पड़ गये। वह मनही मन सोचने लगे, कि इसकी बात कैसे मानी जा सकती है! क्या स्त्रीके लिये पुत्रका स्वत्व हरण करना उचित है? मैं स्त्रीके लोभमें पड़कर गङ्गेय समान गुणी और पवित्र पुत्रको उसके अधिकारोंसे वञ्चित नहीं रख सकता। यह असम्भव है, कि मैं सत्यवतीके पुत्रको अपना उत्तराधिकार ।

नियत करनेका वचन देदूँ। गाङ्गेयके प्रति यह कितना अन्याय होगा!

इसी प्रकारके विचार कर वह शान्त हो गये। गाङ्गेयको उसके अधिकारोंसे वञ्चित करना उन्हें न्याय सङ्गत न प्रतीत हुआ। वह अपनी राजधानीमें लौट आये और इसी चिन्तामें मग्न रहने लगे। पर सत्यवतीको वह किसी प्रकार भूल न सके और उसीके स्मरणमें उनका शरीर क्षीण हो चला।

महामति गाङ्गेयको किसी तरह इस बातका पता लग गया और उन्होंने पिताका दुःख निवारण करनेका निश्चय किया। वह तुरन्त उस धीवरके पास गये और उससे कहा कि आप मेरी ओरसे निश्चिन्त हो सत्यवतीका विवाह मेरे पितासे कर दीजिये। मैं राज्य न लेनेका वचन देता हूं।

धीवरने कहा—"मुझे आपकी बात पर विश्वास है, परन्तु विश्वासं नैव कर्त्तव्यं स्त्रीषु राजकुलेषु च। मैं अपनी कन्याका विवाह महाराजसे न करूँगा। आप शायद अपनी पितृभक्ति और प्रतिज्ञाके लिहाजसे राज्य न लें परन्तु आपके पुत्र यह बात न मानेंगे। वे अवश्य सत्यवतीके पुत्रको पदच्युत कर सिंहासन पर अधिकार जमा लेंगे।"

गाङ्गेयने गम्भीर हो कहा—"मैं आपके इस सन्देहको भी निर्मूल करता हूं। मैं प्रतिज्ञा करता हूं, कि मैं आजन्म ब्रह्मचारी रहूंगा और अपना विवाह न करूँगा। ऐसा करनेसे आपका भावी भय दूर हो जायगा। न मेरे पुत्र होंगे न वह झगड़ा ही करेंगे।"

गाङ्गेयके यह शब्द सुनकर देवता गण भी स्तम्भित हो गये। वह पुष्प वृष्टि कर बोल उठे—"अहो! भीष्म प्रतिज्ञेयं।" वास्तवमें गाङ्गेयकी यह प्रतिज्ञा बड़ीही विकट थी। आजीवन ब्रह्मचारी रहना कोई सामान्य बात नहीं है। धीवरने भी सत्यवतीको बुलाकर तत्काल उन्हें सौंप दिया। गाङ्गेय उसे माता समझ पूज्य भावसे हस्तिनापुर लिवा लाये और शान्तनुको सौंप दिया। शान्तनु अपने पुत्रकी अद्भुत भक्ति, अनुपम त्याग और भीष्म प्रतिज्ञा देखकर गद्गद् हो गये। उन्होंने प्रसन्न होकर उन्हें आशिर्वाद दिया कि तुम्हारी इच्छा मृत्यु होगी। उसी दिनसे गाङ्गेय भीष्म कहलाने लगे।

शान्तनुने यथाविधि सत्यवतीका पाणिग्रहण किया और उसके गर्भसे चित्राङ्गद तथा विचित्रवीर्य्य नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। जब शान्तनुका शरीरान्त हुआ तब भीष्मने प्रतिज्ञानुसार चित्राङ्गदको सिंहासन पर स्थापित किया और स्वयं उसकी संरक्षा करने लगे। कुछ दिनों बाद चित्राङ्गद नामकेही एक गन्धर्वसे युद्ध करते समय चित्राङ्गदकी मृत्यु हो गयी। अब भीष्मने विचित्रवीर्य्यको सिंहासनारूढ़ कराया। यथा समय उन्हें उसके विवाहकी भी चिन्ता हुई। वह योग्य कन्याओंकी खोज हीमें थे, इतनेमें सुना, कि काशीनरेशकी तीन कन्याओंका स्वयंवर हो रहा है। भीष्म वहां गये और अनेक राजवंशियोंको पराजित कर उन तीनोंका हरण कर लाये। उनके नाम थे अम्बा अम्बिका और अम्बालिका। अम्बाने कहा, कि मैं शाल्व राजाको

स्वेच्छासे वरण कर चुकी हूं अतः मुझे उनके पास भेज दो। भीष्मने उसे रथमें बैठाल उसी क्षण शाल्वके पास भेज दिया शेष दोनोंका परिणय विचित्रवीर्य्यके साथ हो गया।

भीष्म हरण कर चुके थे, अतः शाल्वने अम्बाको वरण करना अस्वीकार किया। कुछहीं दिनोंमें वह वापस लौट आयी और भीष्मसे अपना पाणिग्रहण करनेकी प्रार्थना करने लगी। भीष्मको उसकी विनय-अनुनय सुन दया आ गयी, परन्तु प्रतिज्ञा बद्ध होनेके कारण वह अटल बने रहे। भीष्मने कहा, कि मैं तुम्हारी प्रार्थना नहीं स्वीकार कर सकता। तुम मेरी माता और बहिनके समान हो। मुझसे विवाह करनेकी बात भी न कहो।

अम्बाने भीष्मको निष्ठुर और हृदय हीन समझा। क्रुद्ध हो वह हिमालयकी ओर चली गयी और तपस्या कर परशु-रामको प्रसन्न किया। भीष्मने परशुरामके निकट धनुर्विद्याका ज्ञान प्राप्त किया था। अतः वे उन्हें गुरु मानते थे। परशु-रामको अम्बाकी दशापर दया आ गयी और वह उसे साथ ले हस्तिनापुर आये।

परशुरामको आते देख भीष्मने साष्टाङ्ग प्रणाम किया और सिंहासन पर बैठाकर पूजा की। परशुराम भीष्मको अनेक प्रकार समझाने और अम्बाका पाणिग्रहण करनेके लिये बाध्य करने लगे, परन्तु भीष्म टससे मस न हुए। वह किसी प्रकार अपनी पूर्ण प्रतिज्ञा भङ्ग करनेको तय्यार न थे। भीष्मकी

यह दशा देख परशुराम असन्तुष्ट हो गये। उन्होंने कहा, कि तू शिष्य होकर भी मेरी बात नही मानता अतः युद्धार्थ प्रस्तुत हो।

भीष्मने हाथ जोड़ कर कहा—"भगवन्! मैं प्रतिज्ञा भङ्ग नहीं कर सकता। संसार भरकी स्त्रियां मेरी माता और बहिनके समान हैं, मैं आपकी दूसरी बात माननेको तय्यार हूं। युद्ध करनेमें मुझे कोई आपत्ति नहीं-मैं प्रस्तुत हूं।"

निदान, गुरु शिष्यमें युद्ध ठहर गया। सत्ताईस दिन घमासान युद्ध मचा रहा। अन्तमें परशुराम पराजित हुए। अपनी पराजयसे वह अप्रसन्न न हुए, बल्कि प्रसन्न हो भीष्मको भेट पड़े वह अपने शिष्यकी योग्यता-उसकी युद्ध निपुणता देख मुग्ध हो गये थे अतः अम्बाको बिदाकर अपने आश्रम चले गये। अम्बाने अपनी प्रतिहिंसावृत्ति चरितार्थ करनेके लिये राजा द्रुपदके यहां पुत्र रूपमें जन्म लिया। वहां उसका नाम शिखण्डी पड़ा।

विचित्रवीर्य्य भीष्मके आदेशानुसार शासन करता था, परन्तु दैव दुर्विपाकसे वह क्षय रोग द्वारा ग्रसित हो गया और निःसन्तान दशामें ही पर लोक यात्री हुआ। उसकी असामयिक मृत्युसे सबको बड़ा खेद हुआ। राज्यका कोई उत्तराधिकारी न देखकर सत्यवतीने भीष्मको विवाह करानेकी अनुमति दी। परन्तु भीष्मने कहा न भूतो न भविष्यति। मैं अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग नहीं कर सकता।

सत्यवती यह सुन बड़ी चिन्तामें पड़ गयी। उन्होंने अधि-

तीय ब्रह्मवेत्ता कृष्ण द्वैपायन व्यासको बुला भेजा। उन्होंने अपने प्रतापसे धृतराष्ट्र और पाण्डु नामक दो पुत्र निर्मित किये। दासीने भी एक पुत्रको जन्म दिया और उसका नाम विदुर रक्खा गया। भीष्मने तीनोंका बड़े चावसे लालन पालन किया और बड़े होने पर धृतराष्ट्र जन्मान्ध थे अतः पाण्डु को सिंहासन पर स्थापित किया। उन्होंने गान्धार देशाधि- पति राजा सुबलकी गान्धारी नामक कन्यासे धृतराष्ट्र और कुन्ती भोजकी कुन्ती तथा मद्र देशाधिपतिकी माद्री नामक दो कन्याओंसे पाण्डुका विवाह भी कर दिया।

धृतराष्ट्रके दुर्योधनादि सौ पुत्र और दुःशला नामक कन्या उत्पन्न हुई तथा पाण्डुके युधिष्ठिर भीम,अर्जुन,नकुल और सहदेव यह पांच पुत्र हुए। धृतराष्ट्रकी सन्तति कौरव और पाण्डुकी पाण्डव नामसे प्रसिद्ध हुई।

पाण्डुको राजकाज करनेमें भीष्म बड़ी सहायता देते थे। पाण्डु रोगी थे अतः उनका भी शीघ्रही शरीरान्त हुआ। भीष्मने उनके स्थान पर धृतराष्ट्रको स्थापित किया और उन्हें भी सहा- यता पहुंचाते रहे। साथही उन्होंने सब राजकुमारोंकी शिक्षाका भी प्रबन्ध किया। इस कार्य्यका भार उन्होने कृपाचार्य्यको दिया था, परन्तु बादको द्रोणाचार्य्य आये और वही राज्याश्रय ग्रहण कर यह कार्य्य करने लगे।

पाण्डु के ज्येष्ठ पुत्र युधिष्ठिर बड़ेही योग्य थे। वह शीघ्रही धृतराष्ट्रको राजकाजमें सहायता पहुंचाने लगे। भीष्मने भी अपने

प्रबन्ध द्वारा राज्यको ढर्रेपर लगा दिया था अतः अब उन्होंने निवृत्त होना उचित समझा शीघ्रही उन्होंने सारा भार धृत-राष्ट्र और युधिष्ठिरके शिर डाल कर अपना हाथ खींच लिया और शान्तिमय जीवन व्यतीत करने लगे।

धृतराष्ट्रके सभी पुत्र दुर्गुणी निकल गये। दुर्गुणी गुण-वानसे और दुर्जन सज्जनसे अकारण ही द्वेष करने लगते हैं। कौरव भी पाण्डवोंसे द्वेष करने लगे और उत्तरोत्तर उसकी वृद्धि होती चली गयी। भीष्मने उन्हें अनेक वार समझानेकी चेष्टा की, परन्तु कोई फल न हुआ। विशेष कहने सुननेसे धृतराष्ट्रके असतुष्ट होनेका भी डर था अतः वह शा-न्त हो गये। जो जैसा करेगा, वह वैसा भरेगा—यह समझकर वह उद्धत कौरवोंके दुराचार उपेक्षाकी दृष्टिसे देखने लगे।

पाण्डवोंके मांगनेपर दुर्योधनने उन्हें आधा राज्य देना अस्वीकार किया। जब श्रीकृष्णसे उसने स्पष्ट शब्दोंमें कह दिया कि "सूच्यग्रंग्र नैव दास्यामि विना युद्धेन केशवः!"—विना युद्धके मैं सुईकी नोक बराबर भी भूमि न दूंगा—तब युद्ध होना अनिवार्य्य हो गया। भीष्मके लिये पाण्डव और कौरव समान थे। पाण्डवोंसे उनकी सहानुभूति भी थी, तथापि उन्हों-ने कौरवोंका पक्ष ग्रहण किया। कौरवोंने उन्हें अपनी सेना का सञ्चालन भार दिया और उन्होंने दश दिन पर्य्यन्त अद्भुत युद्ध किया। प्रत्येक दिवस उन्होंने प्रायः दश सहस्र रथियोंके प्राण हरण किये थे। उनके रथाश्वोंका वर्णश्वेत और ध्वजापर

ताड़का चिन्ह अङ्कित था। युद्ध आरम्भ होनेके पूर्व उन्होंने युद्धनीतिपर एक अच्छीसी वक्तृता दी थी और अपने युद्धमें उन्होंने उसका पालन भी कर दिखाया था।

भीष्मकी युद्ध नीति—रथीको रथी, पदचरको पदचर, अश्वारोहीको अश्वारोही और महायोद्धाको महायोद्धासे युद्ध करना चाहिये। किसीको किसी प्रकारका कपट न करना चाहिये। युद्धसे निवृत्त होनेपर वैमनस्य भूल जाना चाहिये। एक पर अनेकको आक्रमण न करना चाहिये। जो युद्ध देखने आये हों, जो बाजे बजाने वाले हों, और जो युद्ध न करने आये हों, उनपर प्रहार न करना चाहिये। सारथि, वार्त्तिक, दूत, सेवक लुहार, खन्दक खोदनेवाले, मूच्छित, शरणागत, जो सावधान न हो, जो भाग रहा हो और जिसने शस्त्र त्याग दिया हो उससे भी युद्ध करना नीति विरुद्ध है। इन मनुष्योंपर कभी अस्त्राघात न करना चाहिये। सूर्य्यास्त होते ही दोनों ओरके सेनापतियोंको युद्ध बन्दकर सैनिकोंके अस्त्र रखवा देने चाहिये। युद्ध बन्द होनेपर परस्पर मित्र भावसे आचरण करना चाहिये। उस समय परस्पर मिलना, बातचीत करना और एक दूसरेके शिविरमें जाना भी अनुचित नहीं है। योद्धा परस्पर किसीकी निन्दा अथवा कलह कर रहे हों तो उसमें किसीको हस्तक्षेप न करना चाहिये दोके बीचमें तीसरेको प्रवेश कर शस्त्र न उठाना चाहिये। बिना सूचित किये किसीको किसीपर प्रहार न करना चाहिये—इत्यादि।

ऐसी ही भीष्मकी नीति थी और उन्होंने दशदिन पर्य्यन्त उसका पालन भी कराया था। दशवें दिन दुर्योधनने उनसे कहा, कि आप तन्मय होकर युद्ध नहीं करते। भीष्मने कहा, नहीं, यह बात तो नहीं है, फिर भी यदि शिखण्डी मुझपर आक्रमण न करे तो मैं पाण्डवोंको एक ही दिनमें परास्त कर दूं। दुर्योधनने कहा—अच्छा उसे हम हटानेकी चेष्टा करेंगे।

यह समाचार पाण्डवोंने सुन लिया अतः वे भी अर्धरात्रिके लगभग उनके पास गये। युधिष्ठिरने नम्र हो अपनी रक्षाका उपाय पूछा। भीष्मने निष्कपट हो बतला दिया कि शिखण्डी और अर्जुन यदि बराबर आक्रमण करते रहे तो तुम्हारी रक्षा होगी, क्योंकि मैंने शिखण्डीसे युद्ध करनेकी कौन कहे, उसपर दृष्टिपात भी न करनेका निश्चय किया है।

बात यह थी, कि भीष्मको शिखण्डीके पूर्व जन्मका वृत्तान्त ज्ञात हो चुका था अतः उन्होंने उससे युद्ध न करनेका निश्चय किया था। दूसरे दिन पाण्डवोंने उनके आदेशानुसारही कार्य्य किया। शिखण्डी और अर्जुनके शराघातोंसे उनका शरीर चलनी हो गया। अन्तमें वह मूर्च्छित होकर गिर पड़े। उनके गिरते ही युद्ध बन्द कर दिया गया। दुर्योधन वैद्य बुला लाया परन्तु भीष्मने उसे अपना स्पर्श भी न करने दिया और ज्योंके त्यों शर शय्यापर पड़े रहे।

श्रीकृष्ण सहित पांडव भी उन्हें देखने गये। उस समय उन्होंने तकिया मांगा। कौरव सुन्दर तकिया ले आये। परन्तु

वह भीष्मको पसन्द न आया। अर्जुनने तीन बाणोंके सहारे उनका शिर ऊंचा कर दिया। बादको जब वह तृषित हुए, तब अर्जुनने भूमिमें एक बाण मार दिया और पाताल गङ्गाकी धारा उनके मुखमें पड़ने लगी। भीष्म अर्जुनके इन कार्य्योंको देख बड़े प्रसन्न और सन्तुष्ट हुए। उन्हें उनके पिताका आशीर्वाद था कि तेरी इच्छा मृत्यु होगी अतः स्वेच्छासे वह दो मास पर्य्यन्त उसी दशामें पड़े रहे और जब सूर्य्य उत्तरायण हुए तब प्रसन्न हो प्राण विसर्जित कर दिये।

युद्धमें श्रीकृष्णने शस्त्र न लेनेकी प्रतिज्ञा की थी। भीष्मने भी एक दिन प्रतिज्ञाकी, कि मैं कृष्णको अस्त्र लेनेके लिये बाध्य करूँगा। तदनुसार उन्होंने युद्धके नवें दिवस अर्जुनको मूर्च्छित कर श्रीकृष्णको शराघातसे व्याकुल कर दिया। अन्तमें श्रीकृष्णने बाध्य हो सुदर्शन उठा लिया। उनके शस्त्र धारण करतेही भीष्मने बाण वृष्टि बन्द कर दी और कहा—बस, मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण हो गयी। अब आप मुझे मार सकते हैं। श्रीकृष्ण भीष्मका अभिप्राय समझ कर मुस्कुरा उठे, और शान्त हो चक्र रख दिया युद्धके तीसरे दिन भी उन्हें रथका पहिया उठाना पड़ा था।

भीष्मके बाद उनका स्थान द्रोणाचार्य्यने ग्रहण किया था। द्रोणाचार्य्यके समयमें भीष्मकी नीतिका पालन न हुआ था और मिश्र युद्ध हुआ था। अठारह दिनोंमें दुर्योधनकी आहुति ले यह समराग्नि शान्त हुई थी। कौरवोंकी उत्तर क्रिया युधिष्ठिरने की थी। सिंहासनारूढ़ होने पर स्वजातीय बन्धुओंके

विनाशका स्मरण कर वह उदास रहते थे। श्रीकृष्ण व्यासके आदेशानुसार उन्हें भीष्मके पास लिवा ले गये थे। उस समय भीष्मके आसपास ऋषि मुनियोंकी बड़ी भीड़ लग रही थी। वे सब भीष्मसे भेंट करने आये थे। सबके सम्मुख भीष्मने युधिष्ठिरको राजधर्म्म, दानधर्म्म, आपद्धर्म्म इत्यादिका उपदेश दिया था। उत्तरायणके सूर्य्य होते ही उन्होंने शान्ति पूर्वक चित्तको स्थिर कर प्राण विसर्ज्जन कर दिये थे। उस समय उनकी अवस्था कितनी थी इस विषयपर महाभारतमें कोई उल्लेख नहीं है तथापि अनुमान किया जाता है कि वह द्रोणाचार्य्यसे बहुत बड़े होंगे।

कौरव सभामें उनसे द्रौपदीने प्रश्न किये थे, परन्तु भीष्मने सुनी अनसुनी कर उनका उत्तर न दिया था। उस प्रसङ्गको छोड़ कर उनके जीवनमें कहीं दोष दिखायी नहीं देता। ब्रह्मचारी थे अतः उन्हें केवल स्त्री विषयक ज्ञान न था, बाकी सब प्रकारके संसार व्यवहारका उन्हें गहरा ज्ञान था। युद्धमें कभी उन्होंने पीठ नहीं दिखायी, न नीति विरुद्ध आचरण ही किया। शस्त्रास्त्र विद्यामें उनको अर्जुनसे कुछ ऊंचा आसन दिया जाय तो बेजा नहीं। ब्रह्म विद्याका उन्हें पर्य्याप्त ज्ञान था। वह समर्थ विद्वान और राजनीतिमें कुशल थे। दुर्योधन, दुःशासन और कर्णके आचरणोंकी वह निन्दा करते थे तथापि धृतराष्ट्रके मान और अपने अपमानके डरसे, सत्ताहीन वृद्धावस्थामें उनका विरोध न कर सकते थे।

महामति भीष्म गुणग्राहक और पुरुष परीक्षक थे। विद्वान

और सद्गुणी पर वह सदा प्रसन्न रहते थे। वृद्ध होने पर भी समर भूमिमें वह तरुणोंकी तरह घूमते थे। वास्तवमें वह बड़े ही पराक्रमी थे ऐसा न होता तो वह दो मास शर शय्यापर कैसे व्यतीत करते। एक ही बाणके लगते बड़े बड़े महारथी व्याकुल हो उठते थे, परन्तु उनके शरीरमें न जाने कितने बाण लगे थे। जिसके शरीरमें एक घाव होता है वह अधीर हो जाता है, परन्तु उनका शरीर चलनी हो गया था। वैसी दशामें भी इतिहास की बातें और श्रुति स्मृति तथा धर्म शास्त्रोक्त नीतिका उपदेश दे श्रोतागणोंको सन्तुष्ट करना क्या कोई साधारण बात है? युधिष्ठिरका जो विषाद ऋषि मुनियोंके उपदेश और श्रीकृष्णसे समुचित उद्योग करने पर भी दूर न हुआ था, उसे दूर करनेमें क्या उन्हें थोड़ा परिश्रम करना पड़ा होगा? यह सब उनकी जितेन्द्रियता और ब्रह्मचर्य्य काही प्रताप था। उनके दीर्घजीवी होनेका भी यही कारण है।

उन्होंने अपनी भीष्म प्रतिज्ञाका आजीवन पालन किया था स्त्रीपर प्रहार न करनेकी नीति भी उन्होंने खूब निवाही। प्राण दे दिये, परन्तु अम्बा-शिखण्डी पर उन्होंने हाथ न उठाया। उनकी ओजपूर्ण वक्तृतायें सुनकर ऋषि मुनि भी प्रसन्न हो उठते थे। धन्य है ऐसे प्रतापी पुरुषको और धन्य है उनकी गङ्गा समान जननीको! पवित्र और प्रतापी माताओंके पुत्र ऐसे क्यों न हों? हे विभो! पुनः भारतमें ऐसेही वीर नरोंको उत्पन्न कर!

तृतीय खण्ड ।

महान ब्रह्मर्षि ।

कश्यप ऋषि ।

यह महान मुनिराज ब्रह्माके दश मानस पुत्रोंमें मरीच नामक ऋषिके पुत्र थे। यह अरिष्टनेमी नामसे भी पुकारे जाते थे। उनकी माताका नाम कला था। वह कर्दम ऋषिकी पुत्री एवम् कपिल मुनिकी बहिन थी। महात्मा कश्यपने सृष्टि विस्तारार्थ दक्ष प्रजापतिकी अदिति दिति, कपिला, इला, विनता, इत्यादि तेरह कन्याओंसे विवाह किया था। अदिति उन सभोंमें बड़ी और प्रिय थी।

कश्यप मुनि महा तेजस्वी और प्रतापी पुरुष थे। उनका वर्ण काञ्चन और जटायें अग्नि-ज्वालाके समान थीं। उनकी आकृति भव्य थी। ऋषि मुनियोंमें उनका स्थान विशेष ऊँचा था। बलि राजाको छलनेके लिये विष्णु भगवानने इन्होंकी पवित्र पत्नी महासती अदितिके गर्भसे वामनका अवतार धार-

ण किया था। यह ऋषि महान प्रजापति थे। उनकी सृष्टिमें देव, दानव और मनुष्य उत्पन्न हुए थे। उनके वंशका विस्तार भी खूब हुआ।

कश्यप मुनिको नीति सर्वं प्रिय थी। नीतिमानपर वह विशेष प्रसन्न रहते थे। अविवेकीको वह घृणित दृष्टिसे देखते थे। भूलकर भी वह अधर्म्मीका पक्ष न लेते थे। उनका पुत्र ही क्यों न कहता हो, परन्तु वह अधर्मकी वात पर ध्यान न देते थे।

एक दिन इन्द्र, अपनी माता अदिति और पिता कश्यपके पास बैठे थे। वहीं मयदानव जा पहुँचा। उसने वातही बातमें कह डाला, कि शिवने इन्द्रासन आपके लिये और विद्याधरके राज्यका चक्रवर्ती पद सूर्य्यप्रभके लिये निर्म्माण किया है। इन्द्र उसकी यह वात सुनकर असन्तुष्ट हो गये और उन्होंने क्रुद्ध होकर उसेमारनेके लिये वज्र उठाया। अपने पुत्रका यह अविवेक देखकर महात्मा कश्यप बिगड़ उठे और इन्द्रको उसी क्षण क्षमा प्रार्थना करनी पड़ी। उनके शान्त होनेपर इन्द्रने कहा, कि मैंने विद्याधरका राज्य श्रुति-शर्म्माको दिया है, परन्तु उसे सूर्य्य प्रभ छीन लेना चाहता है। यह मयदानव उसे साहाय्य देने को तय्यार हुआ है। बतलाइये, मैं क्या करूँ!

कश्यपने कहा—पुत्र! शान्त हो। तुम्हे जैसे श्रुतिशर्म्मा प्रिय है वैसेही शिवको सूर्य्यप्रभ प्रिय है। वह गुण जो एक चक्रवर्तीमें होने चाहिये, श्रुतिशर्म्माको अपेक्षा सूर्य्यप्रभमें विशे-

न हैं, अतः शिवका प्रेम अनुचित भी नहीं। उन्हींकी आज्ञासे मयदानव उसे साहाय्य देनेको तय्यार हुआ है। ऐसी दशामें तू उससे असन्तुष्ट क्यों होता है? उस विचारेका कौन अपराध है? वह बड़ोंका बड़ा सम्मान करता है। यदि तू इसे कष्ट देगा तो मैं तुझे शाप दे भस्म कर दूंगा। मुझे अनीति नहीं अच्छी लगती।

इसके बाद उन्होंने मयदानवसे कहा,—वत्स! इन्द्रने क्रुद्ध हो तुझे मारनेके लिये वज्र उठाया, परन्तु तूने एक शब्द भी न कहा—और अपमान सह लिया यह तेरा विवेक सराहनीय है। मैं प्रसन्न हो तुझे आशीर्वाद देता हूं, कि जरा और मृत्यु तेरे पास न आयगी और शस्त्रास्त्रसे तेरा शरीर विद्ध न होगा। सूर्य्यप्रभ भी तेरेही समान पराक्रमी होगा। और उसे भी कोई पराजित न कर सकेगा। एक बात और भी कहता हूं। जब कभी तुझपर आपत्ति आवे, तब शरच्चन्द्रके समान महान तेजस्वी मेरे सुवास कुमारका स्मरण करना। स्मरण करतेही वह उपस्थित हो तुझे सहायता देगा।

महात्मा कश्यपकी विवेक-प्रियताका यह ज्वलन्त उदाहरण है। वह स्वयं अपने पुत्रकी अनीति न सहन कर सके और उसे शाप देनेको तय्यार हो गये। इसके विपरीत, मयदानवका विवेक देखकर उन्हें सीमातीत प्रसन्नता हुई और उन्होंने उसे और उसके साथ सूर्य्यप्रभको भी वरदान दे दिया।

महर्षिराज कश्यप सप्त ऋषियोंमें प्रधान माने गये हैं। वह

प्रौढ़ वक्ता थे और किसीका पक्ष न लेते थे। निर्लोभी और निर्भीक भी थे। सत्य बात कहनेमें यह आगापीछा न करते थे, न किसीकी परवाह ही रखते थे। इन्हींकी कृपासे नर वाहन दत्त नामक राजा चक्रवर्तीके श्रेष्ठ पदको प्राप्त कर सका था साथही वह निर्विकारी राग-द्वेष रहित और प्रजा पालक भी बन गया। यह सब महात्मा कश्यपकाही प्रताप था।

प्रजापति कश्यप जिस प्रकार प्रजा-वृद्धिके कार्य्यमें श्रेष्ठ और निपुण थे।, इसी प्रकार प्रजाको उत्कृष्ट बनानेमें भी प्रवीण थे। उनकी प्रजा भी पराक्रमी और श्रेष्ठ थी। उनका प्रताप दिग्दिगन्तमें व्याप्त हो रहा था। उनकी स्त्रियां भी महा-सती, महान ज्ञानी, बुद्धिशाली और देवी स्वरुपा थीं। ऐसे उत्कृष्ट माता पिताकी सन्तति उत्कृष्ट हो तो क्या आश्चर्य्य है!

महात्मा कश्यप निरन्तर धर्म्मोपदेश देनेका कार्य्य करते थे। समस्त संसारको यह धर्म्म-पथ पर चलानेका उद्योग करते थे। अपनी सुकृतिसे उन्होंने परम पद प्राप्त किया था। लोग उन्हें "कश्यप भगवान" कहते हैं। उन्होंने एक स्मृति ग्रन्थकी रचनाकी है सभी देव, मनुष्य और दानव उनकी आज्ञा शिरोधार्य्य करते थे। यह महा पुरुष योगी रुपमें मेरु पर्वतके शिखर पर रहते थे और सदा परब्रह्म परमात्माके ध्यानमें लीन रहते थे।

अपने कुलमें स्वयं वह, अवत्सार और असित यह तीन ऋषि विख्यात हुए। अवत्सारसे निध्रुव और रेभ हुए। रेभसे

रैभ्य और शाण्डिल्य ऋषि उत्पन्न हुए। उनका वंश भी विख्यात हुआ और खूब चला। इस कुलके कश्यप, अवत्सार और असित यह तीन प्रवर हैं। इसी वंशमें वशिष्ठ हुए और उनका वंश भी चला। जिस कुलमें ऐसे महापुरुष उत्पन्न हुए, धन्य है उस कुलको और धन्य है उसके आदि पुरुष महात्मा कश्यप को! अपने ब्रह्मत्व बलसे उन्होंने अनेक कार्य्य किये और आज यद्यपि उनका पार्थिव शरीर विद्यमान नहीं है तथापि संसारमें उनका नाम अमर है।

देवगुरु बृहस्पति।

बृहस्पति इन्द्रादि देवोंके आचार्य्य थे। वशिष्ठ ऋषि की तरह इनका जन्म भी दो बार हुआ था। प्रथम जन्म स्वयम्भू मन्वन्तरमें हुआ था। पिताका नाम अङ्गिरा ऋषि और माताका नाम श्रद्धा था। उतत्थ्य और सम्वत नामक दो भाई और सिनीवाली, अनुमति इत्यादि चार बहिनें थीं।

दूसरा जन्म इस वर्तमान वैवस्वत मन्वन्तरमें हुआ था +। इस बार भी उनके पिता अङ्गिरा ही थे, परन्तु माताका नाम सुरूपा था। शान्ति, विरूप और सुधन्वादि आठ भाई तथा शुभा और तारा नामक दो स्त्रियां थी। शुभासे भानुमति, महिष्मति, महामति इत्यादि सात कन्यायें और तारासे कच, विश्वजित इत्यादि सात पुत्र और स्वाहा नामक एक कन्या उत्पन्न हुई थी!

देवर्षि बृहस्पति वेद विद्यानिधि और मल्लशस्त्रादि कलाओंमें परम प्रवीण थे। वह महा तेजस्वी, सुन्दर, बुद्धिमान उत्साही वक्ता और गुणवान थे। व्यवहार और नीतिका उन्हें विशेष

+ब्रह्माने सृष्टि विस्तार करनेके लिये स्वयम्भूमन्वन्तरमें दस प्रजापति या मानस पुत्र उत्पन्न किये थे; परन्तु महादेवके शापसे उनका नाश हो गया था। अपने उद्देश्यकी सिद्धिके लिये ब्रह्म देवने वैवस्वत मन्वन्तरमें पुनः उन्हें उत्पन्न किया था।

ज्ञान था। अनेक शिष्य उनके निकट विद्याभ्यास किया करते थे।

देवाचार्य्य बृहस्पति और दानवाचार्य्य शुक्रमें बारम्बार विरोध हो जाता था। बृहस्पति अपने शिष्योंको अनेक प्रकार की सहायता दे दानवोंको पराजित कराते थे। उन्होंने एक स्मृति ग्रन्थकी रचनाकी थी और वह बृहस्पति स्मृतिके नामसे विख्यात है।

स्मृतिके अतिरिक्त कुछ नास्तिक मतके ग्रन्थ भी उनके नामसे प्रसिद्ध हैं। चार्वाक मतके प्रचारक भी वही बतलाये जाते थे। कुछ लोग उन्हींको चार्वाक समझते हैं और कुछ चार्वाकको उनका शिष्य बतलाते हैं। इस महात्मा पुरुषको यह निन्दनीय कार्य्य क्यों करना पड़ा, इस विषयमें एक आख्यायिका भी प्रचलित है।

कहते हैं, कि देव और दानवोंमें सामातीत द्वेष बढ़ गया था। असुर कैलाशवासी शिवको मानते थे और शिव रचित तंत्र ग्रन्थोंके अनुसार आचरण करते थे। एकबार चीन निवासी असुर त्रिविष्टप—तिब्बत आये और कैलाशारोहण कर शिव को पूजनादिसे प्रसन्न किया। शिवने जब उन्हें इच्छित वर माँगनेको कहा, तब वे बोले कि देवताओंको विश्वकर्माने विमान बना दिये हैं, और उनमें बैठकर वह सर्वत्र विचरण करते हैं आप हमें अद्भुत और अभेद्य विमान बनवा दीजिये जिसमें हम सब लोग रह सकें और इच्छित स्थानोंमें जा सकें।"

महेश्वरने "एवमस्तु" कह मयासुरको आज्ञा दी और इसने सुवर्ण रौप्य तथा लोहेके तीन अद्भुत और अभेद्य विमान तय्यार कर दिये। वह विमान इतने बड़े थे कि इनमें एक एक नगरका का समावेश हो सकता था। शिवके अतिरिक्त उनको नष्ट करनेकी किसीमें सामर्थ्य न थी। वेही तीन त्रिपुरके नामसे विख्यात हुए।

दानवगण इन्होंमें निवासकर सर्वत्र विचरण करने लगे। उनके यह विमान देवताओंके विमानोंसे श्रेष्ठ थे अतः इन्हें अभिमान आ गया और वह देवताओंको कष्ट देने लगे। जब उनका अत्याचार बहुत बढ़ गया तब इन्द्रादि देवताओंने एकत्र हो निश्चय किया, कि किसी प्रकार शिव और असुरोंमें वैमनस्य करा देना चाहिये। यदि ऐसा हो तो अनायास ही उनका विनाश हो सकता है। बहुत कुछ सोचनेके बाद स्थिर हुआ, कि किसी प्रकार उनको नास्तिक बना देना चाहिये। जब वह नास्तिक बन जायंगे तो शिव उनका अस्तित्व अवश्य मिटा देंगे।

यही बात ठीक रही और कार्य्यका सारा भार बृहस्पति को दिया गया। बृहस्पतिने एक कपट शास्त्रकी रचना की जिस में जीव दया और निरीश्वर वादकी पुष्टि की गयी। जीव दया की शिक्षा उन्हें इस लिये दी गयी, जिसमें वे देवताओंको कष्ट न दें और निरीश्वरवादी इसलिये बनाये गये; जिसमें शिव उनसे अप्रसन्न हो जायँ और उनका नाश करदें।

निदान वृहस्पति और उनके सहायक असुरोंको नास्तिक बनानेकी चेष्टा करने लगे। अनेक उपदेशक उनके पास जा जा कर उपदेश देने लगे। वह कहने लगे—'अहो! क्या तुम आत्माको नहीं जानते? शरीरही प्रत्यक्ष आत्मा है। अन्न ब्रह्म स्वरूप है। उसीसे शरीर उत्पन्न हुआ है अतः शरीरही ब्रह्म है। किसीको किसीके शरीरपर आघात न करना चाहिये। जो किसीकी देह रूपी आत्माको कष्ट देता है, उसे दुःख भोग करना पड़ता है। वेदमें जो पुत्रात्मावाद है, वह देहात्मावादसे अभिन्न है। देह अन्न मय कोश है और इसीको वेदमें ब्रह्म कहा है। देह रूपी आत्माका धार्मिक विधिके निमित्त भी नाश न करना चाहिये। वेद और तन्त्रोंमें जो हिंसा विधान है वह निर्दय और दुष्टोंका कथन है। जो हिंसा करनेमें पुण्य, समझते हैं, वह बड़े ही दीन हैं। यदि हिंसासे पुण्यकी प्राप्ति होती हो तो विष पान से अमरत्व प्राप्त होना चाहिये। दीपकसे दीपक जलाया जा सकता है, अन्धकारसे नहीं। दयासे धर्म होता है, हिंसासे नहीं। हिंसासे तो सर्वथा पापही होता है। जो प्रत्यक्ष देह-रूपी आत्माका विनाश करते हैं और अप्रत्यक्ष देव पितृका यजन करते हैं, वह गङ्गाके प्रवाहको छोड़ शुष्क सरोवरका आश्रय ग्रहण करनेकासा काम करते है। जो शरीर नष्ट हो चुका वह पुनः प्राप्त नहीं होता। केवल ब्राह्मणोंको मारनेहीसे ब्रह्महत्या नहीं लगती, बल्कि प्राणी मात्रको मारनेसे वैसाही दोष लगता है!

इस प्रकार अनेक वेशधारी उपदेशकों द्वारा बृहस्पतिने अहिंसाके साथही साथ निरीश्वरवादका भी प्रचार कराया। उन उपदेशकोंने प्रकृत ब्रह्मको छोड़ असुरोंको पांच प्रकारसे ब्रह्मका ज्ञान कराया। किसीने शरीर किंवा अन्नमय कोशको, किसीने प्राणवायु किंवा प्राणमय कोशको; किसीने मनोमय कोशको, किसीने बुद्धिमय कोशको और किसीने आनन्द मयकोशको ब्रह्म बतलाया। साथही उन्होंने कहा, कि पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु यह चार तत्व हैं। इन्हींसे संसार उत्पन्न हुआ है। जगत कर्त्ता ईश्वर नहीं हैं। शरीरमें जीव भी नहीं है। शरीरमें जो चेतना है, वह चार तत्वोंके संमिश्रणसे उत्पन्न हुई है। केवल प्रत्यक्ष प्रमाणसेही प्रमेय वस्तुका ज्ञान होता है।

उपदेशकोंके सतत उपदेशसे असुरोंने उनकी बात मान ली। वे सब नास्तिक बन गये और परमात्माकी उपासना छोड़ बैठे। कुतर्कोंके प्रभावसे वह वेदोक्त धर्म्मके विचारोंको भूल गये। जीवोंपर दया रखने लगे, परन्तु परमात्माको मानना छोड़ दिया। यह विष बीज बोकर बृहस्पति और उनके सहायक गण असुरोंके नाशकी प्रतीक्षा करने लगे। असुरोंकी नास्तिकता देख शीघ्रही शिव असन्तुष्ट हो गये। उन्होंने उनके साथही उनके तीन पुरोंका भी नाश कर दिया। जिन्होंने शिव धर्म्म अङ्गी कृत किया वही जीवित रह सके। त्रिपुरको नष्ट किया अतः उस दिनसे शिव त्रिपुरारि, त्रिपुर-हर इत्यादि नामोंसे भी पुकारे जाने लगे।

शिवधर्मके मुख्य सिद्धान्त इस प्रकार हैं—जगतका कर्ता एक ईश्वर है। यह ज्ञान इच्छा और क्रिया। इसने तीन शक्तियोंसे जगतकी रचना करता है और जीवोंको उनके कर्मानुसार सुख दुःख देता है।

शैवमतका अनुसरण कर गौतम और कणाद मुनिने तर्क शास्त्रोंकी रचना की है। इस मतको मानने वाले अनेक पण्डितोंने अपने ग्रन्थोंमें नास्तिक मतका खण्डन किया है। उन्होंने बौद्धमतका भी विरोध किया था।

महात्मा बृहस्पतिको देवता गण पूजनीय मानते थे। उनका गौरव भी असाधारण था देवताओंके अतिरिक्त बड़े बड़े ऋषि-मुनि और राजवंशी भी उनके आधीन थे। उन्होंने प्रजा-हितके अनेक कार्य्य किये थे। अतः आर्य्यावर्त्तमें यह एक तेजस्वी नक्षत्र गिने गये थे। आज भी आकाशमें उनका चिह्न स्वरूप बृहस्पति नामक नक्षत्र वर्तमान है। सप्तऋषियोंके मण्डलमें भी उनकी नियुक्ति हुई थी। संसारमें उनका पवित्र नाम अमर रखनेके लिये भारत निवासियोंने एक दिवसका नाम "बृहस्पतिवार" रखा है। उसेही लोग गुरुवार भी कहते हैं। यावच्चन्द्र दिवाकरौ उनकी यह कीर्ति नष्ट न होगी।

देवर्षि नारद ।

स्वायम्भू मन्वन्तरमें प्रजोत्पत्तिके लिये ब्रह्मदेवने दश मानस पुत्रोंको प्रजापति नियत किया था। महामुनि नारद भी उन्हींमें एक थे, परन्तु उन्होंने प्रजोत्पत्ति करनेसे इन्कार कर अविवाहित रहना स्वीकार किया था। वह सदा ब्रह्मचारी और विरक्त दशामें रह, परमात्माके ध्यान और भजन कीर्तनमें निमग्न रहते थे। इनका लालन-पालन मनुके यहां और शिक्षा-दिक्षा ब्रह्माके आश्रयमें हुई थी। शैशवावस्थामें वह अप्रसिद्ध रहे, परन्तु अपनी प्रबल बुद्धिके प्रतापसे यथा समय वह योगेश्वर और विद्वानके रूपमें शरच्चन्द्रकी तरह संसारमें चमक उठे।

देवर्षियोंमें नारद प्रधान थे। वह धर्म्मिष्ठ, उत्साही, परदुःखकातर, बुद्धिमान, नीतिज्ञ, वक्ता, चतुर, भविष्य-वक्ता और तत्वज्ञ थे। देखनेमें वह सरल और प्रसन्न मालूम होते थे। साथही वह बड़े मौजी और दिल्लगीबाज थे। किसी शुभाशुभ हेतुसे अथवा तरङ्ग आने पर अकारणही वह प्रपञ्च रचना कर लोगोंको लड़ा देते और बादको सारा भेद खोल देते। इसी ढंगसे वह अपना और लोगोंका मनोरंजन करते थे। इनके यह षडयन्त्र सबको प्रिय लगते थे। वे इच्छानुसार त्रैलोक्यमें

विचरण कर सकते थे। ईश्वरके ध्यान और सङ्गीतकी तानमें सदैव मग्न रहते थे। देव, ऋषिमुनि और लोकपालोंके पारस्परिक सन्देश पहुँचानेमें वह बड़े विलक्षण थे। यह कला तो मानो उन्हींके बांटे पड़ी थी। आज भी इधरकी उधर और उधरकी इधर लगाकर दो मनुष्योंको लड़ा देने वाला "नारद" की उपाधिसे विभूषित किया जाता है।

रोते हुए को भी हंसा देना, नारदके बायें हाथका खेल था। इस कालमें वह बड़ेही निपुण थे। उनका वर्ण गेहुवां था। शिर पर बड़ा सा जटा-जूट था। कोई कोई कहते हैं, कि केवल शिखा थी और वह खड़ीही रहती थी। प्रथम उनका आश्रम यमुनाके तटपर था, बादको वह त्रैलोक्यमें विचरण किया करते थे। सङ्गीत शास्त्रमें वह बड़े प्रवीण थे। उनकी कण्ठ ध्वनि मोहक और मधुर थी। अनेक बार ऋषि मुनियोंको गान तान सुनाकर उन्होंने स्तब्ध कर दिया था।

नारद समर्थ वक्ता भी थे। श्रोताओंके हृदय पर उनके उपदेशका बड़ा प्रभाव पड़ता था। उनका व्याख्यान गान तान से युक्त होता था। ऐसे वक्तव्यका तत्काल प्रभाव पड़ता है। लोग एकाग्र हो, उपदेश सुनते हैं। नारदको भी यही नियम पसन्द था। वह सर्वत्र भ्रमण किया करते और धर्म्म नीति, तथा ईश्वरके विषयपर उपदेश देते। सभी लोग उनका उपदेश सुननेको आतुर रहते थे। कभी कभी रात्रिके समय भी उनकी मधुर तान सुनायी देती थी।

उत्तम ज्ञान और श्रेष्ठ वक्तृत्व शक्तिके कारण उन्होंने ऋषि मुनियोंके हृदयमें भी स्थान बना लिया था। सभी उनपर प्रेम रखते और सन्मानकी दृष्टिसे देखते। वह सदा विरक्त रहते देव, दानव और मानव सभी उनकी बात मानते। देव-सभा और राज सभामें उनका समान आदर होता था। अकस्मात वीणा बजाते हुए उनका आगमन होता था। उन्हें ईश्वर कीर्तनपर बड़ा प्रेम था। विष्णु भगवानको वह बड़े प्रिय थे। उनकी गुप्त मन्त्रणामें भी भाग लेते, यहां तक, कि लोग उन्हे विष्णुकी आत्मा समझने लगे थे।

नारदने अनेक लोगोंको विद्या-ज्ञान दिया था। साठ हजार ब्राह्मण उनके शिष्य थे। नारद पञ्चरात्रि नामक उन्होंने ब्रह्म ज्ञान विषयक एक श्रेष्ठ ग्रन्थकी रचना की है। उसकी मूल प्रति नहीं मिलती। इस समय जो लभ्य है, उसमें बड़ी मिला वट और बहुत कुछ परिवर्त्तन हो गया है। इसके अतिरिक्त उन्हों-ने धर्म शास्त्र (स्मृति) तीर्थ स्थान और सङ्गीत विषयक ग्रन्थोंकी रचना की है। उनके नामका एक पुराण भी है। रामकी सभामें कतिपय धर्म्म शास्त्री थे, उन्हींमें नारद भी थे। कुबेर की सभामें भी उनकी गति थी।

युधिष्ठिरको नारदने इन्द्रादि लोकपालोंकी सभाका वर्णन और नीति ज्ञान सुनाया था। उनकी नीति भी विख्यात है। समझाने बुझानेमें वह बड़े प्रवीण थे। विष्णुसे लक्ष्मीका विवाह उन्होंने कराया था। विष्णुकी आज्ञानुसार उन्होंने

इन्द्रको समझाया था और पुरूरवाको उर्वशी वापस दिलायी थी। जालन्धर दैत्य जो अपनी स्त्री वृन्दाके सतीत्वसे उन्मत्त हो, उत्पात करता था, उसे भी नारदनेही मरवाया था। कृष्णावतारके विषयमें जो आकाशवाणी हुई थी, उसपर कंसको इन्हीं-ने विश्वास दिलाया था। विष्णुको कंसके विनाशार्थ कृष्णावतार लेनेके लिये इन्हींने समझाया था।

नारद भविष्यवक्ता भी थे। वासवदत्ताका पुत्र विद्याधरका अधिपति होगा—यह उन्होंनेपहले ही बतला दिया था। सावित्री के सतीत्व और सत्यवानके आयुष्यकी बात भी उन्होंने कह दी थी। इसी प्रकार सीता और सती पार्वतीके होनहार पतिको भी उन्होंने स्पष्ट कह दिया था।

चित्रगुप्तके पुत्रका शोक शमनकर उसे नारदने ब्रह्मज्ञानका उपदेश दिया था। ध्रुव और ऋतुध्वजके भी उन्होंने कार्य्य किये थे। जो संसारसे विरक्त हो, ईश्वरपर दृढ़ प्रीति रखता है और स्थिर चित्तसे उसका चिन्तन करता है, वह अवश्य बन्धन मुक्त हो जाता है। परन्तु सर्व प्रथम एक पथ-प्रदर्शक चाहिये सत्य पथका ज्ञान सद्गुरुसेही प्राप्त होता है। सत्सङ्गका प्रभाव ही अलौकिक है। साधु सङ्गतिकी महिमा अपार है। महात्माओंके सङ्गसे उत्तम पदकी प्राप्ति होती है, चित्त सत्कर्म करनेके लिये प्रेरित होता है। फलतः लोक परलोकमें सुख मिलता है। इस विषयमें नारदका ही दृष्टान्त बस होगा।

एक दिन वीणापाणि नारद कीर्तन करते हुए व्यास मुनिके

आश्रम गये। व्यासने यथोचित सत्कार कर बैठनेको आसन दिया और पूजनादि कर भक्ति-प्रदर्शित की। नारदने उन्हें कुछ अप्रसन्न देखकर कहा—"ब्रह्मर्षि! आपने विस्तृत और ज्ञानगम्य महाभारतकी रचना की, ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया, फिर भी आपके हृदयमें शोकानल क्यों प्रदीप्त है? मालूम होता है, कि अभी आप सन्तुष्ट नहीं हुए।"

व्यासने कहा,—देवर्षि! आपने जो कहा वह सर्वथा सत्य है। यद्यपि मेरी आत्माको शान्ति नहीं मिली, परन्तु मै नहीं जानता, कि ऐसा क्यों हो रहा है?

नारदने कहा—"मैं समझता हूं कि आपने महाभारतमें हरि गुण-कीर्तन नहीं किया, इसीसे आपका चित अशान्त रहता है। जिसके गुण-गानसे पृथ्वी पवित्र होती है, भक्तगण जिसका स्मरण और ध्यान करते हैं, जिसके चरणारविन्दके ध्यानमें योगेश्वर भी लीन हो जाते हैं; आपने उस परमात्माका गुण गान नहीं किया।"

व्यासने कहा—नारद! आपका कथन सर्वथा सत्य है। मैंने वास्तवमें ऐसाही किया है। अब आप उपाय बतलाइये।

नारदने उन्हें चार श्लोक सुना कर कहा, कि इस विषयको लेकर भगवत् लीला वर्णन करिये, आपको अवश्यशान्ति मिलेगी। ईश्वर कृपासे मुझे अपने पूर्व जन्मका वृतान्त याद है। आपके मनोरञ्जनार्थ इस समय मैं उसे सुनाता हूं—सुनिये।

"पूर्व जन्ममें मैं एक मुनिकी दासीका पुत्र था और उन्हींके

आश्रममें रहता था। चतुर्मासमें वहां अनेक साधु आते थे। एक बार सनकादिक ऋषि आये। मैं उनकी सेवामें रक्खा गया और सेवा करने लगा। मुझे मितभाषी, जितेन्द्रिय और शान्त देखकर महात्मा प्रसन्न रहने लगे। उनका उच्छिष्टान्न खानेसे मेरा चित्त पवित्र हो गया। चित्त पवित्र हो जानेसे मुझे धर्म्म पर रुचि उत्पन्न हुई। तबसे मैं प्रति दिन हरिकीर्तन श्रवण करने लगा। हरिकीर्तन श्रवण करनेसे मेरा अनुराग और भी बढ़ गया। अन्तमें ऋषि मुनि जिस परमात्माका गुण गान करते थे, उसके प्रति भक्ति भाव उदय हुआ और मैं उनका स्मरण करने लगा। उस समय मेरी अवस्था पांच वर्षसे अधिक न थी।"

"दीन वत्सल महर्षियोंने मुझे धर्म्मानुरागी देखकर मन्त्रोपदेश दिया और मैं उसका जप करने लगा। मेरी इच्छा भ्रमण करनेकी थी, परन्तु माता मुझे बाहर निकलने न देती थी। मैं जप तप और प्रतिदिन हरिचरणका ध्यान करता। अन्तमें मैं अपनी माताके साथही देशाटन करने निकला। मार्गहीमें उन्हें सर्पने डस लिया अतः मैं निराधार और स्वतन्त्र हो गया। मैं परमात्माका ध्यान करता हुआ, उत्तरकी ओर अग्रसर हुआ। अनेक समृद्धिशाली देश, सुशोभित नगर, ऊंची अट्टालिकायें और वन, उपवन देखता हुआ मैं एक सरोवरके पास पहुंचा। उस समय मैं क्लान्त हो रहा था। मेरी सब इन्द्रियां शिथिल हो गयी थी और मैं क्षुधासे व्याकुल हो रहा था।"

"श्रान्ति निवारणार्थ मैंने सरोवरमें स्नान किया और जल पान कर उसके किनारे बैठा। समीपही एक पीपलका वृक्ष था। स्वस्थ होने पर मैं उसके नीचे गया और स्थिर चित्तसे परमात्माका ध्यान करने लगा। ध्यान करते करते मेरा जी भर आया और आंखोंसे अश्रुधारा बहने लगी। उसी समय मुझे परमात्माने दर्शन दिया। मैं प्रेमावेशमें आकर मुग्ध हो गया। सारा शोक जाता रहा और मैं उसीमें तन्मय हो गया। दूसरेही क्षण परमात्मा अन्तर्द्धान होगये। मैं तत्काल खड़ा हो गया और पुनः उस मनोहर और तेजोमय मूर्तिके दर्शनकी प्रतीक्षा करने लगा। प्रतिक्षण मेरी आतुरता बढ़ती जा रही थी। चित्त व्याकुल और नेत्र उत्कण्ठित हो रहे थे। अतृप्त रहनेके कारण हृदय भी खिन्न हो रहा था, परन्तु पुनः मैं उस दृश्यको न देख सका। उसी समय आकाश वाणी हुई, परमात्माने मुझे सम्बोधित कर कहा—"वत्स, अब इस जन्ममें तू मुझे न देख सकेगा। योगियोंको भी मेरा दर्शन दुर्लभ है। तेरा अनुरोध बढ़ानेके लियेही मैंने तुझे दर्शन दिया है। साधुपुरुषोंकी तरह कामनाओंका परित्याग कर। महात्माओंकी सेवा कर। मुझपर दृढ़ भक्ति स्थापित कर ऐसा करनेसे मृत्युके बाद तू मेरे लोकमें आ सकेगा और मेरा दर्शन कर सकेगा। तुझे उस जन्ममें भी अपना यह वृतान्त स्मरण रहेगा। यह वीणा ले और मेरा भजन कर।"

"इतना कह परमात्माने मुझे एक वीणा दी और मैं उसीके वादन तथा कीर्तनमें लीन रहने लगा। मैं यह मनाया

करता था कि सत्वर, मेरी मृत्यु हो, जिससे परमात्माका दर्शन प्राप्त करूं।

"विचरण करता हुआ मैं एक दिन शिवी राजाकी राजधानीमें गया। वहाँ राज रानी कैकेयीने मेरी बड़ी अभ्यर्थना की। वहीं पर्वत ऋषिसे साक्षात हुआ। पर्वत ऋषि सौजन्यकी मूर्त्ति थे अतः हम दोनोंमें सौहार्द स्थापित हो गया और मैं वहीं रहने लगा। हम दोनोंने प्रतिज्ञा की, कि हृदयमें जो बात उत्पन्न होगी, वह परस्पर कह दिया करेंगे—छिपायेंगे नहीं। कई वर्ष व्यतीत हो गये। हम दोनोंमें किसी प्रकारका मनोमालिन्य न हुआ।"

"शिवि राजाके दमयन्ती नामक एक कन्या थी। पर्वत ऋषिने उसे वरण करनेकी इच्छा प्रकट की, परन्तु राजाने कहा, कि मैं दमयन्तीका विवाह उसके साथ करूंगा जो अविवाहित होगा। यह सब हाल मुझे मालूम हुआ और मैंने उसकी याचना करनेका निश्चय किया। लज्जावश मैंने यह बात पर्वतसे न कही, परन्तु उन्होंने किसी प्रकार जान ली और मुझे शाप दे विरूप बना दिया। दोष यद्यपि मेरा ही था, तथापि मैंने भी क्रुद्ध हो उन्हें शाप दिया, कि देवलोकमें तुम्हारा आवागमन न हो।

"पर्वत ऋषि मेरा शाप सुन पृथ्वी प्रदक्षिणा करने निकल पड़े और मैं विकृत हो वहीं कालयापन करनेलगा। दमयन्तीने अपने पितासे यह हाल सुन और मेरे विरूप होनेका कारण

अपनेको ही जान, बड़ी दुःखित हुई। उसी दिनसे वह मेरी सेवा करने लगी और मैं ईश्वर भजन करने लगा। कुछ वर्षोंके बाद पर्वत ऋषि पुनः मेरे पास आये। उस समय हम दोनों को पश्चात्ताप हो रहा था अतः परस्परके शाप निवारित किये। मैं पुनः अपने रूपको प्राप्त हुआ और राजाने दमयन्तीका मेरे साथ विवाह भी कर दिया।"
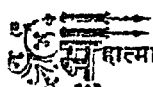
"इसके बाद मैं स्थिर चित्तसे परमात्माका ध्यान और भजन करने लगा। अन्तमें मैंने उस पार्थिव शरीरका त्याग किया और परमात्माकी कृपासे ब्रह्माका मानसपुत्र हो कृतार्थ हुआ। इस जन्ममें मैंने अविवाहित रहनाही पसन्द किया और प्रजापतिका कार्य भी करनेसे इन्कार कर दिया। यही देवदत्त सुमधुर स्वर भूषित वीणा बजाता हूं और सुमधुर स्वरसे ईश्वरका गुणगान कर धर्म्मनीतिका उपदेश देता हुआ संसार भरमें विचरण किया करता हूं। अब जिस समय मैं वीणा बजाकर ईश्वरका गुणगान करता हूं, उसी समय हृदयस्थ परमात्माका मुझे दर्शन होता है। ईश्वरकी कृपासे मुझे यह पूर्व जन्मका वृत्तान्त स्मृतिगत नहीं हुआ और मैं प्रसङ्गवशात् इसी प्रकार लोगोंको यह सुनाता हूं। आज उसी भक्त वत्सल दयामयकी दयासे मेरी त्रैलोक्यमें गति है और मैं इच्छाके साथही चाहे जहां जा सकता हूं।"

नारदका यह जीवन वृतान्त सुनकर व्यासको बड़ी प्रसन्नता हुई और उन्होंने उनके आदेशानुसार भागवतकी रचना कर

शान्ति प्राप्त की। महात्माओंकी सङ्गतिका कैसा प्रताप है और निरन्तर स्थिर चित्त हो परमात्माका ध्यान करनेसे क्या लाभ होता है यह नारदकी जीवनीसे प्रत्यक्ष ज्ञात होता है। नारदने अपने आत्मबल और अध्यवसायसे उच्चपद प्राप्त किया और लोक हितके अनेक कार्य्य किये। आजीवन उन्होंने ईश्वर भक्तिकी और अन्तमें परमपदको प्राप्त किया।

महर्षि गौतम ।

महात्मा गौतम प्रजापति अङ्गिराके पौत्र थे। उनका जन्म त्रेताके आरम्भ कालमें हुआ था। उनके पिता का नाम दीर्घतमा ऋषि और जन्म स्थान हिमालय प्रदेश था। उन्होंने वेदादि शास्त्रोंका अध्ययन बाल्यावस्थामें ही कर लिया था। वह महा तेजस्वी, महान विद्वान, तत्वज्ञ, तपनिधान, प्रतिभाशाली, शोधक और सिद्धिवान थे। न्याय, तर्क रसायन, पदार्थ पृथक्करण इत्यादि तत्वोंकी उन्होंने खोज की थीं। दीर्घकालीन तपश्चर्या द्वारा उन्होंने तप समृद्धि प्राप्त की थी, और अपनी प्रबल शक्तिसे उन्नतावस्थाको प्राप्त हुए थे। ऋषि मुनियोंमें वह श्रेष्ठ गिने जाते थे और सप्तऋषियोंमें उनकी नियुक्ति हुई थी।

गौतम ऋषिकी धर्म पत्नीका नाम अहिल्या था। उनकी गणना महा सतियोंमें होती थी। स्वयंवरमें इन्द्रादिको छोड़कर उन्होंने गौतमको वरण किया था। पति पत्निमें गहरा प्रेम था, परन्तु दैवेच्छासे पति द्वारा शापित हो वह शिला हो गयी थीं। गौतम भी इस आकस्मिक घटनासे खिन्न हो गये थे उन्होंने प्रियपत्नीको पुनः प्राप्तितक हिमालयमें तपस्या कर कालयापन

किया था। भगवान् रामचन्द्रके उद्धार करनेपर पतिपत्नीका पुनर्मिलन हुआ था।

पहले गौतमका आश्रम प्रयागके पास था। बादको वह मिथिलाके अरण्यमें रहने लगे थे और अहिल्यासे वियोग होनेपर हिमालय चले गये थे। जब उनकी पुनः प्राप्ति हुई तब वहांसे लौट आये और वरुणकाननमें आश्रम स्थापित कर वहीं रहने लगे थे। वहां उन्होंने दीर्घकाल पर्य्यन्त तपस्या की थी। आज भी वह स्थान गौतमाश्रमके नामसे प्रसिद्ध है और तीर्थोंमें उसकी गणना होती है।

कनायन और निश्चाली नामक उनके दो प्रधान शिष्य थे। उनके अतिरिक्त और हजारों शिष्य थे, जो विद्याभ्यास किया करते थे। उनके शतानन्द और चिरकारी नामक दो पुत्र और अञ्जनी नामक एक कन्या थी। इसी अञ्जनीके उदरसे हनुमान का जन्म हुआ था। गौतम ऋषिने एक स्मृति ग्रन्थकी रचना की थी, जो गौतम स्मृतिके नामसे विख्यात है। उसके अतिरिक्त उन्होंने न्याय शास्त्रका प्रणयन किया था। उसे न्याय दर्शन या गौतम दर्शन भी कहते हैं। न्याय विद्या सब विद्याओंमें प्रदीप स्वरूप है। सभी कर्म्मोंका उपाय और निखिल धर्म्मका आश्रय है। न्याय दर्शनमें पांच अध्याय हैं। प्रत्येक अध्यायमें दो आन्हिक है और प्रत्येक आन्हिकमें अनेक प्रकरण हैं।

न्याय दर्शनानुसार जीवात्मारिक्त एक परमेश्वर है। उसे

भोग साधनका शरीर है न दुःख सुख न द्वेष। केवल नित्य ज्ञान—इच्छादि गुणोंसे वह युक्त हैं। उसकी शक्ति असाधारण है और वही समस्त जगतका कर्ता है। वेदादि शास्त्र और अनुमानादि उसके प्रमाण हैं।

न्याय शास्त्रका सब शास्त्रोंमें उपयोग है। देवाचार्य्य वृहस्पतिने कहा है, कि जो तर्क शास्त्रानुसार तात्पर्य्यार्थकी खोज करता है वह शास्त्रके मर्म्मज्ञान और धर्म निर्णयमें समर्थ होता है। गौतमके न्याय शास्त्रमें युक्तिप्रधान है। युक्तिके चिन्तवन से मनुष्यकी बुद्धि तीव्र होती है। बुद्धि तीव्र होनेसे मनन कार्य्यमें सुविधा होती है और मनन करनेसे सत्य सिद्धान्त स्थिर किये जा सकते है। सत्य सिद्धान्तके योगसे आत्मा परमात्मा का सत्य ज्ञान होता है और फलतः मोक्षकी प्राप्ति होती है।

न्याय शास्त्रमें पण्डितोंकी सभामें वाद विवाद करनेकी रीति भी बतलायी गयी है। तर्क शास्त्रका समावेश न्यायशास्त्रही में हो जाता है। पृथ्वी पदार्थोंके परमाणु मिश्र होनेसे बनी है प्रत्येक परमाणु नित्य और स्थायी है—उनका नाश नहीं हो सकता जिसका नाश नहीं हो सकता उसे तत्व कहते हैं, अतः परमाणु भी तत्व है, परन्तु परमाणुओंसे जो पदार्थ बनते है वह अनित्य होते हैं। उनका नाश अवश्यम्भावी है। इसी प्रकार न्यायशास्त्रमें तत्वादिककी व्यवस्था की गयी है। रसायन विद्याका भी उसमें यथार्थ वर्णन है। इन विषयोंके अतिरिक्त भी उसमें अनेक मननीय विषयोंपर विवेचन किया गया है

न्याय शास्त्रमें बतलाया है कि मोक्ष प्राप्तिके लिये तत्वज्ञान होना चाहिये। तत्व ज्ञानसे दुःख, जन्म, प्रवृत्ति दोष और मिथ्या ज्ञानका उत्तरोत्तर नाश और फलतः मोक्षकी प्राप्ति होती है। तत्वज्ञान होनेके लिये बतलाया गया है, कि प्रमाण प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रह स्थान, इन सोलह साधनोंसे काम लेना चाहिये। न्याय शास्त्रमें इन विषयोंपर विस्तार पूर्वक विचार किया गया है।

न्यायसे तत्व ज्ञान होता है। तत्वज्ञानसे मिथ्याज्ञानका नाश होता है। उसके नाशसे दोष नष्ट होता है और दोष नष्ट होनेसे प्रवृत्ति रुक जाती है। प्रवृत्तिके रुकनेसे जन्म नहीं होता और जन्म न होनेसे दुःखकी सर्वथा निवृत्ति होती है। दुःखकी निवृत्तिकोही मोक्ष कहते हैं।

न्याय मतमें बौद्ध और जैनादिकों द्वारा प्रमाणित मोक्ष स्वरूपका खण्डन और अपने मतका प्रतिपादन किया गया है। साथ ही जगत कर्त्ता परमेश्वर और उसके वचन स्वरूप वेद, दोनों का अनुमान तथा शब्द प्रमाणसे स्वीकार किया गया है। गौतमके न्यायमें सृष्टिके पदार्थोंका पृथक्करण कर उनकी उत्पत्ति तथा स्थितिके विषयमें निर्णय कर मोक्ष साधन सम्बन्धी ज्ञान दिया गया है। दक्षिणमें द्राविड़, तैलङ्ग और उत्तरमें नदिया काशी प्रभृति स्थानोंमें आज भी न्याय शास्त्रका पठन पाठन होता है।

जीव और आत्माके विषयमें गौतमने बतलाया है, कि जीव और आत्मा अभिन्न है। अज्ञानतासे आत्मा जीव बन गया है। ज्ञान प्राप्तकर भक्ति करनेसे वह शुद्ध हो परमात्म में लीन हो जाता है। आत्मा प्रकृति रहित और स्वतन्त्र है। सारा-सार विचार करना यही उसका गुण है। इसी मूल तत्वसे धर्म माना गया है। धर्म्म माननेकी इच्छा हमारे हृदयमें वर्त-मान है। यही हमारा स्वतन्त्र और पवित्र गुण है।

ईश्वरके विषयमें बतलाया है, कि जगत करता परमेश्वर अनादि और स्वतन्त्र है। उसने कारणरूप तत्वोंको उत्पन्नकर इस कर्म्मरूप जगतकी रचना की है। वह स्फुर्णरूपी सङ्केतसे जीवों द्वारा कर्म्म करता है। उसीकी कृपासे ज्ञानकी प्राप्ति होती है। ईश्वरदत्त ज्ञानकी श्रद्धासे आशा फलीभूत होती है। वह दृश्य और अदृश्य फलोंका दाता है। उसके अतिरिक्त और कुछ भी श्रेष्ठ नहीं है। मोक्ष-पदमें काया और जगत मिथ्या प्रतीत होता है। केवल ज्ञान स्वरूप आत्मा स्थायी है। वह चैतन्य स्वरूप है। चैतन्यका दृश्य निराकार है—इत्यादि।

गौतम न्यायशास्त्र सर्वमान्य है। गदाधरी, जांगदेशी अनुमान, चिन्तामणि इत्यादि ग्रन्थोंमें न्यायके एकही एक खण्ड पर विस्तार पूर्वक विचार किया गया है। न्याय सूत्रपर वात्सायन का भाष्य है। न्याशास्त्रके विषयमें माउण्ट स्टुअर्ट एलफि-न्स्टन साहब लिखते हैं, कि न्याय ब्राह्मणोंका बड़ाही प्रिय

विषय है। उन्होंने उसपर अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। अतः उसकी अनेक शाखायें हो गयीं हैं परन्तु गौतम और कणादका दर्शन शास्त्रही उन सबका उत्पत्ति-स्थान है। गौतमने अतोतेन्द्रिय पदार्थोंका कणादने इन्द्रिय गोचर पदार्थोंका न्याय से विचार किया हैं। यद्यपि वह दोनों कितनीही बातोंमें एक दूसरेसे भिन्न हैं, तथापि उन्हें एक दर्शनके दो भाग मान लेना अनुचित नहीं, क्योंकि उनसे पारस्परिक विषयोंको परिपुष्टि होती है।
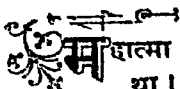
गौतम ऋषिके तप-प्रभावसे गोदावरी नदी गौतम गङ्गा कही जाती है। उसकी महातीर्थोंमें गणना होती है और कार्तिक मासमें जब सिंहके बृहस्पति होते हैं, तब वहां कई लाख मनुष्य स्नानार्थ एकत्र होते हैं। महात्मा गौतमने निमि राजा को एक महायज्ञ कराया था, जो कई वर्षोंमें समाप्त हुआ था। गौतमाश्रममें अहिल्या ह्रद् नामक एक तीर्थ भी है। उसके पास ही भिन्नमाल नामक नगर है जो पहले श्रीमालके नामसे विख्यात था। गौतम ऋषिका वंश भी खूब चला था। वे ऐसे प्रतापी थे, कि नित्य नया अन्न तय्यार कर भोजन करते थे। प्रातःकाल वे जो बीज वपन करते, वह मध्यान्हतक फलफूल कर परिपक्व हो जाता। सायङ्काल उसे वे काट लेते और दाने निकाल उसीका भोजन बनाते। एक इसी बातसे उनकी सामर्थ्यका पता चलता है। वास्तवमें वे बड़े ज्ञानी, रसायन शास्त्री और सिद्ध थे।

महामति गौतमके अपूर्व ज्ञानमय ग्रन्थको यूरोपियन विद्वान भी प्रशंसा करते हैं और उसके सन्मुख शिर झुकाते हैं। जिसके तत्व ज्ञानकी समता विश्वविख्यात यूनानी तत्व-वेत्ता अरिस्टोटल और गैलीलियो भी नहीं कर सकते, जिसके अस्तित्वको आज सहस्रावधि वर्ष व्यतीत हो जानेपर भी जिसके शास्त्रोंका अध्ययन भारतकी वैदिक पाठशालाओंमें बराबर हो रहा है, जिसके एकही शास्त्रने भारतकी ज्ञान सम्पत्तिमें यथेष्ट वृद्धि कर दी है, और जिसके पुत्र न्याय दर्शन जैसा अमूल्य शास्त्र पैत्रिक सम्पत्तिमें पाकर साभिमान अपना शिर ऊंचा रख सकते हैं, वे परम प्रतापी महात्मा गौतमको धन्य है! जिसका उज्ज्वल यश संसार भरमें व्याप्त हो रहा है, उस ब्रह्मर्षिको बारम्बार प्रणाम है।

अगस्त्य ऋषि

महात्मा अगस्त्यका जन्म वैवस्वत मन्वन्तरमें हुआ था। पुराणोंमें उनके जन्मका बड़ाही विचित्र वर्णन दिया गया है। उनके पिताका नाम था मित्रावरुण। मित्रावरुण महातपस्वी और सिद्धिप्राप्त ऋषि थे। जप, तप, ब्रह्म ध्यान, अनुष्ठान इत्यादि क्रिया कर्म्मोंमें वह बड़े निपुण थे। उनका आश्रम समुद्रके तीर पर था। समुद्र किसी दिन उनके वस्त्र, किसी दिन आसन किसी दिन कमण्डल और किसी दिन पात्र खींच ले जाता था। यह देखकर मित्रावरुणको बड़ा क्रोध आया और उन्होंने एक ऐसा पुत्र उत्पन्न करनेका विचार किया जो समुद्रका अस्तित्व मिटा दे। निदान उन्होंने मृत्तिकाका एक कुम्भ बनाया और उसमें अपना वीर्य्य स्थापित किया। यथा समय उस कुम्भसे एक तेज पुञ्ज, सुन्दर और यज्ञोपवीत युक्त बालकका जन्म हुआ। वह अगस्त्य और कुम्भसे उत्पन्न हुआ अतः कुम्भज नामसे विख्यात भी हुआ।

अपने पिताके आदेशानुसार अगस्त्यने काशी जा कर वहीं विद्याभ्यास किया। वह संसारसे विरक्त रहना चाहते थे परन्तु उनके पिताने उन्हें वंश-रक्षा करनेकी आज्ञा दी, अतः वे

अपने योग्य रूप गुण सम्पन्न कन्या रत्नकी खोज करने लगे। स्थिर चित्तसे ध्यानस्थ हो, उन्होंने संसार भर छान डाला, परन्तु जैसी चाहते थे वैसी सुन्दरी उन्हें न दिखाई दी। उस समय विदर्भ देशका नरेश पुत्र प्राप्तिके लिये तपस्या कर रहा था। उसकी स्त्री गर्भवती भी थी। अगस्त्यने अनेक प्रबल तपोबलसे उस गर्भके पुत्रको कन्याके रूपमें परिवर्तित कर दिया और उसमें इच्छानुसार रूपराशि स्थापित कर दी।

यथा समय रानीके गर्भसे कन्या उत्पन्न हुई। राजाको यह देखकर बड़ा आश्चर्य्य हुआ। पुत्रकी मुद्रा लुप्त हो कन्या उत्पन्न हुई अतः उन्होंने उसका नाम लोपामुद्रा रक्खा। लोपामुद्रा जब बड़ी हुई, तब महाराजने उसका स्वयंवर करना स्थिर किया, परन्तु इतनेमें अगस्त्यने आकर उसकी याचना की। लोपामुद्राने भी आपत्ति न कर प्रसन्नता प्रकट की, अतः राजाने उसका विवाह उन्हींके साथ कर दिया। मुनि-पत्नि सह काशी क्षेत्रमें आये और गार्हस्थ्य धर्म्मका पालन करने लगे। लोपामुद्रा विदुषी, सद्गुणी और पतिव्रता स्त्री थी। उसने ऋग्वेदके कितनेही मन्त्रोंकी रचना की थी। इसीसे उसकी योग्यताका अनुमान किया जा सकता है।

महात्मा अगस्त्य महा तेजस्वी, पराक्रमी, तत्ववेत्ता, परोपकारी, बुद्धिमान, और चतुर थे। उनका शरीर स्थूल और अधिक ऊंचा न था धनुर्विद्याके वह प्रवीण पण्डित थे, और धनुर्बाण सर्वदा अपने साथ रखते थे। धर्म्म-निन्दक,

प्रजापीड़क, अधर्मी और क्रूर राजाको वह शस्त्र धारण कर दण्ड देते थे। अधर्मी और उनके सहायकोंसे युद्ध कर उन का संहार करते थे।

युद्ध अगस्त्यका नित्यकर्म न था, परन्तु धर्म और प्रजाके संरक्षणार्थ प्रसङ्गवशात् वे क्षात्रकर्म करते थे। जब अत्याचारी और डाकुओंका प्राबल्य बढ़ जाता तब वे शस्त्र धारण करते और चुन चुनकर उनका नाश करते। अगस्त्य का नाम सुनतेही अत्याचारी कांप उठते थे। उन्होंने अपने तपोबल और पराक्रमसे सहस्रावधि अत्याचारियोंका नाश किया था।

अगस्त्य ऋषि विद्वान थे। द्रोणाचार्य्य और द्रुपदने उन्हींसे व्यूह रचनाका ज्ञान प्राप्त किया था। पृथ्वीके अधिकांश देशोंमें उन्होंने भ्रमण किया था। सर्व प्रथम नौकाकी रचना कर उन्होंने ही समुद्र यात्रा की थी। सम्भव है, कि इसी से उनके समुद्र पानकी आख्यायिका प्रचलित हुई हो।*

*कहते हैं, कि एक टिटिहरीने समुद्रके तटपर अण्डे रक्खे थे। समुद्र अपनी तरङ्गोंसे उन्हें बहा ले गया। इसके पूर्व भी कई बार ऐसाही हो चुका था। टिटिहा और टिटिहरीने पक्षीराज गरुड़के पास फरियाद की और उन्होंने विष्णु भगवानके कानतक यह बात पहुंचानेका वचन दिया। अवसर देखकर जब उन्होंने विष्णुसे यह बात कही, तब उन्होंने परोपकारी अगस्त्यसे पक्षियोंका दुःख दूर करनेको कहा। अगस्त्य भगवानके आदेशानुसार घटनास्थलपर गये और देखा, कि दोनों पक्षी समुद्रको उलो

अगस्त्यने एक नौका शास्त्र भी रचा था, परन्तु अनेक प्राचीन ग्रन्थोंकी तरह उसका भी कहीं पता नहीं है। अनेक देशोंमें विचरणकर उन्होंने निःस्वार्थ भावसे धर्मोपदेशकका कार्य्य किया था। देव, दानव, ऋषिमुनि और राजा प्रजा सभी उनका सम्मान करते थे

अगस्त्य मुनि महा समर्थ थे। कहते हैं, कि विन्ध्य गिरिने सूर्य्यका पथावरोध करनेकी इच्छा की थी। देवोंकी प्रार्थनासे अगस्त्यमुनि उनके पास गये। गिरिने उन्हें देख दण्डवत प्रणाम किया। अगस्त्यने उसे आज्ञा दी, कि जब तक मैं उठने को न कहूं, तबतक इसी प्रकार पड़े रहो। यदि अवज्ञाकर उठ· नेका साहस करोगे तो शाप दे तुम्हें भस्म कर दूंगा। अगस्त्य· की यह बात सुन, वह ज्योंका त्यों पड़ा रहा। न उन्होंने उसे उठनेकी आज्ञा दी और न वह उठा। इस प्रकार गिरिका गर्व खर्वकर उन्होंने प्राणीमात्रका सङ्कट दूर किया।

अगस्त्यके विषयमें एक और भी चमत्कारपूर्ण कथा प्रचलित है। कहते हैं, कि :किसी वनमें आतापी, वातापी और इल्वण

रहे हैं। चोंचमें जल लेकर बाहर डाल आते हैं और बाहरसे मिट्टी लाकर समुद्रमें डाल देते हैं। उनका यह अध्यवसाय देखकर वह प्रसन्न हो उठे और समुद्रकी अनंत जलराशि·आचमनके साथही पान कर गये। यह देख, समुद्रने अण्डे लौटाल दिये और अनेक प्रकारसे क्षमा प्रार्थना की। जलचर भी व्याकुल हो रहे थे अतः अगस्त्यने फिर उसे ज्योंका त्यों कर दिया।

नामक असुर रहते थे। वे बड़े धूर्त्त और कपटी थे। अनेक ऋषिमुनि और मनुष्योंका उन्होंने नाश किया था। वे फल फूल, कन्दमूल या जलके रूपमें उदरमें प्रवेश करते और बादको पेट फाड़कर निकल पड़ते। उनके इस कार्य्यसे चारों ओर त्राहि त्राहि मच रही थी। महर्षि अगस्त्य यह बात सुन उनके पास गये और वे तीनों असुर भी फल फूल और जलके साथ उनके पेटमें पहुंच गये। जब ऋषिने जान लिया, कि वे उदरमें आगये हैं तो उदरपर हाथ फेरकर वह उन्हें हजम कर गये। फलतः तीनों असुर बाहर न आ सके और सबका दुःख दूर हो गया। आज भी लोग अगस्त्यका नाम लेकर उदरपर हाथ फेरते हैं, ताकि उनके प्रतापसे खाया हुआ अन्न असुरोंकी तरह हजम हो जाय।

अगस्त्यका आश्रम एकही स्थानमें न था। सुतीक्ष्ण मुनिने रामको वनवासके समय मार्ग दिखाया था। उसे देखनेसे पता चलता है कि अगस्त्यका आश्रम दण्डकारण्यमें था। दण्डकारण्य गोदावरीके उत्तर तटपर था। महाभारतमें लिखा है, कि उन का आश्रम गयाके पास था। परन्तु एक कथासे ज्ञात होता है, कि उसका आश्रम दण्डकारण्यमें ही था।

कहते हैं, कि दण्डक नामक एक विदर्भ देशका राजा था। उसके अधर्म्माचरणसे क्रुध हो, भृगु ऋषिने उसे उसकी भूमि और उसपर निवास करनेवाले प्राणियोंको शाप दे भस्म कर दिया। वही स्थान दण्डकारण्य नामसे विख्यात हुआ। कुछ

कालके उपरान्त अगस्त्यने वहां अमृत वर्षा की, फलतः ७-क नव पल्लव वन तय्यार हो गया। वहीं अगस्त्यने अपना आश्रम बनाया और पत्नी तथा अनेक पुत्रों सहित निवास करने लगे।

एक बार राजा नहुषने कामान्धहो उनसे पालकी उठवायी थी। ब्रह्मनिष्ट अगस्त्यने पदाघातसे क्रुध हो उसे सर्प बना दिया था (देखो नहुष चरित्र) राम वनवासके समय सीता और लक्ष्मण सहित उनके आश्रममें गये थे। अगस्त्यने सत्कार कर उन्हें अखण्ड चाप; अक्षय तूण, कई शस्त्रास्त्र और एक तीक्ष्ण बाण भेट दिया था। बाण देते समय उन्होंने कहा था, कि जब रावणसे युद्ध हो, तब अन्तमें इसी बाणका प्रयोग करना, तुम्हारी जय होगी। रामने उनके आदेशानुसारही उसका प्रयोग किया था। रामको निवास करनेके लिये पञ्चवटीका मनोहर स्थान उन्होंनेही बताया था, और उन्होंने ही रामको शैवी दीक्षा दी थी।

अगस्त्यने दक्षिण भारतमें विद्याका अच्छा प्रचार किया था। वे निरन्तर ध्यानमें मग्न रहते थे। उन्होंने बड़ी कठिन तपस्या की थी, अतः देवतागण भी उनपर प्रसन्न रहते थे। राजा और प्रजापर भी उनका उपकार कम न था। यही कारण है, कि उनका नाम अमर रखनेके लिये आर्य्यावर्त्तके निवासियोंने एक ताराका नाम अगस्त्य रक्खा है। भाद्र मासके अन्तमें वह दक्षिण आकाशमें उदय होता है। ऐसे परोपकारी और परदुःख भञ्जन महापुरुषका यह स्मृति- चिन्ह अनुचित नहीं।

महात्मा वशिष्ठ ।

महात्मा वशिष्ठ ब्रह्माके मानस पुत्र थे और स्वायम्भू मन्वन्तरमें उत्पन्न हुए थे, महादेवके शापसे अन्य प्रजापतियोंके साथ इनका भी नाश हो गया था, अतः पुनः ब्रह्माने वैवस्वत मन्वन्तरमें इन्हें उत्पन्न किया। इस दूसरे जन्ममें इनकी पत्नीका नाम था अक्षमाला। यह सूर्य्यवंशी इक्ष्वाकु कुलके गुरु थे। उस वंशके निमि नामक तीसरे राजाको वशिष्ठने अनेक यज्ञ कराये थे। अन्तिम यज्ञके समय वे पहलेसेही इन्द्रके यज्ञमें अटके हुये थे, अतः उपस्थित न हो सके। उन्होंने निमिसे अपने आनेका ठीक समय बता दिया था, परन्तु उसनेउनके प्रत्यागमनकी प्रतीक्षा न कर महात्मा गौतमको बुला लिया और उनकी संरक्षतामें यज्ञ करने लगा। वशिष्ठने यह देखकर उसे शाप दिया, कि तेरा नाश हो। उसने भी मरते समय शाप दिया कि आपका नाश हो। फलतः वशिष्ठ और राजा निमि दोनोंका परस्परके शापसे प्राणान्त हुआ।

वशिष्ठकी यह दशा देखकर ब्रह्मदेवको बड़ा क्षोभ हुआ और उन्होंने पुनः उन्हें मित्रावरुणके यहां उत्पन्न किया। इस बार भी इनका नाम वशिष्ठ रखा गया और वे इक्ष्वाकु वंशके कुलगुरु

नियत हुए। इस बार उनका विवाह अरुन्धतीके साथ हुआ। अरुन्धती नारदकी बहन थीं। वे पति-पद-रता विदुषी और महासती थीं। उनकी विद्वत्ताके विषयमें इतनाही कह देना पर्य्याप्त है, कि उन्होंने वेद-भाष्यकी रचना की थी।

ब्रह्मर्षि वशिष्ट विष्णु क्षेत्रमें कौशिक ऋषिके पास शिक्षा ग्रहण की थी और वेद वेदान्तमें पारङ्गत हुए थे। साथही वे धनुर्विद्या विशारद भी थे। वे महा तेजस्वी, सत्यवक्ता क्षमा, शील, जितेन्द्रिय और त्रिकाल दर्शी थे। उनके निकट भीष्म समान महापुरुषोंने वेदाध्ययन किया था। उन्होंने अपनी स्त्री अरुन्धतीको शिक्षा दे, बुद्धिमान और ज्ञानी बनाया था। अरुन्धतीके उदरसे उन्हें शक्ति आदि सौ पुत्र उत्पन्न हुए थे। पहले वशिष्ट ऋषिका आश्रम हिमालयके एक शिखरपर था। वह आज भी उन्हींके नामसे पुकारा जाता है वहाँ वे योगी वेशमें रहा करते थे।

वशिष्ठ ऋषिके पास नन्दिनी नामक एक कामधेनु थी। उसके प्रतापसे वह अगणित अतिथियोंको इच्छा भोजन करा सकते थे। उस समय कान्यकुब्ज देशमें चन्द्रवंशीय गाधि पुत्र राजा विश्वामित्र राज्य करते थे। एक दिन वे मृगया खेलते हुए, सैन्यसह वशिष्ठके आश्रममें पहुंच गये। वशिष्ठने उनकी बड़ी अभ्यर्थना की और नन्दिनीकी कृपासे सैन्यसह उन्हें भोजन कराया। विश्वामित्रको यह देख बड़ा आश्चर्य्य हुआ परन्तु शीघ्रही उन्हें सारा रहस्य मालूम हो गया और उन्होंने

उनसे कामधेनुको याचनाकी वशिष्ठने उसे देनेसे इन्कार किया अतः विश्वामित्र वलात् ले जानेको प्रस्तुत हुए। निदान, उन दोनोंमें युद्ध हुआ और वशिष्ठने ब्रह्मदंड धारणकर विश्वामित्रकी समस्त सेना परास्त कर दी।

विश्वामित्रको प्राण ले पलायन करना पड़ा। किसी प्रकार वे अपनी राजधानी पहुंचे। उन्होंने देखा कि ब्रह्मबलके मुकाबिलेमें राजबल कुछ नहीं है। अन्तमें ब्रह्मबल प्राप्त करनेके लिये राजपाट छोड़कर वे वनको चले गये और हिमालयपर घोर तपस्या करने लगे। उनके हृदयमें दृढ़ इच्छा-शक्ति उत्पन्न हो चुकी थी, अतएव जब तक सफलता न मिली, तब तक उन्होंने उद्योग न छोड़ा। अनेक विघ्न आने और एकवार बुरी तरह पतित हो जानेपर भी वे अपने कार्य्यमें लगे रहे और उन्होंने क्रमशः ऋषि, राजर्षि और अन्तमें ब्रह्मर्षिका पद प्राप्त किया।

ब्रह्मदेवने प्रसन्न हो जब उन्हें ब्रह्मर्षिका पद प्रदान किया तब उनसे कहा, कि वशिष्ठादि तुम्हें ब्रह्मर्षि कहें और अपने वर्गमें सम्मिलित करलें इसके लिये भी तुम्हें चेष्टा करनी होगी। जब वे ऐसा करेंगे तभी तुम वास्तविक ब्रह्मर्षि हो सकोगे।

ब्रह्मदेवकी यह बात सुन विश्वामित्र अपने ऋषियोंके पास गये और उन्होंने उन्हें ब्रह्मर्षि स्वीकार कर लिया अन्तमें वे वशिष्ठके पास गये और अपनेको ब्रह्मर्षि कहलाना चाहा, परन्तु वशिष्ठने उनके गुणोंको देखकर उन्हें ब्रह्मर्षि न कहा। जब जब विश्वामित्र मिलते तब तब वे उन्हें राजर्षि ही कहकर बुलाते

यह देखकर विश्वामित्रके हृदयमें प्रबल ईर्षाग्नि धधक उठी और वे वशिष्ठकी स्पर्द्धा करने लगे।

सूर्य्यवंशी त्रिशंकु नामक एक नरेशके हृदयमें सदेह स्वर्ग जानेकी अभिलाषा उत्पन्न हुई और उसने तदर्थ वशिष्ठसे यज्ञ करानेको कहा। वशिष्ठने ऐसा होना असम्भव बतलाया, अतः वह उनके पुत्रोंके पास गया। वशिष्ठके पुत्रोंने पिताकी असम्मति देखकर यज्ञ करनेसे इन्कार किया, तब वह दूसरेका आश्रय ग्रहण करनेको तय्यार हुआ। उसके इस अविवेकसे असन्तुष्ट हो, ऋषि पुत्रोंने उसे शाप दे चाण्डाल बना दिया।

विश्वामित्र, वशिष्ठके शत्रु हो रहे थे अतः उन्हें नीचा दिखानेके लिये, उस चाण्डालका यज्ञ करानेपर तुल गये। क्षत्रिय उपाध्याय और चाण्डाल यजमान, यह रङ्ग देखकर निमन्त्रित देवतागण भी हविर्भाग लेने न आये, न यज्ञकार्य्यमें योगही दिया। यह देखकर विश्वामित्र को सीमतीत क्रोध हुआ और उन्होंने त्रिशंकुको अपने तपोबलसे स्वर्ग भेज दिया। देवताओंने उनके इस कार्य्यका विरोध किया और त्रिशंकुको नीचे ढकेल दिया, परन्तु विश्वामित्रने उसे अन्तरिक्षहीमें रोक दिया। कहते हैं, कि तबसे वह शिर नीचा किये हुए बराबर लटक रहा है।

वशिष्ठने एकबार अपने यजमान राजा हरिश्चन्द्रकी—सत्यवादी, दाता और धर्म्मशील कहकर बड़ी प्रशंसा की। विश्वामित्रने पुनः वशिष्ठको नीचा दिखानेके लिये हरिश्चन्द्रको असत्यवादी, अदाता और महाखल सिद्ध करनेकी प्रतिज्ञा की। उन्होंने

इस बार भी कोई ताव उठा न रक्खी और अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करनेके लिये भगीरथ प्रयत्न किया, परन्तु उनकी युक्तियां और उनका छल प्रपञ्च कोई काम न आया, न हरिश्चन्द्रको वे असत्यवादी या अदाता ही सिद्ध कर सके।

विश्वामित्र इसी प्रकार वशिष्ठका विरोध करने लगे, परन्तु सतोगुणी वशिष्ट लेश मात्र भी विचलित न हुए, न भयभीत हो उन्हें ब्रह्मर्षिही कहा। विश्वमित्र इसका कारण अपने स्वभावको न जान सके और समझने लगे कि ब्रह्मादि ऋषि मुझे ब्रह्मर्षि कहते हैं, परन्तु वशिष्ठ केवल द्वेष वश ऐसा नहीं करते। इस विचा--रके उत्पन्न होतेही उनके हृदयमें प्रतिहिंसा वृत्ति जागरित हो उठी और उन्होंने कल्मापपाद नामक एक राक्षस द्वारा वशिष्ठके समस्त पुत्रोंको मरवा डाला।

क्षमाशील वशिष्ठने यह हाल जानकर भी विश्वामित्रपर क्रोध न किया और ज्योंके त्यों शान्त बने रहे उन्होंने कहा, कि इसमें किसीका क्या दोष है! पुत्रोंकी मृत्यु इसी बहाने बदी थी।

विश्वामित्रमें जबतक राजस गुण वर्तमान रहे, तबतक कैसेही तपस्वी हो जानेपर भी वशिष्ठने उन्हें ब्रह्मर्षि न कहनेका निश्चय किया था। विपत्तिका पहाड़ टूट पड़ने पर भी वह विचलित न हुए और फिर भी राजर्षि कहकर मुस्कुराते हुए विश्वामित्र की अभ्यर्थना की। विश्वामित्रको यह देखकर बड़ा क्रोध आया और अन्तमें उन्होंने वशिष्ठको मार डालनेका विचार किया।

एक दिन रात्रिके समय वे धनुष बाण लेकर चुपचाप वशिष्ठके आश्रम गये और छिपकर उचित अवसरकी प्रतीक्षा करने लगे।

उस दिन शरद् पूर्णिमा थी अतः स्वच्छ नीलाकाशमें चन्द्रमा चमक रहा था और चारों ओर उसकी निर्म्मल चांदनी छिटक रही थी। यह मनोहर दृश्य देखकर सती अरुन्धती अपने पति वशिष्ठसे कहने लगीं—"प्राणनाथ! देखो, रात्रिकैसी सुहावनी मालूम होती है! आकाशमें पूर्ण और निष्कलङ्क चन्द्रमा कैसा उद्भासित हो रहा है! क्या संसारमें ऐसा कोई पूर्ण तपस्वी होगा, जिसकी निर्म्मल तपस्या दिगदिगन्तको उद्भासित कर रही है?"

वशिष्ठने मुस्कुरा कर कहा—"प्रिये। इस समय संसारमें एक विश्वामित्र ही ऐसे तपस्वी है, जिनकी तपस्या इस शरच्चन्द्रके समान निर्म्मल और निष्कलङ्क है। उनके समान तपस्वर इस समय और कोई नहीं।"

विश्वामित्र कहीं दूर न थे वे वहीं खड़े थे और चुपचाप सब बातें सुन रहे थे। वशिष्ठको परोक्षमें अपनी प्रशंसा करते देखकर उन्हें बड़ा आश्चर्य्य हुआ और वे अपने कृत्यपर बारम्बार पश्चाताप करने लगे। वह कहने लगे—ओह! मैं बड़ा पापी हूं। जो परोक्षमें मेरी प्रशंसा करता है, उसीको मैं मारने आया हूं! मुझे धिक्कार है! हाय! मैं इस ब्रह्महत्याके घोर पापसे कैसे मुक्त होता? मेरा समस्त तपोधन आज मिट्टीमें मिल जाता और मुझे नरक भोग करना पड़ता। मैं अपनेको बलात् ब्रह्मर्षि

कहलानेका व्यर्थही उद्योग करता हूं यह केवल मेरा मिथ्याभिमान है। जिसके सौ पुत्रोंका मैंने नाश कराया और जिसे अनेक प्रकारका कष्ट दिया वही परोक्षमें मेरी प्रशंसा कर रहा है। मैंने समय समयपर वशिष्ठको नीचा दिखानेका उद्योग किया, फिर भी उन्होंने बुरा नहीं माना अतः वही सच्चे ब्रह्मर्षि हैं, मैं नहीं।"

मनही मन इस प्रकारका विचार कर विश्वामित्रने धनुषबाण फेंक दिया और दौड़कर वशिष्ठके चरणोंमें गिर पड़े। वशिष्ठने एकाएक उनका आगमन और यह कार्य्य देखकर विस्मित हो कहा—"आइये ब्रह्मर्षि विश्वामित्र! इस समय आप कहां?" वशिष्ठके मुखसे ब्रह्मर्षि शब्द सुनकर विश्वामित्र बड़े प्रसन्न हुए और पुलकित हो पूछा,—महर्षि! अबतक तो मैं राजर्षि था, आज ब्रह्मर्षि क्यों?

वशिष्ठने मुस्कुराकर कहा—आज तुम ब्रह्मर्षि कहने योग्य होगये हो। सत्वगुण, सत्य, शीलता, निराभिमानत्व इत्यादि ब्राह्मणोंके गुण आज तुममें वर्तमान हैं। शस्त्र धारण और क्रोधादिक राजसी गुण नहीं दिखायी पड़ते। इसीलिये मैंने आज तुम्हें ब्रह्मर्षि कहा। जबतक तुममें रजोगुण वर्तमान थे, तबतक मैं तुम्हें ब्रह्मर्षि कैसे कह सकता था? इस समय तुम्हारा हृदय निर्म्मल है। अतः तुम वास्तविक ब्रह्मर्षि हो।

वशिष्ठकी यह बातें सुनकर विश्वामित्रको बड़ा आनन्द हुआ और वे अपने आश्रमको गये। आजसे ईर्षा, द्वेष, वैमनस्य

विरोधभाव, और उनकी प्रतिहिंसा वृत्ति नष्ट हो गई। वशिष्ठ और उनमें सौहार्द स्थापित हो गया और वे मिलजुलकर रहने लगे। ब्रह्मर्षि पद कितना ऊंचा है, उसके लिये कैसी योग्यता चाहिये, उसमें कैसी अलौकिक शक्ति है और उसकी प्राप्तिके लिये कितना परिश्रम करना पड़ता है यह सब इस कथाको देखनेसे ज्ञात होता है।

तपस्यासे कहीं अधिक लाभ सत्सङ्गमें है—यह वशिष्ठने एक बार सिद्ध कर दिखाया था। वे एक दिन विश्वामित्रके आश्रम गये थे। विश्वामित्रने यथोचित सत्कार कर उन्हें अपने एक हजार वर्षकी तपस्याका फल अर्पण किया। इसके बाद एक दिन वे वशिष्ठके आश्रम गये। वशिष्ठने भी वैसाही सत्कारकर अपने एक घड़ी सत्सङ्गका फल अर्पण किया। यह देखकर विश्वामित्र बड़े विचारमें पड़ गये और सोचने लगे, कि वशिष्ठने क्या समझकर एक घड़ी सत्सङ्गका फल दिया! क्या मेरे हजार वर्षके तपको वह एक घड़ीके सत्सङ्गकेही बराबर समझते हैं!

वशिष्ठने विश्वामित्रको विचार करते देखकर कहा—"महर्षि तुम्हें आश्चर्य क्यों हो रहा है? तपस्यासे सत्सङ्गका मूल्य कहीं अधिक है। यदि तुम्हें मेरी बातपर विश्वास न हो तो चलो किसी महात्मासे न्याय करावें।"

विश्वामित्रको वास्तवमें विश्वास न था, अतः वे वशिष्ठकी बातपर राजी हो गये और दोनों जन सत्यलोकमें शेष भगवान के पास गये। शेष भगवानने दोनोंकी बात सुन कर विश्वा-

मित्रसे कहा, कि अपने एक हजार वर्षका तपोफल पृथ्वीको अर्पण कर उसे एक हाथ ऊंची करदो।

विश्वामित्रने शेषके आदेशानुसार कार्य्य किया, परन्तु उठने की कौन कहे पृथ्वी हिली तक नहीं। इसके बाद शेषने वशिष्ठसे अपने घड़ी भरके सत्सङ्ग फलको अर्पणकर वैसा करनेको कहा। वशिष्ठके वैसा करतेही पृथ्वी धननन !!! धम ! धम !! धम !!! करती हुई हाथभर ऊंची हो गयी। यह देख विश्वामित्रको और भी आश्चर्य्य हुआ, परन्तु शेष भगवानने सत्सङ्गकी महिमा बतलाते हुए उनसे कहा, कि सत्सङ्गही मोक्षका प्रधान द्वार हैं। अन्तमें विश्वामित्र समझ गये और वशिष्ठको प्रणाम कर बड़े आनन्दके साथ अपने आश्रमकी ओर चले गये।

एक दिन वशिष्ठ वनमें फल फूल लेने गये थे। उनकी अनुपस्थितिमें आठ वसु अपनी स्त्रियों सहित क्रीड़ा करते हुए उनके आश्रममें जा पहुंचे। वहां नन्दिनीको देखकर उन्हें मोह उत्पन्न हो गया और वे उसका हरण कर ले गये। वशिष्ठने आकर देखा तो नन्दिनी गायब! जब उन्होंने स्थिर चित्तसे ध्यान किया और ज्ञान दृष्टिसे देखा, तो उन्हें मालूम हुआ, कि वसु उसे हरण कर ले गये हैं। वशिष्ठने क्रुद्ध हो, वसुओंको शाप दिया, परन्तु उन्होंने तत्काल उपस्थित हो क्षमा प्रार्थना की और कामधेनु भी लौटाल दी। क्षमाशील वशिष्ठ अकारण किसीको कष्ट न देते थे, अतः उन सबोंका अपराध क्षमा कर अपनी सहृदयताका परिचय दिया।

वशिष्ठ ऋषिका सुदास नामक एक राजा यजमान था। एक वार दश राजाओंने उसके राज्यपर आक्रमण किया, परन्तु वशिष्ठने शस्त्र धारणकर सबोंको परास्त कर उसके राज्यकी रक्षा की। इसके अतिरिक्त जब सुदास दिग्विजय करने गया, तब भी वशिष्ठने उसे बड़ी सहायता पहुंचायी। ऋग्वेद संहितामें लिखा है कि—"हे वशिष्ठ! तुम्हारी प्रार्थनासे इन्द्रने दश नरेशोंसे युद्धकर सुदासकी रक्षा की है।" इन वातोंसे ज्ञात होता है, कि वशिष्ठ ऋषिका राजा प्रजा और देवताओंमें भी सम्मान होता था। वे जिस प्रकार ब्रह्मत्व बलमें श्रेष्ठ थे, उसी प्रकार क्षात्रकर्म्ममें भी निपुण थे।

वशिष्ठ सूर्य्यवंशी राजा दशरथके पुरोहित थे। पुरोहितही क्यों, वे उनके प्रधान मन्त्रीके समान थे। सारा राजकाज उनकी सलाहसे होता था। दशरथ निःसन्तान थे, अतः वशिष्ठने उन्हें पुत्रेष्टि यज्ञ कराया था। यज्ञ करनेसे उन्हे राम, लक्ष्मण, भरत, और शत्रुघ्न नामक चार पुत्रोंकी प्राप्ति हुई थी। वशिष्ठने रामको वेद, वेदान्त, धनुर्विद्या, धर्म्मशास्त्र, न्याय, नीति और कलाओंकी शिक्षा दी थी। इसके अतिरिक्त उन्होंने रामको अध्यत्मिक ज्ञान और योग भी समझाया था। वही आज योग वशिष्ठ या महारामायणके नामसे प्रसिद्ध हैं।

वशिष्ठ ऋषिने एक स्मृति ग्रन्थकी रचना की थी और वह वशिष्ठ स्मृतिके नामसे विख्यात है। स्मृतिके अतिरिक्त उन्होंने एक संहिता भी रची हैं, जिसे वशिष्ठ संहिता कहते हैं। उसके इक्कीस अध्याय हैं। उसमें वतलाया गया हैं, कि द्रव्य सञ्चय

की अपेक्षा तप सञ्चय विशेष स्तुतिपात्र है। ब्राह्मण ज्यों ज्यो प्रतिग्रहका त्याग करता है, त्यों त्यों सन्तोषसे उसका ब्रह्मतेज बढ़ता है। जीर्णावस्थामें केश, दन्त, और चक्षु श्रोत्रादि इन्द्रियां जीर्ण हो जाती हैं, परन्तु तृष्णा तरुण हो उठती है। तृष्णा दुःख जनक और अधर्म्म युक्त होती है, अतः उसका त्याग करना चाहिये। सन्तोष रूपी अमृतसे तृप्त होने पर जो सुख मिलता है उसका शतांश भी असन्तोषमें नहीं मिलता। स्त्री पुरुष सबसे शान्ति, मनमें दुःखका अभाव, हृदयमें, वैराग्य, सत्य वचन और तत्वज्ञान जाननेकी इच्छा यही पांच बातें शान्ति दायक है और इन्हींमें सच्चा सुख हैं।

महर्षि वशिष्ठने रामचन्द्रको उपदेश देते हुए बतलाया था, कि मनको जीतनेसे मन और वृत्ति दोनों शून्य हो जाते हैं, अतः योगी मूकके समान रहता है। अर्थात स्फुर्णाका प्रतिबन्ध करनेसे केवल साक्षी रुप आत्माही रह जाता है। इस शास्त्रके ज्ञाता उसेही तुरीयावस्था-समाभास कहते हैं। इससे उसमें सभी प्राण, सोहं और कुण्डली यह एक रूप हो ॐकार रूपी आत्मामें सम्मिलित हो जाते हैं। सोहं रूपी आत्मा भृकुटी चक्रमें व्याप्त हो जानेसे यह दृश्य दिखायी देने लगता है।

वशिष्ठने रामचन्द्रको ब्रह्माण्डमें रहनेवाले अनेक प्राणियोंके जन्मान्तरका यथास्थित वर्णन सुना कर बतलाया था कि— "इस गुप्त भावसे अन्तःकरणके सभी भाव जब आत्माकी ज्ञान दृष्टिसे चैतन्यताको प्राप्त होते हैं, तब सभी कर्म्मोंका स्फुरण

हो आता है। इस भासको मायाभास कहते हैं। इसी लिये गुप्त भासके ज्ञाता अर्थात् योगेश्वर इस भास पर ध्यान नहीं देते। इस पर ध्यान देनेसे अनेक प्रकारके कर्म्म अखण्ड प्रदर्शित हुआ करते हैं, फलतः सत्य निवृत्तिके आनन्दमें निक्षेप पड़ता है। इसी लिये योगेश्वर निरन्तर 'अखण्ड स्वरूपको निर्विकल्प शान्त समाधिके सुखमें लीन रहते हैं। ऐसा करनेसे मायाभासकी उपाधि उन महा पुरुषोंको हानि नहीं पहुंचा सकती। फिर भी, गुप्त विद्याके ज्ञाता कभी कभी अपनी दिव्य दृष्टिसे आत्मरूप हो अद्वैत भावसे सभी दृश्य और अदृश्य वाह्यान्तर कृतियां देखते हैं। उस समय उन्हें अपने अतिरिक्त कोई पदार्थ पृथक नहीं दिखायी देता, वल्कि आपहीं असङ्ग प्रतीत होते हैं।

महात्मा वशिष्ठके शक्ति नामक पुत्रका जब शरीरान्त हुआ तब उसकी स्त्री गर्भवती थी। यथा समय उसने एक पुत्रको जन्म दिया, जो कि पराशर नामसे प्रसिद्ध हुआ।

वशिष्ठ अपनी प्रथमावस्थामें वड़े व्यवहार कुशल थे। व्यवहारिक विषयोंपर विवेचन करनेमें और मनुष्योंको कर्म्मशील वननेका उपदेश देनेमें वह बड़ा परिश्रम करते थे। वादको धर्म्म और वैराग्य शील होकर वे पत्नी सह हिमालय पर चले गये थे और वहीं तापस जीवन व्यतीत किया था। हम कौन हैं? यह जगत क्या है? यह तथा ईश्वर विषयक ज्ञान और शारीरिक तथा मानसिक धर्म्मोंका भिन्न भिन्न ज्ञान जो सन-

कादिक ऋषियोंने बतलाया था, इत्यादि समझाकर वशिष्ठने लोगोंको धर्म्मिष्ट बनाया था। उनके ग्रन्थोंसे आज भी हम लाभान्वित हो रहे हैं।

वशिष्ठ मुनि योग धर्म्मके आचार्य्य गिने जाते हैं। यह धर्म्म प्रलयके बाद महात्माओंने प्रचलित किया था, अतः उसे ऋषि प्रणीत धर्म्म भी कहते हैं। यह धर्म्म वेदोक्त माना जाता है। संन्यासी और परमहंसोंमें उसका अच्छा प्रचार था। उसमें वेदोक्त यज्ञादिक क्रियायें मान्य की गयी थीं, किन्तु जीवहिंसा वर्जित थी। गायत्री, सूर्य्य, देवी, गणपति, शिव और विष्णु इत्यदि आराध्य देव माने जाते थे।

परमात्मा एक है और वह सर्वव्यापक, निराकार, निरञ्जन और ज्योतिस्वरुप है और आत्माके रूपमें सर्वत्र व्याप्त है आत्मज्ञान प्राप्त करनेके लिये योग वशिष्ठ या महा रामायणका अध्यान करना चाहिये। जगतको भ्रान्ति रूप समझ अचिन्त्य और निर्विकार स्थितिमें रहना चाहिये इत्यादि इस धर्म्मके सिद्धान्त हैं। वेदके ज्ञान काण्ड और वेदान्तके बल पर इस धर्म्मकी सृष्टि हुई थी। गोरख, मच्छेन्द्र, जालन्धर, इत्यादि नव नाथ, चौरासी सिद्ध, अनेक योगेश्वर, और गोपी चन्द, भर्तृहरि विक्रम इत्यादि राजवंशी इसी धर्म्मको मानते थे।

योग धर्म्म, चार्वाक, बौद्ध और जैनादि सभी आस्तिक और नास्तिक धर्म्मोंमें क्रिया-कर्म्म और सिद्धान्तोंके रूपमें व्याप्त हो रहा है। प्रायः सभी धर्म्मोंमें कुछ न कुछ योगविधि पायी
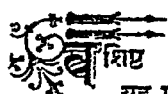
जाती है खोज करनेसे यह अच्छी तरह जाना जा सकता है, कि वह विधी योग धर्म्मसेही ली गयी है। नास्तिकोंने भी योग धर्म्म स्वीकार किया था और उसे अपना बता कर मोक्ष प्राप्तिके लिये उसके तत्वोंका प्रचार करने लगे थे। भारत और भारतके बाहर, आस्तिक और नास्तिक सभी लोगोंने प्रत्यक्ष या परोक्ष रुपमें इस धर्म्मके सिद्धान्तोंको अपनाया है। आज भी यहां परमहंस, संन्यासी, खाखी, संयोगी, नाथ, योगी और पण्डित गण इस धर्म्मका पालन करते हैं। इतनाही नहीं, बल्कि मुसलमान धर्म्मके फकीर, बौद्ध धर्म्मके यति और जैन धर्म्मके साधुओंमें भी इसका प्रचार है। दुनियाके सभी धर्मोंका योग ही प्राण हो रहा है। यह सब उसके प्रचारक महात्मा वशिष्ठ का ही प्रताप है।

महात्मा वशिष्ठने अपनी नन्दिनी नामक धेनु दिलीप राजाको दी थी और उसकी सेवासे उसकी मनोकामना पूर्ण हुई थी वशिष्ठमुनि अष्टम व्यास भी कहे जाते हैं। सप्त ऋषियोंमें उनकी भी नियुक्ति हुई थी वृद्धावस्थामें उन्हें नेत्र रोग हो गया था, परन्तु उससे विचलित न हो कर वह बराबर अपना कार्य्य करते रहे थे। राजा और प्रजामें परस्पर प्रेम रहे, किसीके अधिकारपर कुठाराघात न हो, न्याय, नीति और धर्म्मका लोप न हो, तदर्थ वे उपदेश देनेको तय्यार रहते थे। यदि कोई राजा अपनी प्रजापर अत्याचार करता, तो वे प्रजाका पक्ष ग्रहण करते, और राजाको समझाकर न्याय कराते।

यदि वह उनकी बात न सुनता, तो उसे दण्ड देते और किसी न किसी प्रकार प्रजाको सन्तुष्ट करते। उनके उपदेशका श्रोता गणोंके हृदयपर गहरा प्रभाव पड़ता था। उसके निःस्वार्थ परोपकारके कारण राजा और प्रजा सभी उनको आदरकी दृष्टिसे देखते थे। हजारों वर्ष व्यतीत हो चुके, परन्तु आर्य्यावर्त्तकी प्रजा उन्हें नहीं भूली और आज भी सादर उनका स्मरण करती है धन्य है महात्मा वशिष्ठको!
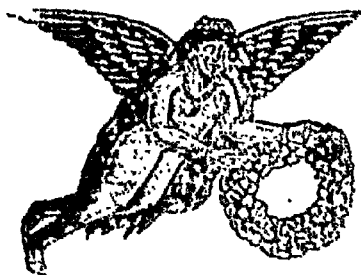
याज्ञवल्क्य ऋषि

वशिष्ट कुलोत्पन्न यज्ञवल्कके पुत्र होनेके कारण यह महापुरुष याज्ञवल्क्यके नामसे विख्यात हुए। वे महाविद्वान, महाप्रतापी, श्रेष्ठ ब्रह्मनिष्ट और आचार सम्पन्न थे। महात्मा वेद व्यासके निकट चार शिष्य चार वेदोंका अध्ययन करते थे। उन्हींमें याज्ञवल्क्यके मामा वैशम्पायन भी थे। वैशम्पायनने यजुर्वेदका अध्ययन कर उसे ८६ शाखाओंमें विभक्त किया था और एक एक ऋषिको एक एक शाखाकी शिक्षा दी थी। याज्ञवल्क्यने जिस शाखाका अध्ययन किया था, वह तैत्तरीयके नामसे विख्यात है। बादको याज्ञवल्क्यने सूर्य्यकी उपासना द्वारा शुक्ल यजुर्वेदका ज्ञान प्राप्त किया और वही उसके प्रधान आचार्य्य हुए। वेदके अतिरिक्त उन्होंने ब्रह्मविद्याका भी अध्ययन किया था, और उसमें निपुणता प्राप्त की थी।

अध्ययनके बाद कात्यायनी और मैत्रेयी नामक दो स्त्रियोंसे विवाह कर वे गार्हस्थ्य धर्म्मका पालन करने लगे थे। ब्रह्मविद्यामें उनकी बड़ी नामना हुई थी और अनेक विद्यार्थी उनके निकट अध्ययन किया करते थे।

याज्ञवल्क्य मिथिला नरेश-बृहद्रथ जनकके पुरोहित थे।

राजा जनक मुमुक्षु थे, अतः किसी ब्रह्मनिष्ठको अपना गुरु बना-ना चाहते थे। एक बार उन्होंने अनेक ऋषियोंको निमन्त्रित किया था। याज्ञवल्क्यने सबके साथ शास्त्रार्थ कर विजय प्राप्त की थी और अपनेको सर्वश्रेष्ठ सिद्ध कर दिखलाया था। गार्गी नामक विदुषी महिलाने भी अनेक प्रश्न किये थे। याज्ञवल्क्यने उसके प्रश्नोंका उत्तर देते हुए बतलाया था कि—ब्राह्मण मात्र जिसे प्रणाम करते हैं वह अक्षय ब्रह्म स्थूल, किंवा सूक्ष्म या ह्रस्व किंवा दीर्घ नहीं है। न वह छाया है, न अन्धकार। न वायु है, न शून्य। वह माया काल और गन्धसे रहित है। वह अनुपम है। उसीके शासन द्वारा निमेष, मुहूर्त रात्रि दिन पक्ष, मास ऋतु, संवत्सर, और सूर्य्य चन्द्रादि ग्रह तथा देवा-दिलोक स्थित हैं। उसी अविनाशी जगदीश्वरके शासनसे नदियां बहती हैं और समुद्र मर्य्यादामें रहता है।"

"जो मनुष्य उस अक्षय परमात्माका यथार्थ तत्व नहीं जा-नते और केवल यज्ञादिक कर्म्म किंवा तपश्चर्या करते हैं, वे-स्थायी फलके अधिकारी कदापि नहीं होते। संसारमें जो लोग उस परम तत्वको जानते हैं, वही सच्चे ब्राह्मण हैं और वही अक्षय सुखके भोक्ता होते हैं। उस परमात्माको कोई देख नहीं सकता, परन्तु वह सबको देखता है। कोई उसकी बात नहीं सुन सकता, परन्तु वह सबकी सुनता है। कोई उसका विचार नहीं जान सकता, परन्तु वह सबके विचार जान लेता है।"

गार्गीके प्रश्नोंका उत्तर देते हुए याज्ञवल्क्यने इसी प्रकारकी

अनेक बातें बतलायीं थीं अन्तमें गार्गीने उनके सम्मुख शिर झुका दिया था और उनका श्रेष्ठत्व स्वीकार किया था। जनकने उनके पाण्डित्यकी इस प्रकार परीक्षा ले, उन्हें अपना गुरु बनाया था और उनके द्वारा ब्रह्मज्ञान सम्पादन किया था।

याज्ञवल्क्यने अथर्ववेदका अध्ययन अथर्वा ऋषिके निकट किया था। उन्होंने अपनी स्त्री मैत्रेयीको भी ब्रह्मविद्याकी शिक्षा दे विदुषी बना दिया था। मैत्रेयीने ईश्वर विषयक जितने प्रश्न किये थे, उन सबोंका उत्तर दे, याज्ञवल्क्यने उसे सन्तुष्ट किया था। उनके चन्द्रकान्त महामेघ और विजय नामक तीन पुत्र और अनेकानेक शिष्य थे, महादेवके शापसे चौदह हजार शिष्य तो राक्षसही हो गये थे।

वाजसनी शाखावाले याज्ञवल्क्यके नियमानुसार आचरण करते हैं। तत्वज्ञानमें जैसे वह श्रेष्ठ थे, उनकी कृपासे वैसेही जनक भी हो गये थे। एक बार जनकने प्रश्न किया, कि—भगवन्! वैराग्य किसे कहते हैं आपने अनेक बार कहा है, कि वैराग्य विना मुक्ति नहीं होती, अतः उसका सत्यस्वरूप जाननेकी मुझे बड़ी उत्कण्ठा है।"

जनकका यह प्रश्न सुनकर याज्ञवल्क्य बड़े विचारमें पड़ गये। वह सोचने लगे कि जनकने ऐसा प्रश्न क्यों किया? कोई मूर्ख हो तो उसे वैराग्यकी व्याख्याकर समझाया जाय। विरक्तकी स्थिति कैसी होती है, यह मेरीही तरह जनक भी जानता है। हम दोनोंकी तत्वज्ञानियोंमें गणना होती है। हम

दोनों वैराग्यका स्वरूप समझते हैं, परन्तु तदनुसार आचरण नहीं करते। मैं भी संसार व्यवहार और विषयोंमें लुब्ध हूं और वह भी इसी जालमें उलझा हुआ है। सम्भवतः यही देखकर उसने यह प्रश्न किया है। खैर उसे प्रत्यक्ष प्रमाणसे समझाना चाहिये।

इस प्रकार विचारःकर याज्ञवल्क्यने कहा,—"राजन्! आज समयका अभाव है, अतः कल तुम्हारे प्रश्नका उत्तर दूंगा।"

जनकसे वह बात कह याज्ञवल्क्य अपने आश्रम गये। और समस्त धन कात्यायनी और मैत्रेयीमें बांट देने लगे। मैत्रेयी पति-पद-रता ज्ञानी और चतुर स्त्री थी। उसने हाथ जोड़ कर कहा —"प्राणनाथ! मुझे यह कुछ न चाहिये। मेरे जीवन और धन आपही हैं। जहां आप रहेंगे, वहीं मैं भी रहूंगी। मेरे लिये लोक परलोक, परमेश्वर और सब कुछ आपही हैं।"

याज्ञवल्क्यने मैत्रेयीको बहुत समझाया और कहा, कि मैं सन्यास धारण करने जा रहा हूं अतः तुम्हें साथ नहीं रख सकता, परन्तु मैत्रेयी उनका साथ छोड़नेको राजी न हुई अतः ऋषिने समस्त धन कात्यायनीको दे दिया। मैत्रेयी ज्ञान सम्पन्ना थी। यज्ञवल्क्यने उन्हें रात्रिभर उपदेश दिया और प्रातःकाल अपने साथही सन्यास धारण कराया।

यथा समय कौपीन धारण कर याज्ञवल्क्य जनककी राज सभामें गये और "ॐ तत्सत् परमात्मने नमः" कहते हुए राजाके सम्मुख खड़े हो गये ऋषिराजका यह वेश देखकर

जनकने विस्मित हो पूछा—"अहो ! यह क्या ?" याज्ञवल्क्यने कहा—"ज॰ क ! यह तुम्हारे प्रश्नका उत्तर है। यही वैराग्यका सत्य स्वरूप है।" जनक यह सुनकर उनके चरणोंमें गिर पड़े और बोले—बस भगवन् ! हद हो गयी। मैं वैराग्यका सत्य स्वरूप समझ गया। अब आप शीघ्रही इस वेशको परित्याग करें।'

याज्ञवल्क्यने उच्च स्वरमें कहा—"राजन् ! मल मूत्रको त्याग कर क्या कोई उस ओर दृष्टिपात करनेकी पुनः इच्छा करता है ? क्या गजराजके दन्त शूल बाहर निकल कर पुनः मुखमें प्रवेश कर सकते हैं ? क्या सरिताका जल पुनः पर्वतके शिखर पर चढ़ता है ? यदि नहीं तो मैं भी अब इस वेशका त्याग नहीं कर सकता। जो हुआ सो हुआ। मैं अपने भाग्यकी प्रशंसा करता हूं और परमात्माको धन्यवाद देता हूं, कि अनायासही मुझे ऐसा अवसर प्राप्त हुआ। इस असार संसारमें विषय बन्धनसे मुक्त होना बड़ा कठिन है। परमात्माकी कृपासे आज अचानक मेरा उद्धार हुआ है। अब मैं पुनः इस भवजालमें उलझना नहीं चाहता। अब तो मेरे लिये योगही सब कुछ है। ज्ञान हो जाने पर भी संसारके झगड़ोंमें पड़े रहना कैसे उचित कहा जा सकता है ?"
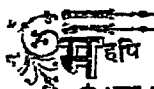
इस प्रकार जनकको वैराग्यका सत्यस्वरूप दिखाकर याज्ञवल्क्यने जङ्गलकी राह ली और योगीकी तरह ईश्वराराधनमें शेष जीवन व्यतीत किया। जनक और याज्ञवल्क्यका संवाद शतपथ ब्राह्मणमें अङ्कित है।

याज्ञवल्क्य ऋषि

याज्ञवल्क्यने धर्म्म शास्त्रका एक सर्व मान्य ग्रन्थ रचा है, जिसे "याज्ञवल्क्य स्मृति" कहते हैं। यह स्मृति ग्रन्थ (१) आचाराध्याय (२) व्यवहाराध्याय और (३) प्रायश्चित्ताध्याय इन तीन भागोंमें विभक्त है। आचाराध्यायमें वर्णाश्रमधर्म्म विषयक, व्यवहाराध्यायमें राज्यपालानादि व्यवहार विषयक और प्रायश्चित्ताध्यायमें प्रायश्चित विषयक उपदेश और आवश्यक बातें बतलायी गयी हैं। इस ग्रन्थ पर विज्ञानेश्वर पण्डितकी मिताक्षरा नामक टीका है। मिताक्षरा अति प्रसिद्ध है और वर्तमान ब्रिटिश न्यायालयोंमें भी हिन्दुओंके धार्म्मिक प्रश्नोंको हल करनेके लिये उससे काम लिया जाता है।

योगेश्वर याज्ञवल्क्य महान उपदेशक भी थे। लोक-कल्याणके लिये उन्होंने बहुत कुछ किया था। योग विद्याके एक ग्रन्थका भी उन्होंने प्रणयन किया था, जो कि "याज्ञवल्क्य योगशास्त्र" के नामसे विख्यात है।

शुक्राचार्य्य ।

महर्षि शुक्राचार्य्य भृगु ऋषिके पुत्र थे । उनकी माता-का नाम पुलोमा था । पुलोमाके उदरसे च्यवन, शुचि सवन आदि सात पुत्र उत्पन्न हुए थे । शुक्राचार्य्य उन सबोंमें विद्वान् महा योद्धा मन्त्रशास्त्री, कवि, पराक्रमी साहसी और धनुर्विद्या-विशारद थे । राजनीति और व्यवहार नीतिमें भी कुशल थे । वे मृत सञ्जीवनी नामक विद्याके ज्ञाता थे । उसके प्रतापसे वह मृत मनुष्योंको सजीवनकर सकते थे ।

शुक्राचार्य्य व्यवहार प्रपञ्चमें प्रवीण थे, अतः दानवोंका उनसे बड़ा काम निकलता था । देव-दानव युद्धमें कितनीही वार उन्होंने अपनी कुशलतासे दानवोंको विजय दिलायी थी । उनके कारण देवताओंको भी प्रपञ्च-कुशल होनेके लिये वाध्य होना पड़ा था । वृहस्पति और शुक्राचार्य्यमें स्पर्द्धा होती थी दैत्योंमें देवताओंसे युद्ध करनेकी शक्ति न थी, फिर भी वे युद्ध करते और विजय भी प्राप्त करते । यह शुक्राचार्य्यकाही प्रताप था । वृहस्पति देवताओंका पक्ष ले कर जो कार्य्य करते शुक्राचार्य्य उसके विपरीत करनेकी चेष्टा करते । निरन्तर वे दानवोंको प्रबल बनानेकेउद्योगमें लगे रहते । देवताओंकी शक्ति

नष्ट करना भी उनका एक प्रधान कार्य्य था। यही कारण था, कि एकबार मेघोंको आकर्षित कर दशरथके राज्यमें बारह वर्ष उन्होंने वृष्टि न होने दी थी। उन्होंने सोचा था, कि वृष्टि न होगी तो अन्न और जल न होगा। अन्न और जलके बिना गोब्राह्मण दुखी होंगे साथही यज्ञादिक क्रियायें भी बन्द हो जायेगी। ऐसा होनेसे देवताओंकी शक्ति क्षीण हो जायगी, फलतः दैत्यगण उन्हें पराजित कर देंगे। उनकी यह धारणा ठीक भी थी अपनी शक्तिका ह्रास होते देख कर इन्द्रने उन्हें युद्धमें पराजित किया। उनके पराजित होने पर ही वृष्टि और यज्ञादिक कर्म्म आरम्भ हुए।

अपने शिष्योंको भविष्यमें नियमित रखनेके लिये शुक्राचार्य्यने एक नीति ग्रन्थकी रचना की थी। उसे शुक्रनीति कहते हैं। शुक्रनीतिमें एक लाख श्लोक थे, परन्तु समयके साथही वे नष्ट हो गये। इस समय केवल २५० श्लोकों का एक ग्रन्थ मिलता है, जिसे शुक्रनीति कहते हैं। शुक्राचार्य्यने उसके द्वारा अपने शिष्योंको साम, दाम, दण्ड और भेद तथा सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय और द्वैधीभाव—कुल दश प्रकारकी नीतियाँ समझायी थीं।

शुक्राचार्य्यने दैत्योंको शिक्षित बनानेका बड़ा उद्योग किया। उनकी रक्षाके लिये भी वह प्राणपणसे चेष्टा करते थे। देव दानव युद्धमें वह उन्हें उत्साहित करनेके लिये अग्रणी बनते और युद्ध भी करते। प्रपञ्च और युक्तियां बतलाते और जो

निहत होते उन्हें, संजीवनीके प्रतापसे सजीवन भी करते। यह सब करनेपर भी दानव मूर्ख ही रहे और अपनी रक्षा न कर सके।

शुक्राचार्य्यने प्रथम पुरन्दर इन्द्रकी जयन्ती नामक कन्यासे परिणय किया था और उसके उदरसे देवयानी नामक कन्या उत्पन्न हुई थी। बादको उन्होंने शतपर्वाका पाणिग्रहण किया था और उससे त्वष्टाधर, अत्रि, रौद्र और कपों यह चार पुत्र हुए थे। शुक्रचार्य्य भृगु पुत्र होनेके कारण भार्गव नामसे भी पुकारे जाते हैं।

इन्द्रासनके लिये दैत्योंने देवताओंसे अनेक बार युद्ध किया था। युद्धमें जितने दानव मरते उन सबोंको शुक्राचार्य्य सजीवन कर देते थे। वृहस्पतिके पास संजीवनी विद्या न थी, अतः इन्द्र चिन्तातुर रहते थे। उन्होंने वृहस्पति पुत्र कचको शुक्राचार्य्यके पास वह विद्या सीखनेके लिये भेजा।

वृहस्पतिका पुत्र मेरा शिष्य कहलायेगा, इस अभिमानमें आकर शुक्राचार्य्यने कचको अपने पास रख लिया। कच उनका गृह-कार्य करता, उनके बच्चोंको खिलाता और विद्याध्ययन भी करता। एक दिन वह जङ्गलमें शुक्राचार्य्यकी गाय चरा रहा था। दैत्योंने यह सोचकर कि यह वृहस्पतिका पुत्र है और सञ्जीवनी विद्या सीखजायगा, तो हमारा अहित होगा, उसे वहीं मार डाला। सायङ्कालमें अकेली गाय लौट आयी, परन्तु कच न आया बालिका देवयानी उससे बहुत हिली थी, अतः

रोदन करने लगी। शुक्राचार्य्यने ज्ञानदृष्टिसे कचकी दशाका पता लगा लिया। उन्हें भी कचपर बड़ा प्रेम था, अतः उन्होंने उसका नाम लेकर पुकारा। पुकारनेके साथ कच सजीवन हो उनकी सेवामें उपस्थित हो गया।

शुक्राचार्य्यके विषयमें इसी प्रकारकी अनेक चमत्कार पूर्ण कथायें कही जाती हैं। उन सबोंसे उनके अलौकिक सामर्थ्यका पता चलता है।

कचने दीर्घकाल पर्य्यन्त शुक्राचार्य्यकी सेवा कर सञ्जीवनी विद्या प्राप्त की और उनकी आज्ञाप्राप्त कर घर जानेको प्रस्तुत हुआ। बालिका देवयानी अब तरुणावस्थाको प्राप्त हो चुकी थी। उसने चलते समय कचसे अपना विवाह कर लेनेको कहा। कचने अस्वीकार करते हुये उत्तर दिया, कि तुम गुरुपुत्री होनेके कारण मेरी बहिनके समान हो, अतः मैं तुम्हारे साथ विवाह नहीं कर सकता।

कचकी यह बात सुन देवयानी अप्रसन्न हो गयी। उसने कचको शाप दे, उसकी पढ़ी हुई समस्त विद्या निष्फल कर दी। बेचारा कच फिर ज्योंका त्यों हो गया। उसने भी क्रुद्ध हो देवयानीको शाप दिया, कि कोई ऋषि कुमार तेरा पाणिग्रहण न करेगा। दोनोंके शाप ठीक निकले। कच निराश हो अपने घर चला गया और देवयानीका किसी ऋषिकुमारने पाणिग्रहण न किया, अतः शुक्राचार्य्यको राजा ययातिके साथ उसका विवाह करना पड़ा।

वृषपर्वा नामक दैत्य राजाकी शर्म्मिष्ठा नामक पुत्रीने देव-

यानीका कुछ अनिष्ट किया था। शुक्राचार्य्यने यह देखकर वृष-पर्वाका तिरस्कार किया और उसे शाप दे भस्म कर देनेकी धमकी दी। वृषपर्वाने भयभीत हो देवयानीको सन्तुष्ट करना स्वीकार किया। देवयानीने शर्म्मिष्ठाको दासी बनाकर रखनेकी इच्छा व्यक्त की। वृषपर्वाको विवश हो वैसाही करना पड़ा।

शुक्राचार्य्य समर्थ पुरुष थे। बलि राजाको उन्होंने ९९ यज्ञ कराये थे। सौवां यज्ञ नर्म्मदाके तटपर आरम्भ कराया; तब इन्द्रका आसन हिल उठा। उन्हें मालूम होने लगा, कि अब अमरावती हाथसे निकल जायगी। अपने पुत्रका यह भय दूर करनेके लिये अदितिने तपश्चर्य्या आरम्भ की। अदितिका तप देख कर विष्णु भगवान प्रसन्न हो उठे और उसीके गर्भसे वामन रूपमें जन्म ग्रहण किया।

वामन भगवान बलिके पास गये और तीन कदम भूमि मांगी। शुक्राचार्य्यने उस समय बलिको समझाया, कि यह विष्णु हैं और किसी दुरभिसन्धिके कारण ही तीन कदम भूमि मांग रहे हैं। कह दो, भूमिमें ब्राह्मणादिक पांच जनोंका भाग है, अतः उसके अतिरिक्त और जो चाहिये वह मांग लो।

बलिने कहा,—नहीं यह कैसे हो सकता है? मैं सबको इच्छित वस्तु देता हूं, अतः ऐसे भी इन्कार नहीं कर सकता था, फिर जब स्वयं परमात्मा मागने आये हैं; तब किस मुंहसे नाहीं कर दूं! मेरा अहोभाग्य है, जो मेरे सम्मुख वह इस वेशमें उप-स्थित हैं। सब कुछ उन्हीका है। उन्हीने दिया है, वह लेंगे। मैं नाही न करूंगा।

शुक्राचार्य्य

शुक्राचार्य्यने बारंबार अनेक प्रकारसे समझाया, परन्तु बलिने टेक न छोड़ी। वामनकी यथाविधि पूजा कर वह सङ्कल्प करनेके लिये हाथमें जल लेने लगे। शुक्राचार्य्यने बाधा देनेके लिये सूक्ष्मरूप धारण कर झारीमें प्रवेश किया और उसकी टोटी बन्द कर दी। झारीसे जल न गिरते देखकर बलि झेंप गये, परन्तु वामनने कुश खोंसकर जल प्रणाली साफ कर दी। शुक्राचार्य्य झारीके अन्दर ही थे, अतः कुशाघातसे उनका एक नेत्र नष्ट हो गया और वेदनासे व्याकुल हो वह बाहर निकल आये। बादको झारीसे जल गिरा और बलिने भूमिदान किया। दान मिलतेही वामनने विराट रूप धारण किया और एक पद आकाश तथा दूसरा पातालमें रख पूछा, कि तीसरा पद कहा रक्खूं? बलि सारा हाल समझ गये। उन्होंने वामनकी स्तुति कर कहा, कि मेरे शिर पर रखिये। वामनने वैसाही कर उन्हें रसातळ भेज दिया।

महात्मा शुक्राचार्य्यने यद्यपि दानवोंका पक्ष ग्रहण कर देवताओंसे स्पर्द्धा की थी, तथापि उनके अलौकिक सामर्थ्यकी मुक्त कण्ठसे प्रशंसा करनी ही होगी। आजीवन उन्होंने अपने शिष्योंकी शुभ कामना की और उन्हें शिक्षित बनानेका उद्योग किया। भारत वासियोंने बृहस्पतिकी तरह उनके नामका भी एक नक्षत्र और वार नियत कर अपनी गुण ग्राहकताका परिचय दिया है जब तक आकाशमें शुक्र और भारतमें शुक्रवारका अस्तित्व रहेगा तब तक शुक्राचार्य्यकी कीर्ति नष्ट न होगी।

महर्षि वाल्मीकि
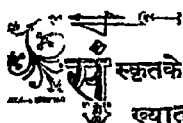
संस्कृतके आदि कवि और रामायणके रचयिता विश्ववि-ख्यात महात्मा वाल्मीकिकी जीवनी अत्यन्त चित्ता-कर्षक है उनके जन्म और प्रारम्भिक जीवनके सम्बन्धमें अनेक कथाये प्रचलित हैं, जिनमें दो अधिक विश्वसनीय हैं। कुछ विद्वानोंका कथन है, कि वे ब्राह्मण पुत्र थे और उनके माता पिता उन्हें अरण्यमें छोड़कर तप करने चले गये थे। अरण्यसे उन्हें एक निषादिनी उठा ले गयी और उसने उन्हें पालपोस कर बड़ा किया। कुछ लोग कहते हैं कि नहीं; वह निषादहीके पुत्र थे। कुछ भी हो, यह सर्वथा निष्पन्न है, कि वे एक निषादही द्वारा प्रतिपालित हुए थे और उसीके साथ उनका प्रारम्भिक जीवन व्यतीत हुआ था।

वाल्मीकिके पालक पिताने उनका नाम रत्नाकर रक्खा था। उसने उन्हें धनुर्विद्यामें निपुण कर डकैतीका काम सिखाया था। एक निषादिनीके साथ विवाह हो जानेके कारण वे कुटुम्ब जालमें भी उलझ चुके थे। रत्नाकर मार्गके एक वृक्ष पर बैठे रहते और किसी पथिकको देखतेही उस पर बाजकी तरह

टूट पड़ते। अपने प्रहारोंसे पहले वह उसका प्राण ले लेते बादको धन। उनके इस अत्याचारोंसे चारों ओर त्राहि त्राहि मच रही थी। अनेक मनुष्योंको इन्होंने क्रूरता पूर्वक मार डाला था।

इस प्रकार जो धन मिलता था, उसीसे रत्नाकरके आत्मीय जनोंका निर्वाह होता था उनके हृदयमें तो किसी प्रकारका विचार भी न था, परन्तु परमात्माकी इच्छा कुछ और थी। वह रत्नाकरको इस दशामें अधिक समय न रखना चाहता था। वह इसी पतितात्मा द्वारा संसारको शिक्षा दिलाना चाहता था। उसकी गति सिवाय उसके और कौन जान सकता है?

दैवेच्छासे, जहां रत्नाकर यह निन्द्य कर्म्म किया करते थे, वहीं एक दिन नारद मुनि जा पहुंचे। उन्हें देख कर रत्नाकर वृक्षसे उतर पड़े और उनके प्राण हरण करनेको प्रस्तुत हुए। देव ऋषिकी दैवी शक्तिके प्रभावसे रत्नाकरका लोह मुद्गर जहां का तहां रह गया और वह स्वयं भी स्तम्भित हो गये। नारदने जब परिचय पूछा तब रत्नाकरने क्रुद्ध हो कहा—"मुझे कौन नहीं जानता! मैं अपना परिचय अपने कार्य्य द्वारा देता हूं। इसी क्षण तुम्हारा प्राण और धन हरण कर लूंगा।"

महापुरुष अपने महत्वको कभी नहीं छोड़ते। वह अपकारका बदला उपकारसे चुकाते हैं। यही महात्माओंका महागुण है। वे शठेशाठ्यं समाचरेत, की नीतिसे काम नहीं लेते। नारदको रत्नाकरका पापाचरण देख कर उस पर दया आ गयी। उन्होंने उसके समस्त पापोंका वर्णन कर उसे पूछा, कि तु

इतने पाप क्यों करता है ? क्या तेरे मात ।पिता और स्त्री पुत्रादि इन पापोंमें भाग लेंगे ?

रत्नाकरने कहा—"क्यों नहीं ? उन्हींके लिये तो मैं यह कर्म्म करता हू। जो धन ले जाता हूं, वह सभीके काम आता है। जो मेरे सुःखमें भाग लेते हैं, वे पाप-भागी क्यों न होंगे ?"

नारद्ने कहा—"नहीं, यह वात न होगी। तू अपने घर जा और सबसे पूछ आ। मैं तेरे लौट आने तक यहीं खड़ा रहूंगा।"

रत्नाकरके हृदयमें देवर्पिकी इन वातोंने वड़ा कौतूहल उत्पन्न कर दिया। वह घर जानेको तय्यार हुए, परन्तु दूसरेही क्षण सोचने लगगे, कि यह साधु अपना प्राण वचानेके लियेही यह युक्ति तो नहीं कर रहा ! अन्तमें नारद्से प्रतिज्ञा करा कर वह अपने घर गये और सर्व प्रथम वृद्ध पितासे प्रश्न किया, कि आप पाप भागी होंगे या नहीं ?

वृद्ध निषाद्ने विस्मित होकर कहा—"रत्नाकर! तू मूर्ख है। तेरा प्रश्न सुनकर मुझे आश्चर्य्य होता है। क्या तूने नहीं सुना कि कर्म्म करनेवाला ही उसके फलका भोक्ता होता है ? कोई किसीके पापमें भाग नहीं ले सकता। पुत्रके पाप पिताका स्पर्श भी नहीं कर सकते। जब तू वालक था, तब मैंने तेरा लालन पालन किया था। मैंने भी अनेक पाप कर तेरी उदर-पूर्तिकी थी। क्या तूने मेरे उन पापोंमें भाग लिया है ? मैं इस समय वृद्ध हूं, अतः तेरे पुत्र समान हूं। इस समय मेरा पालन करना तेरा धर्म्म है, परन्तु मेरे पालनके लिये तू पाप

कर, यह मैं कब कहता हूं ? न मेरे पापोंमें तू भाग ले सकता है, न तेरे पापोंमें मैं। अपना किया मुझे भोग करना पड़ेगा और तेरा किया तुझे भोग करना पड़ेगा। न कोई किसीके पापमें भाग लेता है, न ले सकता है।"

रत्नाकर अपने पिताके यह शब्द सुन लज्जित हो गये और नत मस्तक हो माताके पास गये। मातासे भी उन्होंने वही प्रश्न किया। माताने कहा—रत्नाकर। तू यह कैसी बात कहता है ? माताके ऋणसे पुत्र आजन्म मुक्त नहीं हो सकता। मैंने तेरा पालन किया है, अतः वृद्धावस्थामें मेरी उदर पूर्ति करना तेरा परम कर्त्तव्य है। मेरे ऋणसे मुक्त होनेके बदले तू अपना पाप मेरे शिर लादना चाहता है, यह देखकर मुझे बड़ा दुःख होता है।"

माताकी यह बात सुनकर रत्नाकर और लज्जित हो गये। वहांसे वह अपनी स्त्रीके पास गये और बोले—तुम मेरी अर्द्धाङ्गिनी हो अतः बतलाओ, मेरे पापोंमें भाग लोगी या नहीं ?"

स्त्रीने कहा—" मैं तुम्हारी अर्द्धाङ्गिनी हूं, मेरे पालनका भार आपके शिर है। यह तो मैंने सुना है, कि पतिके पुण्यमें स्त्रीका भाग रहता है, परन्तु पापमें ऐसा होते नहीं सुना यदि पापसे इतना डरते हो, तो फिर पाप क्यों करते हो ? मैं तो समझती हूं कि कोई किसीके पापमें भाग नहीं ले सकता। पापकी सजा तो ईश्वर पापीकोही देता है।"

रत्नाकरने इसी प्रकार पुत्रादिकोंसे भी प्रश्न किया, परन्तु

सवोंने वैसाही उत्तर दिया। नारद मुनिने पापोंका वर्णन कर उनके फलका जो भयानक चित्र खींचा था, वह अब रत्नाकरके सम्मुख मूर्त्तिमान हो नृत्य करने लगा। पापोंकी भीषणताके स्मरण मात्रसे उनका हृदय कांप उठा, और वे अधीर हो नारद मुनिके पास गये। प्रतिज्ञा-बद्ध नारद अद्यापि वहीं खड़े मार्ग प्रतीक्षा कर रहे थे रत्नाकर उनके चरणों पर गिर पड़े और अश्रुवर्षा करते हुए, पश्चात्ताप करने लगे।

नारदने रत्नाकरकी व्याकुलता देख कर उन्हें आश्वासन दिया और कहा कि अब चिन्ता न कर, तेरे पूर्व पुण्योंका उदय होगा। इसके बाद उन्होंने रत्नाकरको सरोवरमें स्नान कराया और एक झाड़ीमें बैठाल कर रामनाम रूपी महामन्त्रका उपदेश दिया! उपदेश देकर नारद तो अन्तर्द्धान हो गये, परन्तु रत्नाकरको राम नाम भी याद न रहा और वह रामके विपरीत मरामरा जपने लगे।

अनेक वर्ष व्यतीत होगये, परन्तु रत्नाकर ध्यान भङ्ग न हुआ। वह जपमें इस प्रकार लीन हो रहे थे, ऐसे तन्मय हो रहे थे, कि उनके शरीरमें दीमक लग गयी; परन्तु उनको खबर भी न हुई। केवल अस्थि पिञ्जर शेष था और उसीसे राम नामकी ध्वनि निकल रही थी ज्यों ज्यों समय बीतता गया। त्यों त्यों उनके अस्थि पञ्जर पर मिट्टी जमती गयी, यहां तक कि उसमें जीव जन्तुओंने घर बना लिये और देखने वाले उसे मिट्टीका ढेर ही समझने लगे।

एक दिन ब्रह्मदेव और नारद उसी मार्गसे कहीं जा रहे थे। उस स्थानको देखकर नारदको रत्नाकरका स्मरण हो आया। उन्होंने जहां उसे बैठाला था वहां जाकर देखा तो मिट्टीके ढेरसे राम नामकी ध्वनि निकल रही थी। नारदने स्वयं मिट्टी हटा कर रत्नाकरको निकाला और ब्रह्माने अपने कमण्डलका जल छिड़क कर उसे सावधान किया। रत्नाकरने आंखें खोल कर देखा तो महामुनि नारद और ब्रह्मदेवको अपने सम्मुख उपस्थित पाया। वह उनके चरणोंपर गिर पड़े और अनेक प्रकारसे स्तुति करने लगे। नारदने प्रसन्न हो, उन्हें ऋषि पंक्तिमें स्थान दिया और ब्रह्मदेवने वाल्मीक दीमकसे निकले अतः उनका नाम वाल्मीकि रक्खा।

ब्रह्मर्षि पदको प्राप्त कर वाल्मीकिने नारदसे पूछा—भगवन्! अब मैं क्या करूँ? मुझे कोई कार्य्य बतलाइये।

नारदने कहा—"आप रामायण रचिये। रामनामके प्रतापसे आपका उद्धार हुआ है, अतः लोकाभिराम सुपवित्र रामचन्द्रका चरित्र वर्णन करिये।"

वाल्मीकिने हाथ जोड़ कर कहा—नाथ! यह कार्य्य मैं कैसे कर सकता हूं? न मैं विद्वान ही हूं, न मुझमें वैसी बुद्धि ही है। रामायण रचनेके लिये छन्द-ज्ञान भी तो चाहिये।

नारदने कहा—इसकी चिन्ता न करिये। आपकी जिह्वा पर सरस्वतीका आविर्भाव होगा और छन्दोबद्ध रामकथा आपके मुखसे अनायास निकलेगी।

इतना कह कर नारद और ब्रह्मदेव अन्तर्धान हो गये। वाल्मी

कि तमसाके तट पर अपना आश्रम बना कर उसीमें निवास करने लगे। एक दिन वह नियमानुसार नदीमें स्नान करने गये थे। वहाँ गहन वनमें एक वृक्ष पर क्रौञ्च पक्षीका एक जोड़ा विहार कर रहा था। अकानक एक दुष्ट निषादने क्रौञ्चके एक तीर मार दिया। तीर लगतेही क्रौञ्चकी मृत्यु हो गयी और वहीं नीचे गिर पड़ा। क्रौञ्चकी यह दशा देख कर उसकी मादा दुःखित हो विलाप करने लगी। वाल्मीकिको निषादका यह काम बड़ा बुरा लगा। क्रौञ्चीकी विह्वलता देखकर उनका हृदय व्याकुल हो उठा। वह बड़े विचारमें पड़ गये। आन्तरिक परितापके कारण एका एक उनके मुखसे यह शब्द निकल पड़े:—

मानिषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समा।
यत्क्रौञ्च मिथुनादेक मवधीः काम मोहितं॥

इसके अनन्तर वाल्मीकि जब स्नान कर कुछ शान्त हुए, तब उन्हें अपने इन शब्दोंपर विचार उत्पन्न हुआ। उनका यह उद्गार अनुष्टुप छन्दोबद्ध था और अचानक मुखसे निकल पड़ा था एक साधार बात मुखसे कविताके रूपमें निकल गयी। यह देख कर वाल्मीकिको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसी समय ब्रह्मदेवने प्रकट हो कर कहा—वाल्मीकि! यह मेरी इच्छासे ही हुआ है। आपके यह वाक्य जिस छन्दमें निकले हैं, वही छन्द रामायण लिये उपयुक्त होगा। आप निःसन्देह इसी छन्द में रामचरित्र वर्णन करिये।

परमात्मा जिस पर दया दृष्टि करता है, उसका भाग्योदय

होते देर नहीं लगती। जो मनुष्य उद्योग करता है उस पर अवश्य ईश्वर कृपा होती है। वाल्मीकिने असीम कष्ट सहन कर दीर्घ काल पर्य्यन्त राम नामका जप किया तो पापमुक्त हो सबके कृपापात्र हुए। जो एक दिन जड़ रूप थे वह आज ईश्वर कृपासे कवीश्वर और विद्वान बन गये। जिनके मुखसे राम नाम भी ठीक न निकल सकता था, उन्हींके मुखसे आज छन्दोबद्ध शब्द निकलने लगे। जो अपने अज्ञानके कारण रामके स्थानमें "मरा" कहने लगे थे, वही आज रामायण रचने जा रहे हैं।

ब्रह्मदेवके अन्तर्द्धान हो जाने पर वाल्मीकि अपने आश्रममें लौट आये और उसी दिनसे रामायणकी रचना करने लगे। उन्होंने ७ काण्ड, ५०० सर्ग और २४००० श्लोकमें रामचरित्र वर्णन किया। यद्यपि इस समय सर्ग और श्लोकोंकी संख्या न्यूनाधिक प्रमाणमें पायी जाती है, परन्तु उनके एक श्लोकसे ऐसाही पता चलता है। वाल्मीकि संस्कृत भाषाके आदि कवि गिने जाते हैं और उनकी रची हुई रामायण अद्यपि उनके नामसे प्रसिद्ध है।

रामायण एवम् रामचरित्रके पठन पाठनसे भारतवासियोंका बड़ा उपकार हुआ है। प्रत्येक मनुष्य रामचरित्रका अनुगामी बनना चाहता है। उसके प्रतिदिनके पाठसे, उसकी कथाओंके श्रवणसे अब तक न मालूम कितने मनुष्योंके चरित्र पर प्रभाव पड़ चुका, न जाने कितने मनुष्योंका जीवन पवित्र बन चुका और न जाने कितने मनुष्यको नीतिकी शिक्षा मिल चुकी है।

वाल्मीकि जैसे कवि थे, वैसेही धर्मिष्ट और पवित्र भी थे।

रामचन्द्र भी उनके गुणोंको भली भांति जानते थे। वनवासके समय चित्रकूट पर वाल्मीकिके पासही उन्होंने कुछ दिन निवास किया था। इसके अतिरिक्त जब उन्होंने सीताका परित्याग किया था, तब वाल्मीकिनेही उन्हें अपने आश्रममें स्थान दिया था। रामचन्द्र यह देख कर कि सीता वाल्मीकिके संरक्षणमें हैं। उनकी ओरसे बिलकुल निश्चिन्त हो गये थे।

वाल्मीकिने लव और कुशको वेद वेदाङ्ग तथा धनुर्वेदकी शिक्षा दी थी। उनके निकट अनेक शिष्य विद्याध्ययन किया करते थे, जिनमें भरद्वाज मुख्य थे। वाल्मीकि जिस समय अपने प्रारम्भिक जीवन और ऋषि जीवनकी तुलना करते, उस समय उन्हे एक साथही विषाद और हर्ष होता। सती सीता तथा अन्य लोगोंको वे अपनी जीवनी सुनाते और कहते, कि यदि कुपथगामी मनुष्य भी सावधान हो कर सुपथमें पदार्पण करे तो वह नगण्य दशासे महा समर्थ और महा पराक्रमी बन सकता है।

वाल्मीकिका यह कथन सर्वथा सत्य है और स्वयं उनकी जीवनीसे सिद्ध होता है। उस समय गुण ग्राहकताका युग था। सर्वत्र गुणकी ही पूजा होती थी। यही कारण था, कि वाल्मीकि उच्च पदको प्राप्त कर सके और सर्वत्र पूजनीय माने गये। ऋषि-मण्डल, राजमण्डल और प्रजामण्डलमें उनका एक समान आदर होता था। जन समाजके सम्मुख उन्होंने रामचन्द्रका और विपथ गामियोंके सम्मुख अपना निजी आदर्श रक्खा

है। आज यदि उनकी रामायणका अस्तित्व न होता तो सम्भव था कि रामचन्द्रकी जीवनी भी अन्धकारमें पड़ी रहती, या समयके प्रवाहमें बह जाती और हमें उसकी अमूल्य शिक्षासे वञ्चित रहना पड़ता। धन्य है महात्मा वाल्मिकिको, जिन्होंने रामायणकी रचना कर भारतको धर्म्म और नीतिकी शिक्षा दी।

महात्मा वेदव्यास

महात्मा वेद व्यासका जन्म द्वापर युगमें कृष्णावतार के कुछ पहले हुआ था उनके पिताका नाम पराशर और माताका नाम सत्यवती था। उनका जन्म यमुना नदी के किसी द्वीपमें हुआ था। इसी लिये वह द्वैपायन या कृष्ण द्वैपायनके नामसे पुकारे जाते थे। बाल्यावस्थासेही बादरिकाश्रममें तप करने लगे थे, अतः बादरायण भी कहे जाते थे। पुराणोंके रचयिता और वेदोंके सभी विस्तारक व्यास नामसे प्रसिद्ध हैं, परन्तु इन्होंने वेदकी किसी गुप्त शाखाका उद्धार किया था, अतः यह वेद व्यास कहे जाते है।

प्रत्येक तीर्थमें स्नानकर वह बाल्यावस्थासेही बादरिकाश्रममें तप करने लगे थे। वह महा समर्थ, प्रतिभाशाली, जितेन्द्रिय और धर्म्मिष्ठ थे। शरीर ऊंचा और कृष्ण, परन्तु तेजपूर्ण था। वह जटा रखते, व्याघ्रचर्म्म धारण करते और अरण्य में रहते थे। पैल वैशम्पायन, जैमिनि, सुमन्तु, असित, देवल और रामहर्ष इत्यादि अनेकानेक उनके शिष्य थे। उन्होंने पैलको ऋग्वेद, वैशम्पायनको यजुर्वेद; जैमिनिको सामवेद, और सुमन्तुको अथर्ववेदकी भलीभांति सम्पूर्ण और विशेष रूपसे शिक्षा दी थी।

महात्मा वेदव्यास

सरस्वती और दृषद्वती इन दो नदियोंके बीचकी पवित्र भूमिको ब्रह्मावर्त्त कहते हैं। सारस्वत प्रदेश प्राचीन राजकुमार और वन्दनीय ऋषियोंका निवासस्थान था। सरस्वतीके तटपर अनेक महर्षियोंके आश्रम थे। महात्मा वेदव्यासका भी आश्रम वहीं था। उन्होंने वहां अपरिमित ज्ञान सम्पादन किया था और उनके प्रचारार्थ अनवरत परिश्रम किया था। वहीं उनके निकट सहस्त्रावधि शिष्योंकी भीड़ लगी रहती थी और तत्वोंपर वाद हुआ करता था। उस समय उनके समान और कोई विद्वान न था। प्रकृति निरीक्षण और अध्यात्म ज्ञानमें वह अद्वितीय थे। अध्यात्म रामायणकी रचना उन्होंने की थी और ऋषि मुनियोंको गीता उन्होंने सुनायी थी। (देखो अध्यात्म रामायण) इससे ज्ञात होता है कि रामावतार उनके पूर्व ही हो चुका था।

वेदव्यासने महाभारत नामक विख्यात ऐतिहासिक ग्रन्थकी रचना की है। महाभारत वीररसका प्रधान काव्य-ग्रन्थ है। महाभारतके अतिरिक्त व्यासने भागवतादि अठारह पुराणकी संहिताओंका प्रणयन किया है। दिन प्रतिदिन अज्ञानता बढ़ती जा रही थी, लोग ज्ञानगम्य और कठिन वेदादि ग्रन्थोंका रहस्य समझनेमें असमर्थ हो रहे थे, यह देखकर वेदकी रक्षाके लिये जो कुछ करते बना, वह व्यासने कर दिखाया। अन्तमें उन्होंने ब्रह्म सूत्रकी रचना की। ब्रह्मसूत्रमें उपनिषदोंके गूढ़ अर्थोंका सरल स्पष्टीकरण दिया गया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने

उत्तर मिमांसा, धर्म्म संहिता और सूत्रोंकी रचना की थी। पुराण महाभारत तथा अपने अन्यान्य ग्रन्थ उन्होंने अपने शिष्योंको पढ़ाये थे और उन्होंने उनका प्रचार किया था। वेद्व्यासके सभी ग्रन्थ मनन करने योग्य हैं।

हस्तिनापुरके शान्तनु राजाका वंश छिन्न हो रहा था। उसे वृद्धिगत करनेके लिये सत्यवतीने व्यासका स्मरण किया था। व्यासने अपने प्रतापसे धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुरको उत्पन्न कर वंस वृद्धि की थी। पाण्डव और कौरवोंके हिताहित पर वह बड़ा ध्यान रखते थे। कभी कभी वे स्वयं उपस्थित हो उन्हें सलाह भी देते थे।

वनवास कालमें पांण्डवोंको उन्होंने बड़ी सहायता दी थी। द्वैतवनमें उन्हें "प्रतिस्मृति" नामक विद्या सिखायी थी। उसी विद्याके प्रतापसे अर्जुनने शिव तथा इन्द्रादि देवताओं द्वारा दिव्यास्त्र प्राप्त किये थे। पाण्डवोंके विख्यात राजसूय यज्ञके समय भी वह इन्द्रप्रस्थमें उपस्थित हुए थे। वेद-व्यास योग विद्यामें बड़ेही निपुण थे और उसके योगसे वह दूर दूर की बातें देख, सुन और जान सकते थे।

वेद्व्यासने अग्नि, पृथ्वी, वायु, और अन्तरिक्षके समान महान शक्ति सम्पन्न पुत्र प्राप्त करनेके लिये महा रमणीय मेरु-पर्वतके शिखरपर दीर्घकाल पर्य्यन्त उग्र तप किया था। सदा शिवने प्रसन्न हो उनकी यह इच्छा पूर्ण की थी। उनके प्रतापसे उन्हें श्रेष्ठ ब्रह्मनिष्ठ पुत्रकी प्राप्ति हुई थी। उन्होंने उसका नाम

शुकदेव रक्खा था।। शुकदेव भी अपने पिताके समान महान योगीन्द्र हुए और अपना नाम अमर कर गये।

तत्वज्ञ महात्मा व्यासने श्रीमद्भागवतमें गुह्यार्थ रक्खा है। अज्ञानी जन उसे न समझ सकनेके कारण कुतर्क करते हैं और श्रीकृष्णको लाञ्छन लगाते हैं। वे कहते हैं, कि श्रीकृष्णने अनुचित कर्म्म किये, परन्तु यह उनकी भूल है। वेदान्त कर्त्ता तत्वदर्शी व्यास भगवानने उसका सत्य अर्थ आत्म (ईश्वर) ज्ञान पर घटाया है। उनके पुत्र शुकदेवजीने वही पवित्र अर्थ सङ्केतमें राजा परीक्षितको समझाया था। उसके यथार्थ-ज्ञानसे परीक्षितका सातही दिनमें आत्मकल्याण हो गया था। उनके साथही सहस्रावधि मनुष्य उस सभामें वही उपदेश श्रवण करते थे, परन्तु कथाका मर्म्म न समझ सकनेके कारण उनका कल्याण न हुआ। हमें किसी तत्वज्ञ विद्वान द्वारा वह गुह्यार्थ समझ लेना चाहिये। वास्तविक ज्ञानके अभावसे केवल उसकी अलङ्कारिक बातोंको लेकर, अर्थका अनर्थ और किसी महा-पुरुषकी निन्दा करना एक अक्षम्य और भयङ्कर भूल है। व्यासके समान तत्वज्ञ और गहन गतिवाले महापुरुषके लेखका गुह्यार्थ समझ लेना सहज नहीं है। यह तो ज्ञाता पुरुषोंकी कृपासेही हो सकता है।

महात्मा वेद व्यासने अनेक महत्कार्य्य किये हैं, परन्तु आर्य्या वर्त्तमें महाभारतके कारण उनकी जितनी कीर्ति है और जितना गुण-गान होता है, उतना और किसीसे नहीं। उस ग्रन्थकी

रचना और विस्तारकी समता कर सके, ऐसा संसारमें एक भी ग्रन्थ नहीं है। महाभारत अपने नामानुसार वास्तवमें महाभारत है। समस्त संसारने उसका गौरव स्वीकार किया है। इस समय महाभारतमें करीब एक लाख श्लोक और २२०००० पंक्तियां हैं। होमर कविके इलियटमें १६००० पंक्तियां भी नहीं हैं। इस बातसे महाभारतका आकार जाना जा सकता है। महाभारत काव्य अठारह पर्व किंवा खंडमें विभक्त है। श्रीमद्भगवद्गीता समान अद्वितीय ग्रन्थ उसके अन्तर्गत है। अनेक युरोपीय विद्वानोंने भी स्वीकार किया हैं, कि गीताके समतुल्य ग्रन्थ संसार भरमें नहीं है। यह सब बातें देखनेसे महात्मा वेदव्यासके पाण्डित्यका पूरा पूरा पता चलता है।

वेदव्यासके सिद्धान्तोंको लेकर छठीं शताब्दिमें योगीधर्म्मकी स्थापना हुई थी। आत्मा सर्वत्र एक है। वेदका ज्ञान काण्डही सत्य धर्म्म है। पूर्ण ज्योति यह आत्माकी एक दृष्टि है। अविद्या संसारका मूल है। स्त्री-सङ्ग नरकका द्वार है। देव-कल्पित है। क्रियायें मनोविकारके फल है। सिद्ध पुरुषही देव है। गुरु आज्ञाही महावाक्य है। 'अहं ब्रह्मास्मि' यही तारण मन्त्र है। 'सोह' यह शब्द ज्ञानका भण्डार है। ॐकारका चिंतन गुह्य मन्त्र है। नादाभ्यास स्वर्ग दर्शन है। धौति, बस्ति आदि क्रियाओं द्वारा सिद्धी प्राप्त होती है। न्याय शास्त्र तर्कवाद है, इत्यादि उस धर्म्मके सिद्धान्त हैं।

इस धर्म्मके अनुयायियोंने जैन और बौद्धोंसे वादा विवाद

कर वेदधर्म्मकी रक्षा की थी। उनके आचार्य्य त्यागी और शाकाहारी होते थे। समयके प्रवाहमें पड़, वह भी मूर्तिपूजा और होम हवन करने लगे हैं। पूर्व कालमें इस धर्म्मके सञ्चालक ऋषि मुनि और समर्थ योगीश्वरही होते थे। स्वनाम धन्य महात्मा वशिष्ठ इसी धर्म्मके आचार्य्य गिने जाते थे। अनुमान होता है कि व्यासके नाम पर उदर परायण लोगोंने स्वार्थ सिद्धिके लिये अनेक कल्पित बातें उसमें सम्मिलित कर दी हैं। उनकी अनेक बातें ऐसी है, कि जिन्हें ऋषिमुनि और व्यासके नाम पर अन्तरात्मा माननेको तय्यार नहीं होता।

महर्षिव्यासने अनेक प्रकारसे प्रजाका हित किया था। प्रजाने भी उन्हें भगवानके महान् उपपद द्वारा सम्मानित कर अपने आन्तरिक प्रेमका परिचय दिया था। आज यद्यपि उनके ग्रन्थोंका विषय विवाद ग्रस्त बन रहा है, तथापि उन्होंने जो कुछ किया है, वह यावच्चन्द्रदिवाकरौ उनका नाम अमर रखनेके लिये पर्य्याप्त है।

महात्मा द्रोणाचार्य्य

द्रोणाचार्य्य भरद्वाज ऋषिके पुत्र थ। ब्राह्मण होते हुए भी वे शूरवीर और युद्ध कला कुशल थे। धनुर्वेदका उन्हें इतना गहरा ज्ञान था, कि वे उस शास्त्रके आचार्य्य माने जाते थे उन्होंने अपने पिताके निकट वेद वेदाङ्ग और अग्नि देवके निकट धनुर्विद्याका ज्ञान प्राप्त किया था। अध्ययनके बाद उन्होंने कुछ काल पर्य्यन्त तपस्या की थी। तदनन्तर कृपाचार्य्यकी कृपया नामक बहिनके साथ विवाहकर वह गार्हस्थ्य धर्मका पालन करने लगे थे। कृपयासे उन्हें अश्वत्थामा नामक प्रतापी पुत्र उत्पन्न हुआ था।

प्रारम्भिक जीवनमें द्रोणाचार्य्य पर दरिद्र-देवकी पूर्ण कृपा थी। यहां तक, कि जब पड़ोसके लड़के दूध पीते और उन्हें देख अश्वत्थामा रोता और हठ करता तब उसे चावलका धोवन दिया जाता। इस दशासे मुक्त होनेके लिये द्रोणाचार्य्य परशुरामके पास गये और उनसे तदर्थ प्रार्थना की। परशुरामने कहा—"भूमि तो मैं ब्राह्मणोंको दान कर चुका हूं। अब मेरे पास मेरा शरीर और शस्त्रास्त्र शेष हैं। इसमेंसे तुम्हें जो चाहिये, वह मांग लो।" द्रोणने हितकर समझकर उनके निकट

अस्त्रविद्या सम्पादन की। परशुरामकी कृपासे उनकी योग्यता इतनी अधिक चढ़ गयी, कि वे उस शास्त्रके आचार्य्य बन गये और भविष्यमें द्रोणाचार्य्यके नामसे विख्यात हुए।

द्रोणाचार्य्य निर्धन होने पर भी सदाचारी, सद्गुणी और विद्वान थे। वह जैसे क्षात्रविद्यामें कुशल थे, वैसेही ब्रह्मविद्यामें भी निपुण थे। राजा द्रुपद उनका गुरु-बन्धु था। एक दिन आशावश वह उनके पास गये। सहायताकी बात दूर रही, उसने उनसे कहा, कि मै तुम्हें पहचानता भी नहीं हूं। द्रोणाचार्य्यने अनेक प्रकारसे अपना परिचय दिया और पूर्वकी बातें याद दिलायीं, परन्तु कोई फल न हुआ, तब द्रोणाचार्य्यको यह देख कर बड़ा क्रोध आया और उन्होंने इस अपमानका बदला चुकानेकी प्रतिज्ञा की। संसारमें निर्धनके साथ सर्वत्र ऐसाही व्यवहार होता है। द्रोणाचार्य्य खिन्न होकर अपने घर लौट आये। घरमें एक कपर्दिका भी न थी। परिवारका निर्वाह बड़ी कठिनाईसे होता था। अन्तमें उन्होंने कृपाचार्य्यके पास जाना स्थिर किया। कृपाचार्य्य भीष्मके आश्रय सम्पन्न थे और हस्तिनापुरमें रहते थे। स्त्री और पुत्रको साथ ले, द्रोणाचार्य्य उनके पास गये। कृपाचार्य्यको उनके आगमनसे बड़ा आनन्द हुआ और उन्होंने उनके रहनेके लिये समुचित व्यवस्था कर दी।

द्रोणाचार्य्य, धृतराष्ट्र और भीष्मसे मिलकर राज्याश्रय ग्रहण करना चाहते थे। एक दिन वह नगरके बाहर जहां राज-

कुमार—कौरव और पाण्डव—गेंद खेल रहे थे, जाकर बैठ गये और खेल देखने लगे। खेलते खेलते गेंद एक अन्धे कुएमें गिर गया, अतः सब राजकुमार झाँक झांकर उसमें देखने लगे। देखते देखते युधिष्ठिरकी मुन्द्रिका भी उसीमें गिर पड़ी। यह देखकर उनके मुखपर विषादकी कालिमा छा गयी और क्षण-मात्रके लिये सब लोग विचारमें पड़ गये।

द्रोणाचार्य दूरसे यह सब हाल देख रहे थे। अब वे राज-कुमारोंके पास आये और बोले—अभी तुम लोग कच्चे गुरुके चेले हो—असाध्य साध्य करना नहीं जानते। देखो मैं इसी क्षण तुम्हारी चीजें निकाले देता हूं। यह कह कर द्रोणाचार्य्य ने मन्त्र पढ़, एक कुश कुएमें फेंका और वह उसी क्षण गेंद निकाल लाया। इसके बाद उन्होंने एक बाण मारा और वह मुद्रिका लेकर लौट आया।

यह चमत्कार देखकर राजकुमारोंको बड़ा आश्चर्य्य हुआ। जब द्रोणाचार्य्य चलने लगे, तो उन्होंने उनका परिचय पूछा। द्रोणाचार्य्यने कहा—"मेरा नाम द्रोण है। मैं कृपाचार्य्यके यहां आया हू और भीष्म मुझे पहचानते हैं।"

राजकुमारोंने उनसे अपने साथ चलनेके लिये बड़ा आग्रह किया, परन्तु द्रोणाचार्य्यने कहा—नहीं, मैं अभी न चलूंगा। पहले तुमलोग जाकर सूचना दो, बादको मैं आऊंगा।

राजकुमार उनका गुण गान करते हुए भीष्मके पास गये और उनसे सारा हाल कहा। महामति भीष्मने तुरन्त निश्चय

कर लिया, कि वह द्रोणाचार्य्य हैं। उसी क्षणवे कृपाचार्य्य के यहां गये और द्रोणाचार्य्यको पालकीमें बैठालकर अपने मन्दिर लिवा लाये। यथाविधि पूजनादिक कर उन्होंने उनका सन्मान किया और सविनय आगमनका कारण पूछा।

द्रोणाचार्य्यने कहा,—भीष्म! दारिद्र देवकी मुझ पर असीम कृपा है। वह कहीं स्थिर होकर मुझे बैठने नहीं देते। तुम्हारे राज्यमें उसका कोई वश नहीं चलता, यही सुनकर मैं यहां आया हूं।

भीष्म द्रोणाचार्य्यके इन युक्तियुक्त वचनोंका तात्पर्य्य समझ गये। उनकी योग्यता, शास्त्र प्रवीणता, वह पहलेहीसे जानते थे, अतः उन्हें आश्रय दे, रहनेकी व्यवस्था करदी और राजकुमारोंको शिक्षा देनेका कार्य्य सौंपा।

द्रोणाचार्य्य विद्यालयकी स्थापना कर राजकुमारोंको विविध विषयकी शिक्षा देने लगे। शीघ्रही यह समाचार देशान्तरोंमें व्याप्त हो गया और आंध्र, वृष्णि, पांचाल, वाल्हिक, सौराष्ट्र इत्यादि देशोंके राजकुमार उपस्थित हो, उनके निकट विद्याध्ययन करने लगे। कर्ण और अश्वत्थामा भी वहीं अभ्यास करने लगे।

एक दिन हिरण्य धेनुक नामक निषादका एकलव्य नामक पुत्र उनके पास आया। उसने धनुर्विद्या प्राप्त करनेकी इच्छा व्यक्त की। द्रोणाचार्य्यने उसे अनधिकारी बतला कर पढ़ाना अस्वीकार किया। एकलव्य उद्योगी पुरुष था। वह अरण्यमें पर्णकुटी बना कर वहीं रहने लगा और द्रोणाचार्य्यकी प्रतिमा स्थापित कर

उसके निकट अभ्यास करने लगा। आचार्य्यकी प्रतिमाको वह आचार्य्यही समझता और नित्य भक्ति पूर्वक उसकी पूजा करता। कुछही दिनोंमें वह उस विद्याका प्रवीण पण्डित बन गया।

द्रोणाचार्य्यके निकट सहस्राबधि राजकुमार धनुर्विद्या सम्पादन करते थे। वह सबोंको पढ़ानेमें परिश्रम करते थे, परन्तु पाण्डवोंकी बुद्धि और वृद्धि देख उन पर विशेष प्रसन्न रहते थे। युधिष्ठिरने उनके निकट शस्त्रास्त्र विद्या सम्पादन की परन्तु विशेष कर वे अपनी बुद्धि, धार्म्मिकता और शिष्टताके कारण प्रसिद्ध हुए। अर्जुनने हय विद्या, गज विद्या रथ विद्या और धनुर्वेदका विशेष रूपसे अध्ययन किया भीम और दुर्योधन गदा युद्धमें, नकुल अश्वविद्यामें और सहदेव ज्योतिष तथा खड्ग प्रहार करनेमें प्रवीण हुए। इन सबोंमें द्रोणाचार्य्यके अर्जुन विशेष प्रिय थे। वह उनकी बुद्धि और तत्परता की प्रशंसा किया करते थे। अर्जुन भी आचार्य्य पर बड़ी भक्ति रखते थे। अश्वत्थामा रहस्य मन्त्रमें प्रवीण हुए और इसी प्रकार अपनी अपनी बुद्धिके अनुसार सभी राजकुमार किसी न किसी विद्यामें निपुण हो गये।

द्रोणाचार्य्य एक दिन सब शिष्योंको साथ ले सरितामें स्नान करने गये। शिष्योंके निवृत्त हो जाने पर जलमें प्रवेश कर वह स्नान करने लगे। दैवयोगसे मगरने उनका एक पैर पकड़ लिया। द्रोणाचार्य्यने शिष्योंको पुकार कर अपनी रक्षा

करनेको कहा। मगरका नाम सुनतेही सब घबड़ा कर किंकर्तव्य विमूढ़ बन गये, परन्तु अर्जुनने तत्काल तीक्ष्ण शरसे मगरका प्राण हरण कर आचार्य्यकी रक्षा की आचार्य्य यह देख कर और भी प्रसन्न हो उठे और अर्जुनको ब्रह्म शिरो नामक एक अस्त्र उपहार दिया।

द्रोणाचार्य्यने द्रुपदसे अपने अपमानका बदला चुकानेकी प्रतिज्ञा की थी, अतः जब राजकुमार विद्याध्ययन कर चुके तब गुरुदक्षिणामें द्रुपदको बन्दी बना कर अपने पास ले आनेकी आज्ञा दी। गुरुकी यह बात सुन सब राजकुमारोंने सैन्य ले द्रुपदके राज्य पर आक्रमण किया, परन्तु द्रुपद महा पराक्रमी था अतः पराजित हो सब लौट आये। इसके बाद अकेले अर्जुन उसे बन्दी कर आचार्य्यके पास ले आये। उस समय द्रुपदने द्रोणाचार्य्यसे क्षमा प्रार्थनाकी, अतः उन्होंने उसका अर्ध राज्य ले बन्धन मुक्त किया। एक तो अर्जुनको वह ऐसेही अधिक चाहते थे, तिस पर उसका यह पराक्रम देख, वह और भी प्रसन्न हो उठे। उन्होंने उसे एकान्तमें बुला कर ब्रह्मास्त्र विद्या प्रदान की और उचित समय पर उसका प्रयोग करने की सूचना दी।

जब कौरव और पाण्डवोंमें वैमनस्य हो गया। और युद्धकी सम्भावना दिखायी देने लगी, तब द्रोणाचार्य्यने दुर्योधनको समझाते हुए कहा, कि पाण्डवोंको अर्ध राज्य देदो, व्यर्थ युद्ध न करो। भीष्म वृद्ध हैं और मैं भी वृद्ध हूं। हम दोनों युद्धमें अब विशेष पराक्रम नहीं दिखा सकते। साथही अर्जुन मुझे अश्व-

त्थामासे अधिक प्रिय है। उसके विरुद्ध युद्ध करनेकी मेरी इच्छा नहीं होती।

पर जब दुर्योधनने किसीकी बात न सुनी और युद्ध अनिवार्य्य हो गया, तब द्रोणाचार्य्य अपने क्षात्रकर्म्मको धिक्कारने लगे। अबतक उन्होंने राज्याश्रय ग्रहण किया था, अतः विवश हो उन्हें अश्वत्थामा सहित कौरवोंका पक्ष लेना पड़ा, परन्तु उनका हृदय तो पाण्डवोंकीही ओर था। यह होते हुए भी उन्होंने कर्त्तव्य पालनमें त्रुटि न आने दी और युद्ध करनेमें कोई बात उठा न रक्खी। युद्धके समय उनकी अवस्था इतनी अधिक थी, कि शरीर झुक गया था तथापि वह समरस्थलीमें तरुणोंकी तरह उछलते थे। भीष्मने दश दिन सैन्य सञ्चालन और महाभयङ्कर युद्ध किया। उनके बाद इन्होंने प्रथम धृष्टद्युम्नके साथ युद्ध किया। दुर्योधनके कहनेसे युधिष्ठिरको पकड़नेकी चेष्टा की, परन्तु श्रीकृष्ण और अर्जुनने उनकी रक्षा की, अतः कोई फल न हुआ। इसके बाद द्रोणाचार्य्यने अर्जुनसे युद्ध किया, परन्तु धृष्टद्युम्नने बाधा दी अतः अर्जुनका भी बाल बाँका न हुआ।

दूसरे दिन द्रोणाचार्य्यने क्रुद्ध हो प्रतिज्ञा की, कि आज पाण्डव पक्षके किसी महावीरका प्राण आवश्य लूंगा। उसदिन उन्होंने चक्रव्यूहकी रचना की और उसमें फंसकर वीर अभिमन्युका नाश हुआ। अभिमन्युकी मृत्युसे क्रुद्ध हो, अर्जुनने जयद्रथ वधकी प्रतिज्ञा की। द्रोणाचार्य्यने क्रोञ्च, पद्म, शकट,

शुचिमुख इत्यादि भयङ्कर व्यूहोंकी रचना की परन्तु अर्जुनने जयद्रथको खोजकर मार डाला। जयद्रथके वधसे कौरवदल में हाहाकार मच गया और दुर्योधनके शोकका पारावार न रहा। उसने दुःखित हो द्रोणाचार्य्यसे कहा—मालूम होता है, कि आप युद्ध ठीकसे नहीं करते।"

दुर्योधनकी कटु बात सुनकर द्रोणाचार्य्यको बड़ा क्रोध आया। उन्होंने प्रतिज्ञा की, कि आज रात्रिमें भी मैं कवच न उतारूंगा और युद्ध करता रहूंगा द्रोणाचार्य्यकी इस प्रतिज्ञाका समाचार पाण्डवोंने भी सुना। दोनों ओर मशालें जलाई गयीं और रात्रिभर युद्ध होता रहा। द्रोणाचार्य्य द्वारा पाण्डव पक्षके 'अनेकानेक सैनिक हताहत हुए। कौरवदलका पाण्डवोंने भी यही हाल किया। दोनों ओर के सैनिकोंको उस दिन बड़ा परिश्रम करना पड़ा। रात्रिभर द्रोणाचार्य्य अवि-चल भावसे युद्ध करते रहे। केवल अर्जुनके शराघातसे वह किसी किसी समय तिलमिला उठते थे और रथध्वजमें मत्था टेक देते थे।

पांचवे दिन मध्यान्हमें द्रोणाचार्य्यकी मारसे पाण्डव बड़े व्याकुल हुए। श्रीकृष्णने एक युक्ति सोची और तदनुसार इन्द्र-वर्म्माका अश्वत्थामा नामक प्रसिद्ध हाथी भीमसे मरवा डाला। इसके बाद चारों ओर शोर मचाया गया, कि अश्वत्थामा मर गया। द्रोणाचार्य्य इस दुरभिसन्धिको न समझ सके और समझे कि मेरा पुत्र मारा गया। सत्यासत्यका निर्णय करनेके

लिये वह युधिष्ठिरके पास गये। युधिष्ठिरने यद्यपि स्पष्ट उत्तर न दिया, परन्तु वाद्योंके घोषमें द्रोणाचार्य्य पूरी बात न सुन सके और उन्हें विश्वास हो गया कि अश्वत्थामाका मृत्यु-संवाद ठीक है।

पुत्रकी मृत्यु सुनकर द्रोणाचार्य्यको बड़ा क्रोध आया और उन्होंने ब्रह्मास्त्रका प्रयोगकर पाण्डव दलको बड़ी हानि पहुंचायी। इसी समय सप्त ऋषियोंने आकर कहा—"द्रोणाचार्य्य ! तुम बड़ा अधर्म्म कर रहे हो। वेदज्ञ ब्राह्मण होकर तुम्हें यह क्षात्रकर्म्म न करना चाहिये था। खैर हुआ सो हुआ। अब तुम्हारा अन्तिम समय समीप है, अतः युद्ध छोड़कर कल्याण साधन करो।

सप्त ऋषियोंके साथ द्रोणाचार्य्यके पिता भी थे। उन्होंने भी यही बात कही। द्रोणाचार्य्यने तत्काल शस्त्रफेंक दिये और समाधिमें लीन होकर प्राण त्याग दिये। उनके मस्तिष्कसे एक दिव्य ज्योति निकलकर सूर्य्यमें मिल गयी। यह चमत्कार केवल कृष्ण, अर्जुन, युधिष्ठिर, कृपाचार्य्य, और सञ्जय यही पांच जन देख सके। इसके बाद धृष्टद्युम्नने उनका शिर काट लिया।

द्रोणाचार्य्यका स्वभाव कुछ क्रोधी था। उनका शरीर लम्बा और वर्ण श्याम था। वृद्धावस्थामें कमर झुक गयी थी और बाल बिल्कुल सफेद हो गये थे। वह वेद शास्त्र पारङ्गत युद्ध कला कुशल, मन्त्र शास्त्रके ज्ञाता और त्रिकाल ज्ञानी थे। सन्ध्यादिक नित्यकर्म्म करनेमें वह सदा नियमित रहते थे।

समरस्थलीमें भी सन्ध्या और अग्निकी उपासना करनेके बादही वह युद्ध करने जाते थे। उनकी ध्वजापर कृष्णाजिन (एक प्रकारका मृगचर्म्म) कमण्डल और वेदीके चिह्न अङ्कित थे। द्रोणाचार्य्यने चार दिन और एक अहोरात्र युद्ध किया था। मरते समय उनकी अवस्था ४०० वर्षके करीब थी (महाभारत द्रोण पर्व अध्याय १२५ श्लोक ७३) वह राजपुरोहित, आचार्य्य, कौरवोंके मन्त्री एवम् सेनापति थे। कौरवोंके आश्रित होनेके कारण उन्होंने किसी प्रकार उनका अनिष्ट नहीं किया तथापि नीतिमान पाण्डवोंकी विजय चाहते थे। द्रोणाचार्य्यके समान ब्राह्मण कुलमें शस्त्रविद्याका और कोई आचार्य्य नहीं हुआ। धन्य है ऐसे महापुरुषको!

महामुनि पतञ्जलि

महात्मा पतञ्जलि अङ्गिरा ऋषिके पुत्र थे। वह इलावर्त्तके गोनर्द नामक प्रदेशमें रहते थे और पद्म नामक नदीके तटपर तपस्या किया करते थे। वह विद्वान, प्रतिभा शाली तत्वज्ञ और उत्साही पुरुष थे। उनकी स्त्रीका नाम था लोलुपा। लोलुपा किसी उच्च कुलकी कन्या थी, परन्तु दुःखाक्रान्त हो गृहत्यागिनी बन गयी थी। कर्त्तव्य विमूढ़ हो वह एक वट वृक्षकी गुफामें छिप रही थी। पतञ्जलिने उसे अपने योग्य देखकर बातचीत की और पाणिग्रहण कर लिया। लोलुपाकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी। ऋषि उसे जो कुछ सिखाते, वह तुरन्त सीख लेती थी। गायन और वादन कलामें भी वह निपुण हो गयी थी। उसके द्वारा वह पतञ्जलिका मनोरञ्जन किया करती थी। ऋषिगण एकत्र हो जब ईश्वर भजन करते, तब ऋषि और ऋषिपत्नी दोनों एक साथ मिलकर भजन गाते थे।

पतञ्जलि महान् योगी पुरुष थे। उन्होंने योग सूत्रकी रचना की है। उसे "पतञ्जलि योग" किंवा "सेश्वर सांख्य" कहते हैं। षड्दर्शनोंमें उसकी गणना होती हैं, अतः उसे योगदर्शन भी कहते हैं।

महामुनि पतञ्जलि

कपिल मुनिके सांख्य दर्शन और पतञ्जलिके योगदर्शनमें अधिक अन्तर न होनेके कारण दोनोंको सांख्य किंवा योगशास्त्र कहतेहैं। कपिलमुनिके सांख्यको निरीश्वर सांख्य कहते है। उन्होंने अपने ग्रन्थमें बतलाया है, कि जड़ और चेतन यही दो वस्तु है और उन दोनोंसे सृष्टि उत्पन्न हुई है। सृष्टिका और कोई रचयिता नहीं है।

पतञ्जलिने अपने ग्रन्थमें ईश्वरका प्रतिपादन किया है, अतः उसे सेश्वर सांख्य किंवा योगदर्शन कहते हैं। कपिलमुनिने जिस तत्व पर विचार किया है उसे पतञ्जलिने स्वीकार किया है मुक्तिके वास्तविक साधन परही उन्होंने विचार किया है। भूतपूर्व और समकालीन आचार्य्योंके विचार एकत्र कर उन्होंने "योगानुशासन" नामक ग्रन्थ रचा है।

महर्षि पतञ्जलिने कपिलमुनिके पचीस तत्वोंको स्वीकार किया है, परन्तु प्रकृतिके बन्धनमें जकड़े हुए पुरुषके लिये स्वतः

+दर्शन छः है कपिलका सांख्य, पतञ्जलिका योग, गौतमका न्याय कणादका वैशेषिक, जैमिनिका पूर्व मिमांसा और व्यासका उत्तर मिमांसा। कपिल और पतञ्जलिके दर्शनोंमें साम्य है अतः उन दोनोंको सांख्य किंवा योगशास्त्र कहते हैं इसी प्रकार गौतम और कणादके दर्शनोंको न्याय किंवा तर्कशास्त्र तथा व्यास और जैमिनिके दर्शनोंको मिमांसा किंवा वेदान्त शास्त्र कहते हैं। यही छः ग्रन्थ षड्दर्शनके नामसे प्रसिद्ध है।

इनके अतिरिक्त चार्वाक किंवा सौत्रांन्त्रिक, योगाचार, माध्यमिक, वैभाषिक, बौद्ध और केवलि मत यह छः भेद बाह्यन षड्दर्शन हैं।

मोक्षकी प्राप्ति असम्भव मान कर उन्होंने पुरुषको मोक्ष बुद्धि देनेवाले एक ज्ञानवान नित्य और शुद्ध ईश्वरकी आवश्यकता सिद्ध की है। पतञ्जलिके योग शास्त्रमें यही एक तत्व अधिक है कपिलने जिन तत्वोंको लेकर बाह्य सृष्टिकी रचना पर विचार किया है, उन्हींको लेकर पतञ्जलिने विस्तार पूर्वक अन्तर सृष्टिकी खोजकी है। उन्होंने बतलाया है, कि मुक्ति ईश्वर कृपासे होती है और उसकी प्राप्तिके लिये पुरुषको योग साधन करना चाहिये।

योगशास्त्रके चार पाद हैं प्रथम पादमें चित्त वृत्तिके निरोधसे लेकर समाधि पर्य्यन्तके साधन बतलाये गये हैं और उन पर विचार किया गया है। इसे सिद्ध पाद कहते हैं। क्रिया नामक द्वितीय पादमें विक्षिप्त चित्त वृत्तिको स्थिर करनेकी क्रियायें और समाधि साधनके योगादि आठ बहिरंग बतलाये गये हैं। विभूति नामक तृतीय पादमें धारण ध्यान और समाधि इन अन्तरङ्ग साधनों और विभूतिका वर्णन है। फल नामक चतुर्थ पादमें सिद्धि और मोक्षकी प्राप्ति पर विचार किया गया है।

मोक्षप्राप्तिके अतिरिक्त योग शास्त्रके दो हेतु और हैं। एक तो किसी शुभ कार्य्यकी सिद्धिके लिये अरण्यादि निवृत्ति स्थानमें निवास करना और दूसरे विषय व्याधियोंसे योगासन और क्रियाओं द्वारा मुक्त होना। स्थिर चित्तसे उद्योग (तपस्या) करनेसे कार्य्य सिद्धि होती है और आसनादिकके प्रयोगसे असाध्य रोग-जिन पर औषधियां असर नहीं करती, आराम हो जाते हैं।

योगशास्त्रके अतिरिक्त पतञ्जलीने पाणिनिके व्याकरण पर महा—भाष्य लिखा था। चिकित्सा नामक एक वैद्यक ग्रन्थ भी उन्होंने रचा था। उनके इन कार्य्योंमें लोलुपाने बड़ी सहायता दी थी

पतञ्जलि कब हुए यह निश्चित रूपसे नहीं बतलाया जासकता। भाष्यहीके आधार पर भर्तृहरिने कारिका लिखी थी, अतः ये भर्तृहरिके पूर्व हुए यह सर्वथा निष्पन्न है। महाभाष्यके कुछ शब्दोंको लेकर कुछ लोग उनका समय ईसाके पूर्व २०० बत-लाते है, परन्तु व्यासके समयमें उनका योगदर्शन वर्तमान था-उस पर उनका भाष्य है अतः ज्ञात होता है, कि उनका अस्तित्व पांच हजार वर्षके पूर्व था।

पतञ्जलिके योगदर्शनसे ज्ञानी, विद्वान, योगी और मुमुक्षु-गण लाभ उठाते हैं। ऋषि मुनियोंके दीर्घायुषी होनेका कारण योग ही था। योगहीके कारण वे अपने चमत्कारों द्वारा संसारको चकित कर सकते थे और असाध्यको साध्य कर दिखाते थे। वास्तवमें योगहीके अभावसे आज हमारा आत्मबल नष्ट हो गया है और हमारी अधोगति होती जा रही है। आज, यदि योगके साधारण नियमों पर भी हम चलें तो रामचन्द्र, परशुराम, अर्जुन भीष्म और अन्यान्य महा पुरुषोंके समान प्रतापी और समर्थ हो सकते हैं।

चतुर्थ खण्ड
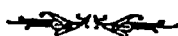
महान नृपति

पुरुरवा

चन्द्रवंशके आदि पुरुष धर्मवीर राजा पुरुरवा चन्द्रके पौत्र और बुधके पुत्र थे। उनकी माताका नाम था इला। इला सूर्य्यवंशी राजा इक्ष्वाकुकी बहिन थी। पुरुरवाका जन्म सत्ययुगमें हुआ था। उन्होंने प्रयाग—प्रतिष्ठानपुर बसा कर उसे अपनी राजधानी बनाया था। राजा पुरुरवा परम धार्मिक, शूर और धनुर्विद्या विशारद थे उन्होंने प्रजाका समुचित प्रेम सम्पादन कर अगणित यज्ञ किये थे। अपनी उदारताके कारण वह दानवीर कहे जाते थे। उन्होंने अपने अतुल पराक्रमसे अनेक अधर्म्मी दैत्योंका वध कर लोगोंको दुख मुक्त किया था। उनकी कीर्त्ति दिगदिगन्तमें व्याप्त हो रही थी। वह विष्णुके परम भक्त थे। उन्होंने अपनी प्रजाको

विद्वान और कलाकुशल बनानेके लिये बड़ा उद्योग किया था विद्या और कलाओंके ज्ञानसे देशका व्यवसाय और व्यवसायके कारण लक्ष्मीकी वृद्धि हुई थी। उनके राज्यमें कहीं अत्याचार न होता था। कोई किसीकी वस्तु हरण न करता था। प्राण जाने पर भी लोग झूठ न बोलते थे। ईर्षाद्वेष और विश्वासघात सुनाई भी न देता था। पुरुरवाके राज्यमें सर्वत्र शान्ति और सदाचार फैल रहा था।

अमरेश इन्द्र और राजा पुरुरवामें बड़ा सौहार्द था। वे आवश्यकता पड़ने पर एक दूसरेको सहायता दिया करते। जब इन्द्र और असुरोंका घनघोर युद्ध होता, तब वे पुरुरवाको बुलाते और उन्हें अपना सेनापति नियत करते। राजा पुरुरवा ऐसे प्रतापी थे, कि जिनको देखतेही दानव गण भाग खड़े होते थे।

महाराजा पुरुरवाने उर्वशी नामक अप्सराका पाणिग्रहण किया था। उर्वशीके विषयमें कहते हैं, कि वह नारायणकी जंघासे उत्पन्न हुई थी। नर नारायण नामक दो ऋषि बद्रिकाश्रममें तपस्या कर रहे थे। उनके इस कार्य्यमें बाधा देनेके लिये इन्द्रने कई अप्सरायें भेजीं, परन्तु नरनारायण जैसे तैसे तपस्वी न थे, अतः उनका किया कुछ न हुआ। इन्द्रका मान खण्डन करनेके लिये नारायणने जंघा पर एक पुष्प रख, उससे एक स्त्री उत्पन्न की। वह इतनी सुन्दर थी, कि उसको देखतेही लज्जित हो सब अप्सरायें वापस चली गयीं। नरनारायणने उसे इन्द्रको अर्पण किया। भविष्यमें वही उर्वशीके नामसे विख्यात हुई और पुरु-

रवाकी अर्द्धाङ्गिनी बनी। पुरुरवाने उसे केशी नामक दैत्यके हाथसे छुड़ाया था। उसी समय दोनोंकी सर्वप्रथम भेंट हुई थी। वहीं दोनोंने एक दूसरेके हृदयमें स्थान कर लिया था। यथा समय उर्वशीने अपना तन मन पुरुरवाको अर्पण कर दिया और पुरुरवाने उसे अर्द्धाङ्गिनीका आसन प्रदान किया।

एक समय उर्वशीको साथ लेकर पुरुरवा नन्दन वनमें विहार करने गये। वहां मन्दाकिनीके तटपर एक विद्याधर कुमारिका वालूमें खेल रही थी। उसका अलौकिक रूप लावण्य देख कर पुरुरवाको बड़ा आश्चर्य हुआ और वे कुछ काल तक अनिमेष दृष्टिसे उसकी ओर देखते रहे। उर्वशीको यह अच्छा न लगा और वह असन्तुष्ट हो कहीं चली गयी।

पुरुरवा उर्वशीके वियोगसे व्याकुल हो उठे। वह उन्मत्त की भांति भटकने और चारों ओर उसकी खोज करने लगे। खोज करते हुए उन्हें कहीं सङ्गम मणि मिल गया। कहते हैं, कि उसके प्रभावसे तुरन्त ही उर्वशीको उपस्थित होना पड़ा। उसे देखकर पुरुरवाके आनन्दका वारापार न रहा। वह उसे साथ लेकर अपने नगर लौट आये और पूर्ववत् शासनकार्य्य करने लगे।

कुछ काल उपरान्त उर्वशीके एक पुत्र हुआ, परन्तु उसने पुरुरवाको इस बातका पता भी न लगने दिया। यह संवाद छिपानेका एक कारण था कहते हैं, कि पुरुरवाने जब केशीके हाथसे उर्वशीको छुड़ाया तब उर्वशी उनपर मोहित हो गयी थी। वह पुरुरवाके साथ परिणय-सूत्रमें बद्ध होनेके लिये

आतुर हो रही थी, परन्तु इन्द्रकी आज्ञासे नाट्यभिनय करनेके लिये चित्रलेखाके साथ उसे देव-सभामें उपस्थित होना पड़ा। भरत मुनिके लक्ष्मी स्वयंवराख्यानका अभिनय होनेको था। मेनकाने वारुणीका और उर्वशीने लक्ष्मीका वेश धारण किया। अभिनय करते समय मेनकाने उर्वशीसे पूछा—सुन्दरि! त्रैलोक्यमें तुम्हें कौन पुरुष अधिक प्रिय है?

उर्वशीने लक्ष्मीका वेश लिया था अतः नाट्यधर्म्मानुसार उसे उत्तर देना चाहिये था—"पुरुषोत्तम" परन्तु उसका ध्यान ठिकाने न था, अतः मुखसे निकल गया—पुरुरवा। उर्वशीकी यह विशृङ्खलता देखकर भरत मुनिको क्रोध आ गया। उन्होंने शाप दे, उसका दिव्यज्ञान नष्ट कर दिया। उर्वशीने अपनी भयङ्कर भूलके कारण लज्जित हो शिर नीचा कर लिया।

इन्द्रने उसकी यह दशा देखकर कहा—तुझे जो पुरुष अधिक प्रिय है, उसके पास तू जा सकती है। हम लोग भी पुरुरवाके उपकृत हैं, अतः कुछ कह नहीं सकते। मैं तेरा मर्त्यलोकमें रहनेका समय भी नियत किये देता हूं। तेरे उदरके पुत्रका जब तक पुरुरवा मुख न देखेंगे, तभी तक तू वहां रह सकेगी। इसके बाद तुम दोनोंका वियोग होगा और तुझे स्वर्ग लौट आना पड़ेगा।"

यही कारण था, कि उर्वशीने पुरुरवाको पुत्र जन्मका पता तक न लगने दिया। उसने उसे सत्यवती नामक एक तपस्विनीके संरक्षणमें रख दिया। सत्यवती च्यवन ऋषिके आ-

श्रममें रहती थी। पुरुरवाके पुत्रका वहीं लालन पालन हुआ। जब वह बड़ा हुआ तब च्यवन ऋषिनेही उसे शास्त्र और धनुर्वेदकी शिक्षा दी।

अनेक वर्ष व्यतीत हो गये, परन्तु पुरुरवा यह न जान सके कि मेरे पुत्र है। ऋषिकी आज्ञासे सत्यवती जब उनके पास ले गयी तब उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। उर्वशीके बतलाने पर उन्होंने विश्वास कर लिया और पुत्रको देखकर बड़े प्रसन्न हुए। उर्वशीको भी उसी प्रकार हर्ष हुआ, परन्तु दूसरेही क्षण उन दोनोंका हर्ष विषादमें परिणत हो गया। इन्द्रके कथनानुसार अब शीघ्रही वियोग होगा, इस ख्यालसे दोनोंको सीमातीत दुःख हुआ।
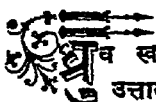
पुरुरवाने राजपाट छोड़कर तापस जीवन व्यतीत करना स्थिर किया उर्वशीको यह देखकर और भी दुःख हुआ। कोई उपाय न देख, दोनों अपना अपना हृदय मजबूत कर कष्ट सहने की तय्यारी करने लगे। इसी समय नारदने उपस्थित हो पुरुरवाको इन्द्रकी ओरसे निमन्त्रण दिया और कहा, कि शीघ्र ही असुरोंसे युद्ध होने वाला है, अतः इन्द्रने आपको बुलाया है। उन्होंने यह भी कहा, कि उर्वशी सदाके लिये अब आपकी हो चुकी, क्योंकि इन्द्रने उस परसे अपना अधिकार उठा लिया है।

नारद मुनिकी यह बात सुनकर सबको सीमातीत हर्ष हुआ। पुरुरवा इन्द्रकी ओरसे असुरोंको पराजित कर वापस लौट

आये और न्याय नीति तथा धर्म पूर्वक प्रजा पालन करने लगे। उन्होंने दीर्घकाल पर्य्यन्त राज्य शासन किया। उर्वशीसे उन्हें आयु, श्रुतायु, सत्यायु, रय, विजय, और जय यह छः पुत्र हुए और उन्हींसे चन्द्रवंशका विस्तार हुआ। वृद्धावस्थामें यह शासनभार पुत्रोंको दे, तपस्या करने चले गये और वहीं ईश्वराराधन करते हुए सद्गतिको प्राप्त हुए। चन्द्रवंशी राजाओंमें यह सर्व प्रथम थे। उनके वंशजोंने दीर्घकाल पर्य्यन्त भारतमें शासन किया और प्रजाको सुख दिया।

राजर्षि ध्रुव।

ध्रुव स्वयम्भू मनुके पौत्र और उत्तानपादके पुत्र थे। उत्तानपाद चक्रवर्ती नरेश थे। उनके दो स्त्रियां थीं, सुनीति और सुरुचि। सुनीतिके ध्रुव और सुरुचिके उत्तम-यह दो पुत्र थे। राजाका सुरुचिपर विशेष प्रेम था। ध्रुव और ध्रुव की माता सुनीतिपर उनकी प्रीति न थी।

ध्रुव पांचवर्षका बालक था, परन्तु तेजस्वी, शान्त, उत्साही दयालु और होनहार मालूम होता था। क्षत्रित्वके सभी लक्षण उसमें वर्तमान थे, परन्तु सुरुचिके पुत्र पर राजाकी जितनी प्रीति थी, उतनी ध्रुव पर न थी।

एक दिन उत्तानपाद उत्तमको गोदमें लेकर प्यार कर रहे थे। उसी समय ध्रुव भी उनकी गोदमें जाकर बैठ गये। ध्रुव को महाराजकी गोदमें देखकर सुरुचिको बड़ा क्रोध आया। उसने ध्रुवको झिटक कर उनकी गोदसे उतार दिया और कहा—तू अभागिनीका पुत्र है। तुझे यह अधिकार नहीं है। पिताकी गोदमें बैठना था, तो मेरे उदरसे जन्म लेना था। अब वनमें जाकर तपस्या कर। जब मेरे उदरसे उत्पन्न होगा, तब यह गोद बैठनेको मिलेगी।

विमाताके इन कटुवचनोंने ध्रुवके सुकुमारहृदयको चूर्ण विचूर्ण कर दिया। उसका मुंह उतर गया और आंखोंमें आँसू भर आये। उत्तानपादने भी उसे सान्त्वना न दी। ध्रुवको अपने पिताकी स्नेहमयी गोदसे वञ्चित होना पड़ा। अपमानित हो, वह रोते हुए अपनी माताके पास गये।

ध्रुवको रोते देखकर उनकी माताने हृदयसे लगा लिया और रोनेका कारण पूछा। ध्रुवने करुणा पूर्ण शब्दमें अपने परितापका कारण कह सुनाया। सुरुचिके कटुवचन और महाराजके मौनावलम्बनका हाल सुन कर सुनीतिकी आंखोंसे भी आँसू टपक पड़े। उन्होंने कुंठित स्वरमें कहा—"पुत्र! खेद न कर। सुरुचिने पुण्य किया होगा तभी यह सुख भोग रही है। अपने भाग्यमें वह सुख कहां! हमने पूर्व जन्ममें पाप किये होंगे, नियम धर्म्म नहीं पाला होगा, साधुसन्त और ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट न किया होगा, तभी यह दशा हो रही है। इसमें सुरुचि और महाराजका कोई दोष नहीं। यह सब हमारे कर्म्मका दोष है। जब हमारा प्रारब्ध हीन है, तो सम्मान कैसे मिल सकता है? विमाताने जो कहा, वह ठीक है। तेरा यह दुःख ईश्वरही दूर कर सकता है। सम्मान और राज्यकी इच्छा हो तो वनमें जाकर तप कर। तपसे ब्रह्माको पद्मासन मिला और नारदका भाग्योदय हुआ। ईश्वरको प्रसन्न करनेसे तेरी भी इच्छा पूर्ण हो सकती है।"

ध्रुवने माताकी यह बात सुनकर आंसू पोंछ डाले उसने

गम्भीर स्वरमें कहा,—यदि तपसे यह दुःख दूर हो सकता है, तो मैं अवश्य तप करूँगा। परामत्माने देह दी है तो उससे सुकृत्य करना चाहिये। मैं इस दुःखमय शरीरको नहीं चाहता। ईश्वर मुझे दर्शन देंगे और मेरा दुःख दूर करेंगे, तब तो मैं लौट आऊँगा, अन्यथा वनमेंही प्राण त्याग दूँगा।

ध्रुवके यह शब्द सुनकर सुनीतिने शोकातुर हो कहा—"पुत्र! अभी तू बालक है। वनमें जाने योग्य तेरी अवस्था नहीं है। यह घरही तेरे लिये वन हो रहा है। यहीं रह कर तपस्या कर, ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण करेगा।"

ध्रुवने कहा—नहीं, यह कैसे हो सकता है! घरमें कहीं तप हो सकता है? यहां अनेक विघ्न होंगे, मोह उत्पन्न होगा, ऐसी दशामें ईश्वर कैसे मिल सकते हैं। विना काया कष्ट और तपके कार्य सिद्धि नहीं हो सकती। आप आशीर्वाद मुझे दीजिये, मैं वन अवश्य जाऊंगा।

सुनीतिने कुण्ठित स्वरमें कहा—"महाराजने छोड़ही दिया है। क्या तुम भी छोड़ जाओगे? मैं तुम्हारे बिना कैसे रहूंगी। झुण्डसे विलग होनेपर जो दशा हरिणीकी होती है, वही तुम्हारे विना मेरी होगी। मैं जलहीन मछलीकी तरह तड़प तड़पकर मार जाऊंगी।

ध्रुवने कहा—माता! धैर्य्य धारण करो। मैंने तुम्हारी पहली बात गांठमें बाँध ली है। अवश्य वन जाऊँगा, और ईश्वरको प्रसन्न करूंगा। मुझे प्रसन्न हो आशार्वाद दीजिये।

मैं और कुछ नहीं चाहता। देखना शीघ्रही मैं लौटकर आपके चरणस्पर्श करूंगा। ईश्वर हमारी आशा अवश्य पूर्ण करेंगे।

ध्रुवका दृढ़ निश्चय देखकर सुनीति विवश हो गयी। उन्होंने ध्रुवके शिरपर हाथ रख उन्हें आशीर्वाद दिया और आज्ञा प्रदान की। माताको बारम्बार प्रणामकर ध्रुव राज-भवनसे निकल पड़े। जब तक दिखाई दिये, माता सजल नेत्रोंसे उनकी ओर देखती रही। जब वे दृष्टि-मर्य्यादाके बाहर हो गये, तब वे भवनके अन्दर चली गयी। न वे उन्हें मना सकती थीं न रोकही।

पांच वर्षके सुकुमार बालक—ध्रुवने बीहड़ वनकी राह ली। कुछही दूर जानेपर अरण्यमें वीणापाणि नारदसे भेंट हुई। नारदने बातही बातमें सारा हाल पूछ लिया। उन्होंने ध्रुवको लौट जानेका उपदेश देते हुए कहा,—संसारमें कर्म्मानुसार ही सुख दुःख मिलता है, अतः मानापमानका विचार न करना चाहिये। तुम जो चाहते हो वह अत्यन्त कठिन है। सुखमें पुण्य और दुखमें पाप क्षय होते हैं, अतः सन्तोष धारण करना चाहिये।"

ध्रुवने कहा,—भगवन्! आपने जो मार्ग बतलाया है, वह मेरे लिये उपयुक्त नहीं है। साधारण दुःखी मनुष्य ऐसा समझ कर सन्तोष धारण कर सकते हैं परन्तु मैं तो त्रिभुवनमें जो उत्कृष्ट पद हैं, जिसे मेरे पूर्वज किंवा अन्यलोग भी नहीं प्राप्त कर सके, उसे अधिकृत करना चाहता हूं। मुझे तो हे ब्रह्मन्! मेरी यह महत्वाकांक्षा पूर्ण हो, ऐसा उपाय बतलाये

ध्रुवकी यह बातें सुनकर दयालु नारद प्रसन्न हो उठे। उन्हें विश्वास हो गया, कि ध्रुवका निश्चय दृढ़ है। वह बोले —यदि तुम्हारा यही विचार है और तुम लौटना नहीं चाहते तो मधुवनमें जाकर तपस्या करो वह बड़ाही रमणीय स्थान है। वहीं यमुनाके निर्मल जलमें स्नान कर किसी शिला खण्डपर बैठ, ईश्वरका ध्यान करना। आहारके लिये फल और कन्द-मूल भी वहां यथेष्ट मिल सकेंगे। तुम्हारे लिये वही स्थान उपयुक्त है।

यह कहकर नारद ऋषिने ध्रुवको मन्त्रोपदेश दिया और साधनाकी विधि बतलायी। ध्रुवने प्रसन्न हो उनसे विदा ली और मधुवनमें जाकर तप आरम्भ किया। सर्व प्रथम उन्होंने इन्द्रियोंका दमन कर चित्तको एकाग्र किया। तदनन्तर वह पञ्च प्राण रुद्ध कर एक पैरसे खड़े हो ईश्वरका ध्यान करने लगे। कुछ ही कालमें उनका यह तप देखकर भगवान प्रसन्न हो उठे उन्होंने जब उपस्थित हो ध्रुवसे अभिलषित वर मांगनेको कहा; तब ध्रुवने निरन्तर उन्हीं को सेवामें रहनेको इच्छा व्यक्त की। भगवानने कहा—तथास्तु। तुम्हारी यह इच्छा पूर्ण होगी और तुम्हें अविचल पद प्राप्त होगा। इस समय तुम्हारे माता पिता दुःखी हो रहे हैं, अतः अपने घर जाओ और कर्त्तव्य पालन करो। अन्तमें तुम जैसा चाहते हो वैसाही होगा।

ध्रुवको भगवानके दर्शनसे परमानन्द प्राप्त हुआ। वह उनके आदेशानुसार अपने घर लौट आये। राजा उत्तानपाद पश्चा

त्ताप द्वारा अपने पापका प्रायश्चित कर रहे थे। ध्रुवको देख कर उनका विषाद दूर हो गया। पुत्रकी साधना सफल हुई और वह घर लौट आया यह देखकर सुनीतिके हर्षका तो पारा पार ही न रहा।

ध्रुवको ईश्वर कृपासे वेदादि विद्याओंकी प्राप्ति और तत्त्व-ज्ञान भी हो गया था शारीरिक शक्ति और तेजस्विता भी खूब बढ़ गयी थी। नारदने पुनः उपस्थित हो, ध्रुवको धन्यवाद दिया और सबके सम्मुख मुक्तकण्ठसे उनकी प्रशंसा की। ध्रुवकी योग्यता देखकर उनके पिताको भी बड़ा हर्ष हुआ। नारदके आदेशानुसार वह ध्रुवका अभिषेककर स्वयं तपस्या करनेके लिये अरण्य चले गये।

ध्रुव राज्यका शासन-भार ग्रहण कर न्याय पूर्वक प्रजापालन करने लगे। सुरुचि और उत्तम पर उन्हें द्वेष न था। सुनीतिके समान ही वह उनसे भी प्रेम करते थे। उनके व्यवहारसे प्रजा और आत्मीय-जन एक समान प्रसन्न और सुखी हुए। उन्होंने अहल्या और धन्या नामक दो स्त्रियोंके अतिरिक्त शिशुमार प्रजापतिकी कन्या यही, वायुकन्या, इला और एक इन्द्र कन्याके साथ भी विवाह किया। पांच स्त्रियोंसे उन्हें एक कन्या और चार पुत्र-रत्नोंकी प्राप्ति हुई।

ध्रुव अपने भाईका विवाह करने वाले थे। उसी समय एक दिन वह हिमालयमें मृगया खेलने गया और वहां यक्षोंसे कलह करते हुए मृत्युको प्राप्त हुआ। सुरुचि ध्रुवको सूचित

किये बिना ही उनकी खोजमें निकल पड़ी और दैवात उनका भी वहीं प्राणान्त हुआ। यह सब समाचार जब ध्रुव ने सुने, तब उन्हें यक्षोंपर बड़ा क्रोध आया। उन्होंने प्रबल सैन्य लेकर उनपर आक्रमण किया और और सहस्रावधि यक्षोंको मार डाला। यक्षोंका विनाश होते देख अस्त्र ग्रहणकर कुबेर समरस्थलमें युद्धार्थ उपस्थित हुए। धीरवीर ध्रुवने उनका भी उसी प्रकार सामना किया और दोनों दलोंमें भीषण युद्ध आरम्भ हुआ। अन्तमें स्वयम्भू मनुने उपस्थित हो, ध्रुवको समझाया और युद्ध बन्द कराया। ध्रुव पितामहकी बात न टाल सके और इच्छा न होनेपरभी युद्ध बन्द कर अपने घर लौट आये।

ध्रुवने दीर्घकाल पर्यन्त राज्य किया और अपने राजत्वकालमें सहस्रावधि यज्ञ किये। अन्तमें अपने ज्येष्ठ पुत्रको शासन भार दे वह अरण्यमें तप करने चले गये। शीघ्रही वहां उन्हें विष्णुपदकी प्राप्ति हुई। अच्युत पद 'केवल शान्त, समदर्शी, शुद्ध, और भूत मात्रका रञ्जन करने वाले महात्मा पुरुषोंकोही मिलता है। ध्रुवने अविचल पद प्राप्त किया अतः भारत वासियोंने एक अविचल तारेको उनका स्मृति चिन्ह नियत किया है। आकाशमें जबतक ध्रुव तारेका अस्तित्व रहेगा, तबतक महात्मा ध्रुवकी कीर्ति नष्ट न होगी।

ध्रुव चरित्र अत्यन्त शिक्षाप्रद है। केवल पांच वर्षकी अवस्था होनेपर भी ध्रुव अपना अपमान सहन न कर सके। अकर्मण्यकी भांति वह रोकर बैठ भी न रहे। उन्होंने अपने अप-

मानका कारण और अपनी उन्नतिका उपाय खोज निकाला, वह उपाय भी सहज न था उन्होंने जिस मार्गका अवलम्बन किया वह कण्टकाकीर्ण और कठिनाइओंसे परिपूर्ण था। उन्होंने यह जान लिया, कि मेरी दशा अत्यन्त हीन है और हीनावस्थासे यदि सर्वोत्कृष्ट पद प्राप्त करना है, तो उसके लिये उद्योग भी वैसाही करना होगा। ध्रुवने यह सोचकर तप (इच्छितको सिद्ध करने योग्य कर्म्म) करनेका दृढ़ निश्चय किया। वनमें जाकर उन्होंने ऐसा उद्योग किया, कि ईश्वर कृपासे राज्य, ऐश्वर्य्य और सुखके अतिरिक्त अन्तमें परमपदकी प्राप्ति हुई।

ध्रुवकी जीवनीसे हमें ज्ञात होता है, कि महापुरुष दुःखको भी सुखका साधन बना लेते हैं। जिस दुःखमें पड़कर सामान्य मनुष्य घबड़ा उठता है, उसी दुःखको महात्मागण सुखका मूल बना देते हैं। हमें भी दुःख और सुखमें एक समान रहना चाहिये। दुःख देखकर घबड़ाना न चाहिये, बल्कि धैर्य्य धारण कर सुखका उपाय खोज निकालना चाहिये और तदनुसार उद्योग करना चाहिये। ऐसा करनेसे ईश्वर अवश्य सहायता करता है।

ध्रुवने यदि उद्योग न किया होता, तो उनकी महत्वाकांक्षा पूर्ण न हुई होती। कार्य्य सिद्धिके लिये समुचित उद्योग करना यही तप है उद्योगही ईश्वर कृपा है। जो उद्योग नहीं करता उसपर न ईश्वर कृपाही होती है, न उसे सफलता ही मिलती है धन्य है महात्मा ध्रुवको और धन्य है उनकी माताको।

मान्धाता सूर्य्यवंशी इक्ष्वाकु कुलोत्पन्न राजा यौवनाश्वके पुत्र थे। उनका जन्म सत्ययुगमें हुआ था। वे प्रतापी दान वीर और चक्रवर्ती नरेश थे। उनकी जन्म कथा मनोरञ्जक और अलौकिक है कहते हैं, कि यौवनाश्वके सौ स्त्रियां थीं परन्तु सन्तान एक भी न थी। उन्होंने एक हजार यज्ञ किये, तब भी पुत्र न हुआ। अन्तमें मन्त्रीको राज्य सौंपकर वे तप करने चले गये। वनमें भार्गव तथा अन्याय ऋषियोंसे भेंट हुई। उनकी दशा देखकर उन ऋषियोंको दया आ गयी और उन्होंने पुत्रप्राप्तिके लिये एक यज्ञ किया। ऋषियोंने वेदीपर एक पात्रमें मन्त्रित जल रख दिया, स्थिर हुआ, कि यही जल रानीको पिलाया जाय, ताकि उसके पुत्र हो।

यौवनाश्व रात्रिको यज्ञशालाहीमें सो रहे। अर्ध रात्रिके समय वह तृषातुर हुए। चारों ओर जलकी खोजकी, परन्तु जल न मिला। अन्तमें वेदीपर रक्खा हुआ जल उन्हें मिलगया और वही पीकर वह सो रहे। प्रातः काल भार्गव ऋषि स्नान सन्ध्या करने लगे। जब लौटकर आये और देखा तो पात्रमे जल नदारद! अनुसन्धान करने पर यौवनाश्वने बतलाया, कि

मैं उसे भूलसे पी गया हूं। ऋषिने हँस कर कहा—"तब तो ठीक है। तुम्हारेही पुत्र होगा।"

ऋषिकी यह बात सुनकर यौवनाश्वको बड़ा खेद हुआ, परन्तु ईश्वरेच्छा समझ कर उन्होंने शान्ति धारणकी। तद्‌न्तर उनका उदर बढ़ने लगा और नव मासके बाद जब प्रसवका समय आया, तब ऋषियोंने उनकी वाम कुक्षि चीरकर बालक निकाल लिया। जब वह दूधके लिये रोने लगा तब भायकी चिन्ता हुई। उसी समय इन्द्रने उपस्थित हो कहा—"इदं मान्धास्यति—यह मुझे खायेगा-मेरा दूध पियेगा।" बादको उन्होंने अपना अमृत युक्त कराङ्गुष्ठ उसके मुखमें रख दिया और वह उसे पीकर सदैवके लिये तृप्त होगया। इसी बात पर उसका नाम रक्खा गया—"मान्धाता।"

मान्धाताने यथा समय विद्योपार्जन और उसके बाद कुछ काल तप किया। तपसे उन्हें अजगव धनुष और दिव्यास्त्रोंकी प्राप्ति हुई। इन अस्त्रोंके प्रतापसे उन्होंने अनेक प्रदेशोंपर आधिपत्य जमा लिया। अपने पराक्रमसे उन्होंने सबको पराजित कर चक्रवर्ती राज्य स्थापित किया। उनका कोष बहुमूल्य रत्नोंसे परिपूर्ण था। सत्पात्रोंको दान, विद्वानोंको आश्रय और प्रजाको सुख देनेमें वह उसका उपयोग करते थे। ज्यों ज्यों वह खर्च करते थे, त्यों त्यों उनका धन बढ़ता था। उन्होंने सौ अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञ किये थे। वह प्रति दिन मुक्त-हस्तसे धन-दान किया करते, अतः लोग उन्हे दान-

वीर कहते थे। अपनी प्रजाका वह पुत्रकी भांति पालन करते थे। महात्मा वशिष्ठ उनके कुल गुरु थे और उन्हींके आदेशानुसार सारा राज-काज होता था। प्रजाका उनपर बड़ा प्रेम था। रावण समान राजा और अत्याचारी दस्युगण उनसे संत्रस्त रहते थे, अतः उनका नाम "त्रसदस्यु" पड़ा था।
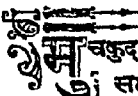
मान्धाताका विवाह महान् प्रतापी और चक्रवर्ती राजा शशविन्दुकी विन्दुमती नामक कन्याके साथ हुआ था। वे एक पत्नी व्रत पालन करते थे। पत्नीके अतिरिक्त अन्य स्त्रियां उनके निकट कन्याके समान थीं। विन्दुमतीसे उन्हें-पुरुकुत्स, धर्म्मसेन और मुचकुन्द-यह तीन प्रातापी पुत्र तथा पचास कन्यायें उत्पन्न हुई थीं। मान्धताने उन सब कन्याओंका विवाह सौभरि ऋषिके साथ कर दिया था।

मान्धाताके राज्यमें एक बार बारह वर्ष पर्य्यन्त वृष्टि न हुई थी। उस समय उन्होंने अपने तपोबलसे पर्ज्जन्य वृष्टि कर प्रजाका दुःख दूर किया था। लवणासुर नामक एक शक्तिशाली असुर इनके राज्यमें बड़ा उत्पात करता था। मान्धाता एक प्रबल सैन्य लेकर उससे युद्ध करने गये थे, परन्तु ईश्वरेच्छासे वहीं वे वीर गतिको प्राप्त हुए। उनके बाद अयोध्याके सिंहासन पर उनके ज्येष्ठ पुत्र-पुरुकुत्स अधिष्ठित हुए थे। मान्धाताके समान पराक्रमी और दानवीर महीपति बहुत कम हुए है। संसारमें उसीका जन्म सफल है, जिसने उज्ज्वल यश प्राप्त कर अपना नाम अमर किया।

मुचकुन्द।

मुचकुंद मान्धाताके पुत्र थे। वह भी अपने पिताके समान प्रतापी, रणधीर और चक्रवर्ती नरेश थे। वे बुद्धिमान शूरवीर, धर्म्मिष्ट, न्यायी और ज्ञानी पुरुष थे। यज्ञादिक शुभ कर्म्मों द्वारा उन्होंने अपनी और अपने पूर्वजोंकी कीर्त्तिमें वृद्धि की थी। ब्राह्मणोंका वह बड़ा आदर करते थे। स्वयं कष्ट उठाकर भी प्रजाको वे सुख पहुंचाते थे। उन्होंने अनेक प्रजा पीड़क अन्यायियोंका नाश किया था। उनका नाम सुनतेही शत्रुगण थर्रा उठते थे। जब दानवोंसे युद्ध होता, तब इन्द्र उनसे सहायता लेते थे। मुचकुन्दने अनेक बार दानवोंको परास्त कर देवताओंकी रक्षा की थी।

एक बार देव और दानवोंमें भीषण युद्ध हुआ। मुचकुन्द देवताओंके सेनापति थे। उन्होंने दीर्घकाल पर्यन्त सैन्य सञ्चालन और युद्ध किया। अन्तमें कार्तिकेय स्वामीने उनका स्थान ग्रहण कर उन्हें अवकाश दिया। इन्द्रने उस समय मुचकुन्द से कहा,—"राजन्! अपने बड़ा परिश्रम किया है, अतः अब कुछ दिवस विश्राम करिये। आपकी वीरता सराहनीय है।

आपने हमें जो सहायता दी है, तदर्थ हम आपके ऋणी हैं। निष्कण्टक राज्य छोड़, सुखोंको जलाञ्जलि दे, अपने कष्ट उठाया और युद्धमें सैनिक तथा आत्मीय जनोंका भोग दिया, अतः मैं आप पर अत्यन्त प्रसन्न हूं। मोक्षके दाता एक अविनाशी विष्णु भगवानही हैं, अतः उसको छोड़कर आप अभिलषित वर मांग सकते हैं।"

मुचकुन्दने कहा,—अमरेश! मुझे और कुछ न चाहिये। मैं श्रान्त और क्लान्त हो रहा हूं। दीर्घकालसे मैंने निद्रा नहीं ली, अतः मुझे ऐसा कोई स्थान बतलाइये, जहां मैं दीर्घकाल पर्य्यन्त निर्विघ्न सो सकूं।

देवराजने कहा,—अच्छा, आप गन्धमादनकी किसी गुफा में जाकर सो रहिये। द्वापरके अन्त पर्य्यन्त वहां आप निद्रा लेसकेंगे। इसके पहले जो आपको जगायेगा वह जलकर भस्म हो जायगा। भगवानका जब कृष्णावतार होगा, तब वे आपको दर्शन भी देंगे।"

इन्द्रकी यह बात सुनकर मुचकुन्द गन्धमादनकी एक गुफामें जाकर सो रहे। द्वापरके अन्तमें जब कृष्णावतार हुआ तब जरासन्धकी ओरसे कालयवन उनसे युद्ध करने गया। श्रीकृष्णने विचार किया, कि युद्धमें प्रवृत होनेसे अनेकानेक मनुष्यों का संहार होगा, अतः केवल कालयवनकाही नाश करना चाहिये। निदान वे युद्धारम्भ होतेही मैदान छोड़ भागे। भाग कर वे उस गुफामें पहुंचे, जहां मुचकुन्द सो रहे थे। उन्होंने

मुचकुन्दको अपना पीताम्बर ओढ़ा दिया और आप एक कोनेमें छिप रहे।

कालयवनने श्रीकृष्णको भागते देखकर उनका पीछा किया। गन्धमादनकी गुफामें जब वे छिप रहे तब वह उन्हें ढूंढ़ने लगा। अन्तमें पीताम्बर परिवेष्टित मुचकुन्दको उसने श्रीकृष्ण समझकर एक लात मारी। लात लगतेही मुचकुन्द की निद्रा भङ्ग हो गयी और उनकी क्रोधाग्निमें पड़ कालयवन वहीं भस्म हो गया। उसी समय श्रीकृष्णने उन्हें दर्शन दे बतलाया, कि उत्तर दिशामें जाकर कुछ काल तप करनेसे तुम्हारी मुक्ति होगी। मुचकुन्द उनके आदेशानुसार बदरिकाश्रम चले गये और वहीं तप करते हुए परमपदको प्राप्त हुए।

सत्यवादी हरिश्चन्द्र

"हरिश्चन्द्र समो राजा न भूतो न भविष्यति"

सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र सूर्य्य वंशी इक्ष्वाकु कुलोत्पन्न राजा सत्यव्रतके पुत्र थे। उनकी माताका नाम था सत्यरथा। उनका जन्म सत्ययुगमें हुआ था और वे अयोध्यापुरीमें राज्य करते थे। वे महापराक्रमी, महादाता, सत्यवादी शूरवीर, विद्वान, धर्म्म शील, और दयावान थे। वह न्याय नीति और धर्म्म पूर्वक राज्य करते थे तथा प्रजापालनमें सदा तत्पर रहते थे। राजा और प्रजामें परस्पर बड़ा प्रेम था। लक्ष्मी, और सरस्वती, दोनोंकी उनपर समान कृपा थी। वे जैसे ऐश्वर्य्य शाली थे वैसेही ज्ञानी भी थे। लक्ष्मी कैसी चञ्चल है, और उसपर कितना विश्वास रखना चाहिये, यह वे अच्छी तरह जानते थे। ऐश्वर्य्य होनेपर भी वे उसके मोहजालमें उलझे हुए न थे। सम्पत्तिको देखकर न उन्हें हर्षही होता था, न विपत्तिको देखकर शोकही। सुख और दुःखमें वह एक समान रहते थे। उनकी सती और साध्वी स्त्रीका नाम था शैब्या। लोग उसे तारामतीके नामसे भी पुकारते हैं।

सत्यवादी हरिश्चन्द्र

राजा हरिश्चन्द्र सब प्रकारसे सुखी थे, परन्तु उन्हें सन्तति का सुख न था। इसके कारण वह किञ्चित उदास रहतेथे। महात्मा वशिष्ठ उनके कुलगुरु थे। उन्होंने उन्हें वरुण देवकी आराधना करनेका आदेश दिया। हरिश्चन्द्र उनके आदेशानुसार आराधनामें लीन रहने लगे। कुछ काल उपरान्त वरुणदेवकी कृपासे उन्हें रोहित नामक पुत्र रत्नकी प्राप्ति हुई। हरिश्चन्द्रने उसके बलिदान द्वारा वरुण देवको सन्तुष्ट करनेकी प्रतिज्ञा की थी, परन्तु मोहके कारण यथा समय वह उसे पूर्ण न कर सके। इस दोषसे उन्हें जलोदर रोग हो गया और वे पीड़ित रहने लगे राजकुमार रोहित अपने पिताका यह कष्ट न देख सका। वह उन्हें दुःख मुक्त करनेके लिये आत्म समर्पण करनेको तय्यार हुआ, परन्तु वशिष्ठने उसको रक्षाका उपाय सोच कर हरिश्चन्द्रको सलाह दी और तदनुसार उन्होंने एक ब्राह्मणको सौ गायें देकर उसका पुत्र मोल ले लिया। उस ब्राह्मण कुमारका नाम था शुनः शेप। स्थिर हुआ, कि रोहितके बदले यही बलि वेदी पर बलिदान कर दिया जाय। यथा समय हरिश्चन्द्रने यज्ञारम्भ किया। वशिष्ठकी ओरसे विश्वामित्र होता नियत हुए। निर्दोष शुन शेपको देखकर विश्वामित्रको दया आ गयी। उन्होंने उसका प्राण बचानेके लिये वरुणकी आराधना आरम्भ की आराधनासे वरुण देव प्रसन्न हो उठे। उन्होंने बिना बलिदान लियेही हरिश्चन्द्रका रोग दूर कर दिया। फलतः शुनः शेपकी रक्षा हुई और रोहितकी भी चिन्ता दूर हो गयी।

प्राचीनकालमें चक्रवर्ती नरेश राजसूय यज्ञ करते थे। हरिश्चन्द्रने भी यह यज्ञ किया था। महात्मा वशिष्ठ होता नियत हुए थे। यज्ञ निर्विघ्न समाप्त होने पर हरिश्चन्द्रने उनकी बड़े प्रेमसे पूजा की थी। जिस समय वह विदा होकर जारहे थे, उसी समय विश्वामित्रसे भेंट हो गयी। विश्वामित्रके पूछने पर वशिष्ठने सारा हाल बतलाया और हरिश्चन्द्रको सत्यवादी उदार तथा दानी कह कर उनकी बड़ी प्रशंसाकी।

विश्वामित्रका स्वभाव बड़ा क्रोधी था। हरिश्चन्द्रकी प्रशंसा उन्हें अच्छी न लगी। उन्होंने वशिष्ठसे कह भी दिया, कि हरिश्चन्द्र प्रशंसा करने योग्य नहीं है, परन्तु वह आपका यजमान है, अतः आप उसकी प्रशंसा कर रहे हैं वशिष्ठने :विश्वामित्रकी इस बातका कोई ख्याल न किया और उनका गुण-गान करते ही रहे। अन्तमें विश्वामित्र बलभ्क पड़े। उन्होंने कहा—"वशिष्ठ! आप जिसकी इतनी प्रशंसा कर रहे है और जिसे सत्यवादी कह रहे हैं उसे मैं असत्यवादी न सिद्ध कर दूं तो मेरा नाम विश्वामित्र नहीं।"

वशिष्ठने कहा—नहीं विश्वामित्र! मैं जो कहता हूं वह ठीक ही है। यजमान होनेके कारण मैं उसकी प्रशंसा नहीं करता हरिश्चन्द्र वास्तवमें सत्यवादी, धर्म्मिष्ठ और दानवीर है। यदि आपको मेरी बात पर विश्वास न हो, तो परीक्षा लेकर देख लीजिये।

विश्वामित्रने वशिष्ठकी बात मान ली। वह उनसे आन्तरिक

द्वेष भी रखते थे वशिष्ठ जिसे आम कहते, विश्वामित्र उसे इमली कहनेको तय्यार रहते। हरिश्चन्द्रका सत्य छुड़ानेके लिये वह अनेक प्रकारके उपाय करने लगे। वनमें जाकर उन्होंने शूकरादिक ऐसे पशु उत्पन्न किये जो आयोध्यामें आकर हरिश्चन्द्रकी प्रजाको उत्पीडित करने लगे।

एक दिन ऐसेही एक शूकरका हरिश्चन्द्रने पीछा किया। वह प्रजाको बड़ा कष्ट देता था। हरिश्चन्द्रने उसे मार डालनेका निश्चय किया था, परन्तु जंगलमें जाकर वह न जाने कहां गायब हो गया। उन्होंने उसकी बड़ी खोजकी, परन्तु वह कहीं न मिला। चारों ओर भटकनेसे हरिश्चन्द्र थक भी गये। लौटनेकी इच्छाकी तो रास्ता भी न मिला। दोपहर हो चुकी थी। तृषासे कंठ सूख रहा था जलासयकी खोज करते हुए एक नदी मिल गयी। हरिश्चन्द्र घोड़ेसे उतर पड़े। घोड़ा हरीहरी घास चरने लगा और वे जल पान कर एक शिला खण्ड पर विश्राम करने लगे।

स्वस्थ होनेके बाद जिस समय वे वहांसे चलनेको प्रस्तुत हुए, उसी समय उन्हें विश्वामित्र प्रेरित दो हरिण दिखाई दिये। हरिश्चन्द्रने उनका अनुसरण किया। एक शिव मन्दिरके पास पहुंच कर वे भी गायब हो गये। अब हरिश्चन्द्र बड़े विचारमें पड़ गये। चारोंओर ध्यान पूर्वक देखते रहे, परन्तु कोई मार्ग न दिखाई दिया। उसी समय ब्राह्मण वेशमें विश्वामित्रने उपस्थित होकर कहा—राजन्! मैंने वशिष्ठ द्वारा आपकी विपुल कीर्त्ति सुनी है। महीतलमें आपके समान उदार और दाता

और कोई नहीं है। मुझे अपने पुत्रका विवाह करना है, अतः धनकी आवश्यकता है मैं आपसे यथाशक्ति सहायता देनेके लिये प्रार्थना करता हूं।"

हरिश्चन्द्रने प्रणाम कर कहा—हे विप्रदेव! इस समय मेरे पास कुछ नहीं है। आप राज सभामें उपस्थित होना, वहीं आप की इच्छा पूर्ण करूंगा। इस समय मैं मार्ग भूल गया हूं। यदि आप बतला दें तो बड़ा उपकार हो।

छद्मवेशी विश्वामित्रने हरिश्चन्द्रको मार्ग बतला दिया। हरिश्चन्द्र उसे धन्यवाद देते हुए अयोध्या पहुंच गये। दूसरे दिन उसी वेशमें विश्वामित्र दान लेनेको उपस्थित हुए। उन्हें देख कर हरिश्चन्द्रने कहा—"हे द्विज! मैं आपका उपकृत हूं। आपके लिये मेरे पास कुछ भी अदेय नहीं है आपकी जो इच्छा हो वह मांग लो। न देने योग्य वस्तु भी मैं आपको दे दूंगा। मैं केवल यशका भूखा हूं। संसारमें जन्म लेकर जो अपनी सम्पत्ति द्वारा परलोकमें सुख देनेवाले उज्ज्वल यशका उपार्जन नहीं करते, उनका जीवन व्यर्थ है।"

हरिश्चन्द्रकी यह बात सुन, विश्वामित्रने कहा—राजन्! यदि आप मुझे अभिलषित वस्तु दे सकते हैं तो अपना राज्य और सर्वस्व अर्पण करें।

हरिश्चन्द्रने उसी क्षण अपना सर्वस्व विश्वामित्रको अर्पण कर दिया। वे सिंहासनसे उतर पड़े और उस पर उन्हें बैठा-लकर अपना राजमुकुट उनके शिरपर रख दिया। इसके

बाद विश्वामित्रने उचित दक्षिणा देनेको कहा। हरिश्चन्द्रने देना तो स्वीकार कर लिया, परन्तु बड़े विचारमें पड़ गये। अब उनके पास एक कपर्दिका भी न थी। राजकोष वे पहलेही अर्पण कर चुके थे। केवल स्त्री और पुत्र बचे थे, परन्तु उनके पास भी वस्त्रोंके अतिरिक्त और कुछ न था। हरिश्चन्द्र बड़े असमञ्जसमें जा पड़े। जब यह समाचार नगरमें फैला, तब चारों ओर हाहाकार मच गया।

ब्राह्मणको राज्य और सर्वस्व सौंपकर हरिश्चन्द्र स्त्री और पुत्र सहित नगरके बाहर निकल आये। जनता अश्रु बरसाती हुई उन्हें विदा कर गयी। नगरी ऊजड़ मालूम होने लगी और सर्वत्र उदासीकी काली घटा छा गयी। लोग हरिश्चन्द्रकी भूरि भूरि प्रशंसा और विश्वामित्रकी निन्दा करने लगे। हरिश्चन्द्र वन जानेको तय्यार हुए, परन्तु विश्वामित्रने कहा—मेरी दक्षिणा देकर चाहे जहां जाइये। यदि न देना हो तो कह दो, कि न दूंगा। इन्कार करनेपर मैं छोड़ भी सकता हूं। यदि अपने किये पर तुम्हें पश्चाताप होता हो, तो राज्य भी ले लो। मुझे कुछ न चाहिये। यदि यह मानते हो, कि दिया है तो मुझे दक्षिणा भी मिलनी चाहिये।

हरिश्चन्द्रने कहा,—"मै सूर्य्यवंशी क्षत्रिय हूं। मैंने राजसूय यज्ञ किया हैं। मैं याचकको इच्छित वस्तु देता रहा हूं। अब भी मैं इन्कार नहीं कर सकता। जो देना है मैं अवश्य दूंगा। आपके ऋणसे मुक्त होना मेरा प्रथम कर्तव्य हैं। आप धैर्य्य

धारण करें मुझे थोड़ा समय दें। मैं कहींसे धन प्राप्त कर शीघ्रही आपकी दक्षिणा दे दूंगा।

विश्वामित्रने कहा—धन प्राप्त करनेका तुम्हारे पास अब कोई साधन नहीं है। राज्य, कोष, सेना और सर्वस्व मुझे अर्पण कर चुके हो। तुम इस समय निर्धन हो। कहीं भी धन मिलनेकी सम्भावना नहीं है। न तुम मुझे कष्ट दो न मैं तुम्हें दूं। ऐसी दशामें तुम्हें तङ्ग करना मुझे उचित भी नहीं प्रतीत होता। केवल यह कह दो, कि मैं नहीं दूंगा। बस, फिर मैं कदापि न मागूंगा।

हरिश्चन्द्रने कहा—भगवन्! यह कैसे कह सकता हूं। आप धैर्य धारण करें, मैं आपको दक्षिणा अवश्य दूंगा। अभी हम लोगोंका शरीर शेष है। इसे बेच कर भी मैं आपके ऋणसे मुक्त हूंगा। यहां कोई ग्राहक हो तो आप बतलाइये, अन्यथा हम लोग काशीमें किसीका दासत्व स्वीकारकर आपको संतुष्ट करेंगे।

विश्वामित्रने हरिश्चन्द्रकी यह बात मान ली! काशीमें दक्षिणा चुकाना स्थिर हुआ। हरिश्चन्द्र, शैव्या और रोहित तीनों काशीके लिये रवाना हुए। पैदल चलना पड़ता था। गरमीके दिन थे सूर्यदेव अपनी किरणोंसे आग बरसा रहे थे। भूतल तवासा तप रहा था। जलाशय जल-हीन हो रहे थे। राजमहलमें रहने और गुदगुदे गद्दोंपर सोनेवाले यह तीनों पथिक क्षुधा, तृषा, और परिश्रमसे मृत तुल्य हो गये।

दोपहरका समय था। भूमिपर पैर भी न रक्खा जाता था। उसी समय फिर विश्वामित्र ब्राह्मण वेशमें उपस्थित हुए। उन्होंने कहा—"मैं एक ब्राह्मण हूं। मेरे एक स्त्री और पुत्र है। इसी समय हमें कुछ रास्ता तय करना है। यदि आप तीनों जन अपने जूते निकाल दें, तो बड़ी कृपा हो।

हरिश्चन्द्रने ब्राह्मणकी ओर देखा। उसे वे नाहीं न कर सके। तत्काल उन्होंने अपने जूते निकाल दिये। शैव्या और रोहितने भी उनका अनुसरण किया। ब्राह्मण जूते ले धन्यावाद देता हुआ एक ओर चला गया।

अब तीनों जन नङ्गे पैर रास्ता तय करने लगे। पैरोंमें छाले पड़ गये और उनसे जल बहने लगा। कांटे भी चुभ गये। जिन्हें भूमिपर पैर भी न रखना पड़ता था, उनकी यह दशा हुई! शैव्याके चरण—तल कमल—दलके समान कोमल और अरूण थे। पुष्पोंपर चलनेमें भी उसे कष्ट होता था। आज उसकी जो दशा हुई वह अवर्णनीय थी। राजकुमार रोहित जल न मिलनेके कारण मूर्छित हो गिर पड़ा। विश्वामित्र हरिश्चन्द्रका सत्य छुड़ाने पर तुले हुए थे। तत्काल उन्होंने ब्राह्मण वेशमें उपस्थित हो जल देना चाहा। हरिश्चन्द्रने क्षात्र-धर्मानुसार वह भी लेनेसे इन्कारकर दिया। ब्राह्मणकी वस्तु कैसे ली जा सकती है? दुःख मुक्त होनेके लिये क्या धर्मको जलाञ्जलि दे दी जाय? हरिश्चन्द्रके लिये यह सर्वथा असम्भव था।

विश्वामित्रने इसी प्रकारकी आपत्तियां उपस्थित कर, हरि-

चन्द्रको विचलित करना चाहा, परन्तु उनका उद्देश्य सफल न हुआ। आगे चलकर उन्होंने वनमें आग लगा दी। चारों ओर दावानल धधक उठा। घबड़ाहटमें हरिश्चन्द्र और शैव्याका साथ छूट गया। शैव्या एक स्थानमें बैठकर विलाप करने लगीं। उसी समय उस छद्मवेशी ब्राह्मणने दो शव उनके सम्मुख ला कर रख दिये। शव पहचाने न जा सकते थे। उसने शैव्यासे कहा—"यह तेरे पति और पुत्र हैं। दावानलकी लपटोंमें पड़ कर इनका प्राणान्त हो गयाहै।"

शैव्याने विश्वास कर लिया। वह दोनोंको गोदमें लेकर विलाप करने लगीं। अन्तमें काष्ठ एकत्र कर वे सती होनेको प्रस्तुत हुई, परन्तु ऋषिवेशमें विश्वामित्रने आ कर कहा—"सांयङ्कालमें सती होना विरुद्ध है। मेरे आश्रम चलो और वहीं रात्रि व्यतीत करो।"

शैव्याने आश्रम जानेसे इन्कार कर दिया। वह वहीं निर्ज्जन अरण्यमें अकेले बैठी रहीं। दोनों शव उन की गोदमें थे और आखोंसे अविराम जल धारा वह रही थी। उसी समय दो मायावी व्याघ्र उपस्थित हुए और दोनों शव उठाकर कहीं विलुप्त हो गये। अब शैव्याके दुःखका वारापार न रहा। वह फूट फूट कर रोने और कलपने लगीं दैवेच्छासे उसी समय उन्हें खोजते हुए हरिश्चन्द्र और रोहित आ पहुंचे। शैव्या उन्हें देख कर प्रसन्न हो गयी। कुछही दिनोंमें इन कठिनाइयोंका सामना करते हुए वह काशी पहुंच गये।

काशीमें पहुँच कर हरिश्चन्द्र चिन्ता सागरमें लीन हो गये। ब्राह्मणका ऋण किस प्रकार चुकाया जाय इसी विचारमें वह शिर नीचा कर बैठ रहे। शैव्याने उनकी यह दशा देख कर कहा—"महाराज! चिन्ता न करिये। सत्यके समान और धर्म्म नहीं है। मैं आपकी दासी हूं। मुझे कहीं बेंच दीजिये। जो धन मिले वह ब्राह्मणको देकर सन्तुष्ट करिये। कैसीही आपत्ति क्यों न आये, हमें धर्म्म न छोड़ना चाहिये। ब्राह्मणको वचनानुसार धन देना परम कर्त्तव्य है।"

हरिश्चन्द्र शैव्याकी यह बात सुनकर मूर्च्छित हो गये। शैव्याने समुचित उपचारों द्वारा उनकी मूर्च्छा दूरकी। हरिश्चन्द्रने दुःखित हो कहा—क्या अन्तमें यही करना पड़ेगा? और कोई उपाय नहीं है?

उसी समय सामनेसे एक ब्राह्मण आता हुआ दिखाई दिया तेजस्विता, अङ्गकान्ति और वस्त्राभरण देखनेसे वह धनवान प्रतीत होता था शैव्याने कहा—यह ब्राह्मण धनवान मालूम देता है। यदि इससे कहा जाय और सारा हाल बतलाया जाय, तो संभव है कि इसे दया आजाय और यह ब्राह्मणको देने जितना धन दे दे।

हरिश्चन्द्रने कहा-प्रिये! मैं उससे याचना करूँ? यह कर्म्म तो मुझसे न होगा। यज्ञ करना, दान देना, अध्ययन करना, प्रजा पालन और शरणागतकी रक्षा करना यही क्षत्रियोंका धर्म्म है। क्षत्रियके लिये ब्राह्मणसे मांगना महापाप है। मैं दान देता

रहा हूं । वही भावना अब भी मेरे हृदयमें बसी हुई है। तल-वारकी तीक्ष्ण धारसे जीभके दो टुकड़े कर देना अच्छा है, परन्तु दीनता पूर्वक "देहि" शब्दका उच्चारण करना अच्छा नहीं। मैं क्षत्रिय हूं । न मैंने कभी याचना की है न करूंगा। धन मिले तो आज भी उसी प्रकार दान करूं।

शैव्याने कहा—प्राण नाथ! यदि मांगना अनुचित है तो मुझे बेंच कर ब्राह्मणको दक्षिणा दीजिये और धर्मका पालन करिये।

हरिश्चन्द्र यह सुन कर व्याकुल हो उठे। अन्तमें विवश हो खड़े हुए और कुण्ठित स्वरमें लोगोंको सम्बोधित कर बोले—"भाइयों! जिसे दासीकी आवश्यकता हो और जो इच्छित धन दे सकता हो वह मुझसे बातचीत करे!"

लोगोंने पूछा—भाई! तुम कौन हो, जो इस प्रकार बीच बाजार पत्नीको बेच रहे हो?

हरिश्चन्द्रने कहा—मैं कौन हूं, यह न पूछो मैं नीच हूं—निर्दय और राक्षस हूं। ऐसा न होता तो यह कर्म क्यों करता?

वही ब्राह्मण, जिससे शैव्याने धन मांगनेको कहा था, शैव्या को दासी रुपमें लेनेका प्रस्तुत हुआ। उसका नाम था काल कौशिक। शैव्याके मूल्य स्वरुप उसने एक वल्कल पर सुवर्ण मुद्राओंकी ढेर लगा दी। उसे देखकर हरिश्चन्द्रने शैव्याको ले जानेकी आज्ञा दे दी। कालकौशिक शैव्याको साथ ले चला। चलते समय शैव्याने हाथ जोड़ कर कहा—हे ब्राह्मण! मुझे जरा

पुत्रको गले लगा लेने दो। कौन जाने मेरी और उनकी अब भेट होगी या नहीं! इतनी कृपा करो-मुझे थोड़ा समय दो।

काल कौशिकने शैव्याकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। शैव्या और रोहित दोनों एक दूसरेको देखकर रोने लगे। शैव्या पराधीन हो चुकी थी। शीघ्रही वह ब्राह्मणके साथ जानेको बाध्य हुई। बालक रोहित उनके पीछे लगा। ब्राह्मणने डांटा डपटा और माताने समझाया परन्तु वह न लौटा। शैव्याने ब्राह्मणसे करुण स्वरमें कहा—"प्रभो! इसे भी मोल ले लो। मुझ अभागिनीपर इतनी कृपा और करो।"

ब्राह्मण लौट पड़ा। रोहितका मूल्य भी वल्कलपर रख उसे मोल ले लिया। चलते समय शैव्याने पतिकी प्रदक्षिणा की और व्याकुल चित्तसे सजल नेत्र हो, करुण स्वरमें कहा,—"यदि मैंने दान किया हो, यदि मैंने होम किये हों, यदि मैंने ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट किया हो, तो उस जन्ममें भी हरिश्चन्द्र मेरे पति हों।"

यह हृदय-द्रावक दृश्य देखकर हरिश्चन्द्रके धैर्यका बांध टूट गया। वे हाहाकार कर दीन हीनकी भांति करुणस्वरमें विलाप करने लगे। वह बोले,—"आज मेरी छाया मुझसे अलग हो रही है। हे पुत्र! क्या तू भी मुझे छोड़ चला? हे विप्र! मैं अब कहां जाऊं? विपत्तिमें मेरा जो सहारा था, वह भी आज नष्ट हो गया। हे प्रिये! हे कल्याणि! मुझे राज्यके त्याग और वनवाससे जितना दुःख न हुआ था, उतना तुम्हारे वियोग

से हो रहा है। मेरे दुःखपर तुम्हारे सुख दुःख निर्भर थे। मैं इक्ष्वाकु कुलमें उत्पन्न हुआ था एक विस्तृत राज्यका अधीश्वर था। तुम्हें सब प्रकारका सुख मिलना चाहिये था, परन्तु हाय आज तुम्हें दासत्व स्वीकार करना पड़ रहा है। तुम्हारी दशा देखकर मेरा हृदय चूर्ण विचूर्ण हो रहा है। कलेजा मसोस रहा है और चित्त व्याकुल हो रहा हैं। हे देवि! मुझे अब कथायें सुनाकर सान्त्वना कौन देगा?"

हरिश्चन्द्रको इसी प्रकार कलपते छोड़कर कालकौशिक, शैव्या और रोहितको लेकर चला गया। हरिश्चन्द्र शोक सागरमें निमग्न हो गये। शीघ्रही ब्राह्मण वेशमें विश्वामित्र आ पहुंचे। हरिश्चन्द्रने समस्त धन उनके सन्मुख रखकर कहा—"लीजिये भगवन! स्त्री और पुत्रको बेचकर मैंने यह धन प्राप्त किया है। अब आप मुझे ऋण मुक्त करिये।"

विश्वामित्रने कहा—"वाह' यह कैसे हो सकता है? तुमने मुझे इच्छित धन देनेको कहा था। मुझे राजसूय यज्ञ करना हैं अतः इतने धनसे काम न चलेगा। इतनी दक्षिणा तो बहुत कम कही जा सकती है।"

हरिश्चन्द्रने कहा—"प्रभो! मेरे पास अब और कुछ नहीं है मेरा शरीर अभी शेष है। यदि कोई इसे मोल ले तो आपकी इच्छा पूर्ण हो सकती हैं।"

विश्वामित्रने कहा—"मै यह सब कुछ नहीं जनता। मुझे तो धन चाहिये। चाहे जहांसे जिस प्रकारसे हो लादो।

हरिश्चन्द्रने खिन्न हो, शिर नीचा कर लिया। दूसरेही क्षण उन्होंने पूर्ववत् अपने विक्रयार्थ घोषणा की। भीड़से एक मनुष्यने निकलकर कहा—"मैं प्रवीर नामक प्रसिद्ध चाण्डाल हूं। मेरा दासत्व स्वीकार हो तो मूल्य दे दूं।"

हरिश्चन्द्रने प्रवीरका दासत्व स्वीकार कर लिया। मूल्य स्वरुप उसने जो धन दिया वह उन्होंने विश्वामित्रको अर्पण कर दिया। प्रवीर उन्हें अपने साथ ले चला। उसी समय आकाश—वाणी हुई। देवताओंने पुष्प :वृष्टि कर कहा—राजन्! तुम ऋण मुक्त हो गये। विश्वामित्र भी धन राशि ले आशीर्शाद देते हुए एक ओर चले गये।

चाण्डालने हरिश्चन्द्रको डोमके कार्य्यपर नियत किया। उन्हें श्मशानमें रहना पड़ता। वहाँ दाह कर्म्मके लिये जो लोग शवलाते, उनसे वे कर लेते और शवके वस्त्र एकत्र करते। श्मशान काशीकी दक्षिण ओर था। रात दिन वहां चितायें जला करती थीं। लोगोंकी क्रन्दन-ध्वनिसे सर्वदा वह स्थान पूरित रहता था। वहांका दृश्य बड़ाही भयङ्कर, हृदय-विदारक और करूणा पूर्ण रहता था हरिश्चन्द्रको दम मारनेकी भी फुरसत न मिलती थी। अनवरत परिश्रमके कारण उनका शरीर दुर्बल हो गया। शरीर निरन्तर चिता-भस्म-विलेपित रहता। किसी समय निद्रा लेनेका अवकाश न मिलता। एक वर्ष एक युगके समान प्रतीत हुआ। इतनेही समयमें उनकी काया पलट हो गयी। वे कुछ से कुछ हो गये और पहचाने भी न जाने लगे।

इधर हरिश्चन्द्रकी यह दशा थी, उधर शैव्या और रोहितके कष्टोंका भी वारापार न था। एक दिन राजकुमार कालकौशिकके लिये कुश लाने गया। लौटते समय उसे तृषा लगी। भार उतार कर भूमिपर रख दिया और वह सरोवरमें जलपान करने लगा। सरोवरसे निकल कर ज्योंहीं वह भारके पास पहुंचा त्योंही विश्वामित्र प्रेरित एक सर्पने उसे डस लिया। रोहित विचारा तत्काल कालके गालमें समा गया।

रोहितका यह मृत्यु-संवाद अन्य बालकोंने शैव्याको जा सुनाया। शैव्या पर मानो वज्र टूट पड़ा। वे कटी हुई कदलीकी भांति भूमि पर गिर पड़ीं। उनका हृदय टूक टूक हो गया। वे पुत्रका मुख देखकर जिस आशामें दिन बिताती थीं, उस पर भी पानी फिर गया। अब उन्हें संसार अन्धकार मय दिखाई देने लगा। विनय अनुनय करने पर कालकौशिकने अर्द्ध रात्रिके समय छुट्टी दी उसी समय उदास चित्त और भग्न हृदय ले कर लड़खड़ाते पैरों शैव्या पुत्रके पास पहुंची।

रोहितके शवको गोदमें लेकर शैव्या करुण-क्रन्दन करने लगीं। वे बोलीं—हा दैव! तूने यह क्या किया? मैं निराधार हो गयी। आज मेरा एक मात्र सहारा जाता रहा! अब मैं क्या करूँ और कहां जाऊं? हे नागदेव! तुमने इस निर्दोषका प्राण क्यों लिया? यदि इच्छा ऐसी ही थी, तो अब मेरा भी प्राण ले लो, ताकी इस दुःखसे मैं छूट जाऊँ। हे दैव मुझ अभागिनी पर तूने यह वज्रपात क्यों किया? क्या मरे हुएको मारनाही तेरा

काल है ? हे रोहित ! हे पुत्र ! एक बार आंखें खोल दो ! देखो मेरी क्या दशा हो रही है । हे राजकुमार ! बताओ, अब मैं किसको देखकर दिन बिताऊंगी ? हाय ! निराधारका आधार, मेरा एक मात्र सहारा, आंखका तारा तू कहां चला गया ?

शैव्या इसी प्रकार, निर्जन वनमें अन्धकारमयी अर्द्ध रात्रिके समय विलाप कर रही थी । उसी समय छद्मवेशी विश्वामित्रने आकर कहा—"जल्दी जाकर इसका अग्नि संस्कार करो, अन्यथा चाण्डाल कर लिये बिना न रहेगा ।"

शैव्या रोहितको उठाकर श्मशान ले गयी । वहां चिताओंके लिये ढेर काष्ठ पड़े हुए थे । शैव्याने उन्हींकी चिता तय्यारी की । हरिश्चन्द्र इसी श्मशानमें रहते हैं, यह उन्हें विदित न था । दोनोंका वियोग हुए अधिक समय व्यतीत हो चुका था । रूप रंगमें इतना परिवर्त्तन हो गया था—दोनोंकी ऐसी दशा होगयी थी, कि देखने पर भी एक दूसरेको पहचान न सकते थे ।

शैव्याने चिता तय्यार कर ज्योंही उसमें आग लगायी, त्योंही हरिश्चन्द्रने आकर उसमें पानी छोड़ दिया । उन्होंने क्रुद्ध होकर कहा—"बिना कर दिये शव नहीं जलाया जा सकता यह क्या तुम्हें नहीं मालूम ? कर लेनेके लियेही तो मैं रातदिन यहां उपस्थित रहता हूं ।"

शैव्याने रोकर कहा—"मैं दीन-हीन निराधार एक अभागिनी अबला हूं । मेरे पास एक छदाम भी नहीं है । यह पुत्र मेरा एक मात्र सहारा था, परन्तु कराल कालने आज

इसे भी छीन लिया। मेरे पास कुछ होता तो मैं कर अवश्य दे देती। मुझ पर दया करो और इसका संस्कार करनेकी आज्ञा दो।"

हरिश्चन्द्रने कहा—यह कदापि नहीं हो सकता। मैं स्वामीके आज्ञानुसार विना कर लिये संस्कार करनेकी आज्ञा नहीं दे सकता मैं अपराधी हूं-पराया दास हूं, मुझे किसी पर दया करनेका अधिकार नहीं। विना कर लिये, मैं तुम्हें चिता जलाने न दूंगा।

हरिश्चन्द्रकी यह बातें सुन, शैव्या फूट फूटकर रोने लगीं। वे बोलीं,—हे दैव! तूने मुझे कैसा दिन दिखाया? मैं राजा हरिश्चन्द्रकी स्त्री और मेरी यह दशा! पुत्रका शव रक्खा हुआ है और मुझमें कर देनेकी भी सामर्थ्य नहीं है! हे भगवन्! यह मेरे किस जन्मके पापका फल है? कहां राजर्षि हरिश्चन्द्रका वह ऐश्वर्य और मेरा सुख भोग, कहां राज्यका नाश बन्धुओंका वियोग, स्त्री पुत्रका विक्रय और मेरी यह दशा! हे राजेन्द्र! इस समय तुम कहां हो?"

शैव्याके यह शब्द सुनतेही हरिश्चन्द्र पर मानो वज्र टूट पड़ा। उनके मुखपर विषादकी कालिमा छा गयी। आंखें डबडबा आयीं और वे मूर्च्छित हो कर गिर पड़े। शैव्या शिर नीचा किये कलप रही थीं, अतः उनका ध्यान इस ओर आकर्षितही न हुआ। कुछ देरमें हरिश्चन्द्रकी मूर्च्छा दूर हुई, परन्तु शैव्या और रोहित पर एक दृष्टिपात कर वे पुनः मूर्च्छित हो गये।

इस बार वे कुछ अधिक समय तक अचेत पड़े रहे। वायुकी शीतल तरङ्गोंने जब उनकी मूर्च्छा दूर की तब शैव्या और रोहितके पास बैठकर वे भी विलाप करने लगे। वे बोले,— "हे पुत्र! आज तू कहां चला गया? तेरी माता विलाप कर रही हैं और तू एक शब्द भी नहीं बोलता। आजतक तेरी बातें सुनीं, अतः तेरी माताको ही धन्य है। मैंने तो पहले जो तेरी बातें सुनी थीं उन्हींको स्मरण करते हुए इतने दिन काट दिये। हे पुत्र आज मुझे तू मिला, तो इस दशामें! हे जीव नाधार! एक बार मेरी ओर दृष्टिपात कर, अन्यथा इसी समय स्वर्गमें आकर मैं तुझे गले लगाऊंगा। हे सुकुमार वत्स! हा मनोहृदयनन्दन! तेरा दीन मुख देखकर मेरा हृदय विदीर्ण हुआ जा रहा है।"

इतना कहकर हरिश्चन्द्र पुनः मूर्च्छित हो गये। उनकी बातें सुन, शैव्याके आश्चर्यका वारापार न रहा। उन्हें विश्वास हो गया, कि निःसन्देह यही मेरे पति हैं। वे कुञ्चित स्वरमें कहने लगीं—"हे निर्दयी दैव! तुझे धिक्कार है। हम लोगोंपर विपत्तिका पहाड़ टूट पड़ा तब भी तुझे सन्तोष न हुआ। हे अमर्याद! तूने एक राजेन्द्रको चाण्डाल बना दिया। जिसने अनेक राजाओंको पराजित कर अधीन कर लिया था, जिसके चलनेका मार्ग लोग बहु मूल्य वस्त्रोंसे साफ करते थे, उस राजराजेश्वर को आज तू अस्थि, मज्जा, चिताभस्म और काष्ठादि पूरित अपवित्र और भयङ्कर श्मशानमें घुमा रहा है!"

यह बातें कहते हुए शैव्याका जी भर आया। वे पुनः विलाप करने लगीं। इसी समय हरिश्चन्द्रकी मूर्च्छा दूर हुई। उन्होंने शैव्याको आवश्वासन दे शान्त किया। वे बोले—"प्रिये जिस प्राणनाथका तुम स्मरण करती हो, वह वज्र हृदयका हरिश्चन्द्र मैं ही हूं। अब मैं राजराजेश्वर नहीं; बल्कि एक चाण्डाल हूं। मेरे समान और दुःखी मनुष्य इस अवनीतलमें न होगा। प्रिये! तुम और रोहित, दोनों मुझे प्राणसे अधिक प्रिय हो। मैं तुम्हें उसी दृष्टिसे देखता हूं, परन्तु इस समय विवश हूं। मेरे पैर दासत्वकी शृंखलासे जकड़े हुए हैं। बिना कर दिये या स्वामीकी आज्ञा प्राप्त किये, रोहितका संस्कार न हो सकेगा। जो अपने शरीर किंवा स्त्री पुत्रादि स्वजनोंके लिये अपने स्वामीका अहित करता है, वह मनुष्य पाप भागी होता है। यदि कर देनेकी शक्ति नहीं है, तो तुम यहीं बैठो, मैं अपने स्वामीकी आज्ञा प्राप्त करने जा रहा हूं।"

शैव्याको श्मशानमें बैठाल कर हरिश्चन्द्र अपने स्वामीके पास गये। इधर छद्मवेशी विश्वामित्रने आकर कहा—"यहां पिशाचोंका भय है, अतः उस मन्दिरमें जाकर बैठो।" शैव्याने वैसाही किया। मन्दिरमें उन्हें निद्रा आ गयी। विश्वामित्रने रोहितका पेट फाड़ कर उसकी अन्त्रावली शैव्याके मुख पर डाल दी। मन्दिरमें चारोंओर शोणित छिड़क दिया और शैव्या को रक्त रञ्जित कर दिया। इसके बाद उन्होंने शंख नाद कर

कोलाहल मचाया। सहस्रावधि लोग एकत्र हो गये। उन्होंने समझाया, कि यह कोई राक्षसी है—मन्दिरमें शव भक्षण कर रही थी।

लोगोंने शैव्यासे प्रश्न किये परन्तु वे इस तरह घबड़ा गयी थीं कि कुछ भी उत्तर न दे सकीं। लोगोंने विश्वामित्रकी बात पर विश्वास कर लिया। सबोंने उसे बालघातिनी समझ कर प्राण-दण्ड देना उचित समझा। यह स्थिर हुआ, कि प्रवीर चाण्डाल द्वारा इसका शिर उड़वा दिया जाय। जिस समय हरिश्चन्द्र अपने स्वामीके पास पहुंचे, उसी समय दो मनुष्योंने प्रवीरको यह समाचार जा सुनाया। हरिश्चन्द्र अभी एक शब्द भी न कह पाये थे। प्रवीरने समझा, कि यह भी यही संवाद सुनाने आया है। उसने हरिश्चन्द्रसे कहा—"हे दास! श्मशानके पास जो मन्दिर है, उसमें कोई राक्षसी आई हुई है। वह बाल घातिनी है। उसके बधकी आज्ञा हुई है अतः उसका शिर उड़ा देना।"

प्रवीरकी यह आज्ञा सुन, हरिश्चन्द्र बड़े विचारमें पड़ गये। वह मन ही मन कहने लगे—"अब तक केवल श्मशानहीका काम करना पड़ता था, परन्तु आज यह नया काम दिया जा रहा है। किसीका बध करना महा पाप है। स्त्री पर हाथ उठाना सबसे अधिक भयंकर है।"

यह विचार आतेही हरिश्चन्द्रका कोमल हृदय कांप उठा। वह बोले—"यह काम तो मुझसे न होगा। आपकी आज्ञासे असा-

ध्य कर्म्म भी मैं कर उठाऊँगा, परन्तु स्त्री-वध महापाप है, यह काम मुझसे न करवाइये।"

प्रवीरने हरिश्चन्द्रको समझाते हुए कहा—"वह स्त्री नहीं राक्षसी है। उस दुष्टाने अनेक बालकोंका प्राण लिया है। उसके वधसे पाप नहीं, बल्कि पुण्य होगा।

हरिश्चन्द्रने कहा—"स्त्री जातिकी रक्षा करना परम धर्म्म है। जबसे जन्म हुआ, तभीसे स्त्री वध न करना यह मेरा व्रत है। दूसरा चाहे जैसा दारुण काम होगा, मैं करूंगा। परन्तु स्त्री-वध मुझसे न होगा!"

प्रवीरने स्वर बदलकर कहा—तू मेरा दास है अतः तुझे यह काम करनाही होगा। तेरे व्रत और धर्म्मका अब कोई मूल्य नहीं रहा। मेरी आज्ञा शिरोधार्य्य करना ही इस समय तेरा धर्म्म है। ले यह तलवार और जाकर उसका वध कर!

हरिश्चन्द्रने विवश हो, तलवार उठा ली और शिर नीचा कर लिया। बिना कुछ कहे सुने दासताको धिक्कारते हुए वह उदास हो श्मशान लौट गये। शैब्याको राक्षसी ठहरा कर लोग श्मशानमें छोड़ गये। विपत्ति पर विपत्ति आनेके कारण शैब्याको अपने तनो बदनकी सुधि न थी। वे जार जार रो रही थीं। राक्षसीके स्थानमें अपनी प्रियपत्नीको देखकर हरिश्चन्द्रका हृदय टूक टूक हो गया। शैब्याने हाथ जोड़कर सारा हाल कह सुनाया। अन्तमें बोलीं—"हे राजन्! यह स्वप्न है या सत्य? हे महाभाग! बतलाइये, आपकी क्या धारणा है? मेरा हृदय व्याकुल हो रहा

है। हे धर्मज्ञ। यदि यह सब सत्य है तो समझ लो, कि धर्म्म कोई वस्तु नहीं है। सत्यसाधन, देवाराधन और दान पुण्य भी व्यर्थ है हे प्राणनाथ! क्या हमारे सुकर्मों का यही फल है?"

हरिश्चन्द्रको विश्वास हो गया, कि शैव्या निरपराधिनी है, परन्तु स्वामीकी आज्ञा वे कैसे लोपकर सकते थे। कुंठित स्वरमें शैव्याको उन्होंने सारा हाल कह सुनाया। शैव्याने हाथ जोड़कर कहा—"प्राणनाथ! मेरा शिरच्छेद कर अपने स्वामीकी आज्ञा पालन करिये। हे राजेन्द्र! आप सत्य न छोड़िये। परद्रोह महा पाप है।"

पत्नीके यह शब्द सुन कर हरिश्चन्द्रको मूर्च्छा आ गयी। सचेत होने पर वह बोले—"जो बात बतलाते नहीं बनती, वह क्यों कर की जाय! प्रिये! क्या मैं अपनेही हाथों तुम्हारा शिर-च्छेद करूं?"

शैव्याने कहा—"प्राणनाथ! आप सङ्कोच न करिये। यदि मैंने सुकर्म्म किये होंगे, तो दूसरे जन्ममें भी आप मेरे पति होंगे। रोहित समान पुत्र, वशिष्ठ समान गुरु और विश्वामित्र समान याचक हमें प्रत्येक जन्ममें मिलते रहें! हे नाथ! आपके हाथसे आती हुई तलवारको भी मैं मुक्तामाल समझूंगी। आप सङ्कोच छोड़ दीजिये और निश्चित हो मेरा शिरच्छेद करिये!"

हरिश्चन्द्रने तलवार उठाते हुए कहा—"यदि मैंने निष्कपट भावसे स्वामीकी आज्ञा शिरोधार्य्य की है, यदि मैंने पापको पाप समझा है, तो ईश्वर हमारा कल्याण करेगा। प्रिये! अब

अधिक समय यह वियोग दुःख तुम्हें न सहना पड़ेगा। शीघ्रही स्वर्गमें मेरी और तुम्हारी भेंट होगी। हे कल्याणि! रुष्ट न होना मैं पराधीन हूं और केवल कर्तव्य पालन कर रहा हूं।"

यह कह कर हरिश्चन्द्रने तलवार उठायी परन्तु ज्योंही वह वार करने चले त्योंही विश्वामित्र सहित देवताओंने आकर उनका हाथ पकड़ लिया। वे बोले—"सत्यकी परमावधि हो गयी। तुम कर्त्तव्य पथसे विचलित न हुए अतः तुम्हें धन्य वाद हैं। तुम्हारी जितनी प्रशंसाकी जाय, उतनीही कम है। राजन्! संसारमें अपने कर्म्मसे तुमने दुर्लभ पद प्राप्त किया है। तुम्हारा आत्मत्याग अनुपम है। तुम्हारी धर्म्म-बुद्धि और कष्ट सहिष्णुता सराहनीय है। हे राजेन्द्र। हम लोग तुमसे सीमातीत प्रसन्न हैं।"
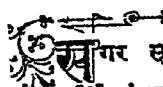
यह कह कर देवताओंने पुष्प वृष्टि की और राजकुमारको सजीवन कर दिया। विश्वामित्रने उनका सत्यव्रत देखकर अपने कितनेही तपका फल अर्पण किया। मायाकी गहन छाया दूर हो गयी और पुनः राज्यकी प्राप्ति और बन्धुओंका संयोग हुआ। उन्होंने अयोध्यामें दीर्घकाल पर्य्यन्त शासन किया और अन्तमें रोहितको राज्य दे, वह परम पदको प्राप्त हुए।

विपत्ति पर विपत्ति आने पर भी हरिश्चन्द्र धर्म्म पथसे विचलित न हुए। वे अनेक उत्तम गुणोंसे युक्त थे। संकट पड़ने पर भी, सत्यवादी दाता और धर्म्मशील बने रहने वाले महापुरुषोंको अन्तमें कितना लाभ होता है, यह हरिश्चन्द्रकी जीवनीसे जाना

जा सकता है। राजराजेश्वर होने पर भी; उन्हें पद पद पर कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा और दुःख सहना पड़ा। हमें भी सदाचरण करते हुए कष्ट उठाना पड़े, तो उठा लेना चाहिये परन्तु कर्त्तव्य पथसे विचलित न होना चाहिये। सदाचारी और सत्य धर्म्मावलम्बी अन्तमें अवश्य सुखी होते हैं। "सत्यमेव जयते" यह निःसन्देह है। काल कौशिक ब्राह्मण और प्रवीर चाण्डाल दोनों वेश धारी थे। विश्वामित्रने परीक्षा लेनेके लिये ही उनकी रचना की थी। जिस परम पदको प्राप्त करनेके लिये ऋषि मुनि भी लालायित रहते हैं वह सकुटुम्ब हरिश्चन्द्रको प्राप्त हुआ। उनकी उज्ज्वल कीर्ति अद्यपि दिगदिगन्तमें परिव्याप्त हो रही है। धन्य है सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्रको!

राजा सगर

सगर सूर्य्यवंशी इक्ष्वाकु कुलोत्पन्न राजा हरिश्चन्द्रके वंशज थे। उनके पिताका नाम था वाहुक। वाहुक सदा उदास रहते थे उनके स्त्रियां अनेक थीं, परन्तु पुत्र एक भी न था। एक दिन उनकी सभामें नारदमुनि आ पहुचे। उन्हें राजाकी दशा पर दया आ गयी। उन्होंने एक आम्रफल देकर कहा, जिसे यह खिलाओगे उसे पुत्र होगा। वाहुकने वह अपनी बड़ी रानीको खिलाया, अतः वह गर्भवती प्रतीत होने लगी। उसी समय कई शत्रुओंने उनके नगर पर आक्रमण किया। वाहुक उनको पराजित न कर सके, अतः नगर छोड़ तपोवनमें रहने लगे।

एक दिन बड़ी रानीको गर्भवती देखकर अन्य रानियोंने उसे विष दे दिया। तपोवनमें अनेक ऋषियोंका निवास था। विषकी विषम ज्वालासे व्याकुल हो रानीने और्व ऋषिके पास जाकर प्राण रक्षाके लिये प्रार्थना की। ऋषिने आशीर्वाद दे उसकी रक्षा की। कुछ ही दिन वाद वाहुककी मृत्यु हो गयी और समस्त रानियां सती हो गयीं। गर्भवती होनेके कारण और्व ऋषिने बड़ी रानीको सती न होने दिया। यथा समय उसने पुत्र प्रसव किया। गर्भके साथही रानियोंका

दिया हुआ विष भी निकला। विष सहित जन्म हुआ, अतः ऋषिने उसका नाम रक्खा सगर (स-सहित+गर-गरल, विष)

राजा सगर महा तेजस्वी थे। आगे चलकर वे महापराक्रमी शूरवीर, विद्वान, चतुर, दयालु, नीतिमान और उत्साही निकले। धर्म्म और तत्वज्ञान पर उनकी विशेष प्रीति थी। सगर राजाके दो स्त्रियां थीं, सुमति किंवा प्रभा और केशनी किंवा भानुमती दोनों पति-पद्-रता परम पतिव्रता थीं। और्व ऋषिके आदेशानुसार सगरने तालजंघ, यवन, शक, हैहय और वर्वरादिक म्लेच्छोंको पराजित कर अपने राज्यमें वृद्धि की। उन्होंने अनेक म्लेच्छोंको विकृत बना दिया। जिन्होंने दया प्रार्थना की उनकी इसी प्रकार रक्षा हुई। सगर चाहते थे कि अपने वेशके कारण म्लेच्छगण दूरहीसे पहचाने जा सकें, जिससे आर्य्य प्रजाको भी किसी प्रकारका भ्रम न हो। इसी उद्देश्यकी पूर्त्तिके लिये उन्हें उपरोक्त कार्य्य करना पड़ा।

सगरने अनेक राजाओंको पराजितकर अपने पिताका राज्य प्राप्त किया और उन्हें समुचित दण्ड दिया। त्रेतायुगमें वही सर्वप्रथम चक्रवर्ती हुए। वे स्वयं सदाचारी थे और देशमें सदाचारकी वृद्धि करते थे। उन्होंने प्रजाका बड़ा हित किया और नीति युक्त शासन द्वारा अक्षय कीर्ति प्राप्त की।

राजा सगरको अपने पूर्व जन्मकी बातें भूलीं न थीं। उन्होंने कन्यादान प्रभृति अनेक सुकर्म्म किये थे, अतः राजाके यहां उनका जन्म हुआ था। इस जन्ममें भी उन्होंने अनेक कन्याओं

का दान करनेका विचार किया। गृहमें एक कन्या भी न थी, अतः उनकी प्राप्तिके लिये वनमें जाकर वे स्त्रियों सह तपस्या करने लगे। उनकी तपश्चर्य्या देखकर परम करुणाकर मङ्गलमय शङ्कर भगवान प्रसन्न हो उठे। जब उन्होंने अभिलषित वर मांगनेको कहा—तब दैवेच्छासे भूलकर सगरने कन्याओंके बदले पुत्र मांग लिये।

महेश्वरके वरदानसे सुमतिके अनेक और केशनीके एक पुत्र उत्पन्न हुआ वे सभी महा बलवान और पराक्रमी थे। इन्होंने समुद्र और द्वीपोंपर अधिकार जमा लिया था और तद्विषयक नई नई बातोंका पता लगाया था। सगरके पुत्रों द्वारा अधिकृत हुआ अतः समुद्रका नाम सागर पड़ा।

असमञ्जा नामक एक पुत्र कोई योग भ्रष्ट पुरुष था। उसे संसार पर मोह न था। वह वन जाना चाहता था। सगर उसे ऐसा करने न देते थे, अतः वह चारों ओर उत्पात मचाता था। अन्तमें विवश हो सगरने उसे निर्वासित कर दिया और उसके अंशुमान नामक पुत्रको अपने पास रख लिया।

सगर राजाने अनेक प्रकारके यज्ञ किये थे। अन्तिम अश्वमेधके समय इन्द्रने अश्व हरणाकर कपिलमुनिके पीछे बांध दिया। कपिलमुनि पाताललोकमें तपस्या कर रहे थे। सगरके पुत्र उसकी रक्षा करते थे। चारो ओर वे खोज आये, परन्तु अश्व न मिला। अन्तमें पता पाकर वे पाताल गये। वहां कपिलाश्रममें अश्वको बँधा हुआ देखकर उन्होंने शोर मचाया और

कपिलमुनिपर प्रहार किया। मुनिका ध्यान छूट गया और समाधि टूट गयी। उनके दृष्टिपात करतेही सगरके पुत्र जल कर भस्म हो गये।

राजा सगर पुत्रोंकी मार्ग प्रतीक्षा कर रहे थे। दीर्घकाल व्यतीत हो गया, पर न वे लौटे और न उनका कोई समाचारही मिला। यज्ञकी समाप्तिमें बड़ा विघ्न उपस्थित हो गया। स्वयं दीक्षा लिये हुए थे। असमञ्जाको पहलेही निर्वासित कर दिया था। केवल अंशुमानही उनके पास उपस्थित था। उन्होंने उसेही पुत्रोंका पता लगाने भेजा।

अंशुमान महापराक्रमी और विचार शील पुरुष था। पता लगाता हुए वह कपिलाश्रम जा पहुंचा। वहाँ मुनिको ध्यानस्थ देख वह उनके सम्मुख हाथ जोड़ कर चुपचाप खड़ा रो रहा। जब मुनिकी समाधि भङ्ग हुई और उन्होंने अंशुनामको स्तुति करते देखा, तब वे प्रसन्न हो उठे। अंशुमानको अश्व देकर उन्होंने उसके पितृव्योंका हाल और उनका मुक्तिका उपाय बतलाया। अंशुमान अश्व लेकर सगरके पास आये और उनसे सारा हाल कहा। सगरने दैवेच्छा समझ कर धैर्य्य धारण किया और यज्ञकी समाप्तिकी। अन्तमें अंशुमानको शासन भार दे, वह और्व ऋषिके पास चले गये। वहां तत्वज्ञान प्राप्त कर वह तपस्या करने लगे और कुछ दिनोंके बाद परम पदको प्राप्त हुए।

राजा सगरने स्वपराक्रमसे शत्रुओंको पराजित कर

अपने पिताका राज्य वापस लिया और उसमें वृद्धि की, अन्तमें चारोंओर अपना प्रभुत्व स्थापित कर उन्होंने राज सूय यज्ञ किये और चक्रवर्तीका पद प्राप्त किया। सदाचारकी वृद्धिके लिये उन्होंने समुचित उपाय किये और दुराचारियोंको दण्ड दिया। वेद विरोधी यवनोंको विकृत कर उन्होंने देशका बड़ा उपकार किया। लोग उन्हें दूरहीसे पहचान लेने लगे और उनके संसर्गसे बचे रहने लगे। फल यह हुआ, कि देशमें वैदिक धर्म्म ज्योंका त्यों बना रहा और अधर्म्मियोंका जादू कोई काम न कर सका।

सगरके पुत्रोंकी जीवनीसे भी हमें कुछ शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। उन्होंने-अपने प्रबल बलके अभिमानमें आकर कपिलके समान महात्माके साथ अविचार पूर्ण व्यवहार किया अतः उनका विनाश हुआ। अविचार पूर्ण कार्य्य करनेसे यही दशा होती है और शुभ कार्य्योंमें विघ्न आ पड़ता है। इसके विपरीत अंशुमानने अभिमान तज, विनम्र हो, कपिल मुनिकी स्तुति की, तो उनका इच्छितकार्य्य सिद्ध हुआ और मृत्यु प्राप्त पितृव्योंके उद्धारका उपाय भी ज्ञात हुआ। हमें भी अंशुमानकी तरह महा पुरुषोंकी कृपा सम्पादन कर, कार्य्य सिद्ध करने चाहिये और सदा नम्र रहना चाहिये।

राजा दिलीप।

दिलीप सगरके पौत्र और राजा अंशुमानके पुत्र थे। उनकी माताका नाम था यशोदा। यशोदा विदुषी और पतिव्रता स्त्री थी। उन्हींके संरक्षणमें दिलीप प्रतिपालित हुए थे। यथा समय ऋषि मुनियोंके निकट शिक्षा प्राप्त कर वे वेद वेदाङ्गमें पारङ्गत हुए थे। वे दयावान, धर्मनिष्ठ, तत्वज्ञानी, शूर वीर, साहसी और उत्साही पुरुष थे। अपने प्रबल प्रतापसे अनेक राजाओंको पराजित कर उन्होंने राज राजेश्वरका पद प्राप्त किया था। अपने पिताके समान ही उन्होंने न्यायनीतिसे प्रजा पालन कर उनका प्रेम सम्पादन किया था।

दिलीपने शत्रुओंका संहार कर अपना राज्य निष्कन्टक कर लिया था। उनका प्रबल पराक्रम देखकर रावणके समान शक्ति-शाली नरेश भी डर कर चलते थे। वे मन्त्र शास्त्रमें भी परम प्रवीण थे। एक बार रावणने उनसे युद्ध करनेका विचार किया, परन्तु उस-ने पहले उनकी शक्तिका पता लगाना उचित समझा। वह ब्राह्म-णका वेश धारण कर स्वयं उनके नगरमें आगया और सब बातोंका पता लगाने लगा। अन्तमें वह महाराजके भवनमें आया। वे उस समय देवार्चन कर रहे थे। रावण उनके पास जाकर बैठ गया। पूजासे निवृत्त हो, दिलीपने एक कुश लिया और जलसे मन्त्रित कर उसे दक्षिणकी ओर फेंक दिया।

दिलीपका यह कार्य्य देखकर रावणको शङ्का हुई। उसने इधर उधरकी बातें करनेके बाद इसका कारण पूछा। दिलीपने कहा—"लङ्कामें रावण नामक एक ब्राह्मण राज्य करता है। उसके नगरमें आग लग गयी है और वनमें एक कामधेनुपर व्याघ्रने आक्रमण किया है। वह कुश मन्त्रके प्रभावसे अग्निको शान्तकर उस गौकी रक्षा करेगा।"

रावणको यह सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ उसने जांच की तो दोनों बातें ठीक निकलीं। दिलीपकी यह सामर्थ देखकर वह चुपचाप अपने देश लौट गया और उनसे युद्ध करनेका विचार उसने छोड़ दिया।

इस कथासे राजा दिलीपकी शक्तिका अनुमान किया जा सकता है। वे अपने समयमें भारतके अद्वितीय शासक थे। उन्होंने दीर्घकाल पर्य्यन्त राज्य किया और अन्तमें भगीरथको शासनभार दे, वह तपस्या करने चले गये और वहीं वनमें सद्गतिको प्राप्त हुए।

भगीरथ भी अपने पिताके समान प्रतापी और शक्तिशाली नरेश हुए। उन्होंने अपने पूर्वजोंका (सगरके पुत्र) जो कपिलमुनिकी क्रोधाग्निमें पड़ कर भस्म हो गये थे, उद्धार किया। इस कार्य्यके लिये उन्हें घोर तपस्या करनी पड़ी, और ब्रह्मदेव तथा महेश्वरको प्रसन्न कर, गङ्गाको स्वर्गसे इस लोकमें लाना पड़ा। उन्हींके पीछे गङ्गाका नाम भागीरथी पड़ा। धन्य है राजा दिलीपको और उनके उद्योगी पुत्रको!

राजा रघु

राजा रघु दिलीपके पौत्र, दीर्घबाहुके पुत्र और दशरथके पितामह थे। उनका जन्म त्रेतायुगमें हुआ था। बाल्यावस्थामेंही उन्होंने अनेक विद्याओंमें निपुणता प्राप्त कर ली थी। वे महाशूरवीर, पराक्रमी, तेजस्वी, नीतिज्ञ, धर्म्मिष्ठ उत्साही, दयालु और परोपकारी थे। वे इतने शूरवीर और निर्भीक थे, कि कोई उनसे युद्ध करनेका साहस न करता था। शत्रु उन्हें देखकर थर्रा उठते थे और दिग्पाल भयभीत हो जाते थे। उनकी उज्ज्वल कीर्त्ति संसार भरमें व्याप्त हो रही थी। रघुवंश काव्यमें उनकी दिग्विजयका संक्षिप्त विवरण दिया गया है। उसे देखनेसे उनकी शक्तिका पता चलता है।

दिग्विजयके लिये बाहर निकलनेके पूर्व रघुने अपने राज्य और राजधानीकी शत्रुओंसे रक्षा करनेका पूर्ण प्रबन्ध किया। नित्य नई सेना मिलती रहे और शत्रु गण दिग्विजयके कार्य्योंमें बाधा न दे सकें, तदर्थ भी पूरा प्रबन्ध किया। तदन्तर मौल्य, भृत्य, सूर्य्य, श्रेणी, द्वीपद, और अटवीक—यह छः प्रकारकी सेना लेकर वह नगरसे बाहर निकले। उस समय स्त्रियोंने मङ्गलाचार किया और जनताने आनन्द मनाया। पृथ्वीपर

हाथियोंकी सेना चलनेसे मेघमण्डल वाले आकाशको और आकाशमें धूल छा जानेसे भूतलकी भ्रान्ति होती थी। भूमिको कम्पित करती हुई यह प्रचण्ड सेना पूर्वकी ओर अग्रसर हुई। रघुने निर्जल प्रदेशमें कुए खुदाये, नदियोंपर पुल बनवाये और जङ्गलोंको काटकर पथ निर्माण कराये।

दिग्विजय और व्यवस्था करते हुए रघु समुद्रके किनारे पहुंचे। वहां सुब्रह्मदेशके नरेशने अधीनता स्वीकार की। बङ्ग देशके राजाने नौका सैन्य लेकर युद्ध किया, परन्तु रघुने उसे पराजित कर गङ्गा प्रवाहमें अपना जय-स्तम्भ स्थापित किया। कितनेही नरेशोंको प्रथम पद भ्रष्ट किया और बादको कर लेना स्थिर कर, उनका राज्य उन्हें वापस दे दिया। वहांसे वे कलिङ्ग प्रदेशमें गये और महेन्द्र नामक नरेशसे द्रव्य ग्रहणकर उन्होंने महेन्द्र पर्वत पर विजय पताका स्थापित की। वहांसे समुद्रके तीर तीर पूगी वनमें होते हुये, वह दक्षिणकी ओर अग्रसर हुए और कावेरी नदी पार की। इसके बाद वे मलयागिरिके प्रदेशमें गये, जहां इलायची और मिर्च उत्पन्न होती है। वहां हारीत पक्षियोंसे युक्त गिरि उपत्यकामें अपना शिविर स्थापित किया। दक्षिणायनमें सूर्य्य भगवानका प्रताप दिन प्रति दिन क्षीण होता है, परन्तु इस सूर्य्यवंशी नरेशका प्रताप ज्यों ज्यों दक्षिणमें गया, त्यों त्यों वृद्धिगत हुआ।

दक्षिणमें विजय पताका उड़ा कर रघु पश्चिमकी ओर चले। सिंहाद्रि पर्वत उल्लङ्घन कर वे केरल देशमें गये और

वहांके राजाको पराजित कर त्रिकुटाचल पर्वतर अपनी विजय ध्वजा स्थापित की। उस प्रदेशमें मरुला नामक नदी बहती थी और ताड़ खजूर तथा केवड़ेके वन थे।

दक्षिणसे निकल कर सिन्ध, पञ्जाब और अफगानिस्तान होते हुए वे ईरान गये। ईरानके राजासे बड़ा युद्ध हुआ, परन्तु रघुने उसे पराजित कर नतमस्तक किया। वहां कुछ दिन विश्राम कर वे वापस लौट आये और सिन्धु नदीके किनारे होकर उत्तरकी ओर अग्रसर हुए। वहां कुण देशके राजाको पराजित कर वे काम्बोज गये। काम्बोज पतिने उन्हें अनेक अश्व भेंट दिये और उनकी आधीनता स्वीकार की।

इसके बाद केवल अश्वारोही सैन्य लेकर वह हिमालय गये। वहां गिरि-गह्वरोंमें पराक्रमी सिद्धोंका निवास था। जब वे भोजपत्र और बांसके वनमें पहुंचे तब उन्हें वहांका रमणीय दृश्य देखकर सीमातीत हर्ष हुआ। वहां पुण्योदका भागीरथीके जल-कण युक्त शीतल वायु प्रवाहित हो रही थी, कस्तूरी मृग बैठे हुए थे और एक जड़ी बूटी बिना तेलके दीपककी तरह जल रही थी। रघुने वहां अपना कीर्ति स्तम्भ स्थापित कर कैलासके पास हो, लौहित्या नदी पारकी और कृष्णा गुरुके वनमें शिविर स्थापित किया। वहां प्रागज्योतिष और कामरूप देशके नरेश भेंट ले उपस्थित हुए और उनकी अधीनता स्वीकार की। इस प्रकार दिग्विजय कर रघु अयोध्या लौट आये और चक्रवर्तीका पद धारण कर शासन करने लगे।

रघुने न्यायनीति युक्त शासन कर प्रजाको सन्तुष्ट किया। देशमें विद्याकला और स्मृद्धिकी वृद्धि हुई उन्होंने विद्वानोंको राज्याश्रय दिया। उनके राज्यमें रहने वाले ब्राह्मण और क्षत्रिय परम ज्ञानी थे। वैश्य शूद्र भी विद्या सम्पादन कर अपने अपने कर्त्तव्यमें रहते थे। चारों ओर जहां देखो वहीं वेद शास्त्र और तत्वज्ञानकी चर्चा होती थी। राजा रघुको स्वधर्म और स्वदेश पर इतनी अधिक प्रीति थी; कि वे उसकी रक्षामें तन मन अर्पण करनेको प्रस्तुत रहते थे। उनका ऐश्वर्य्य भोग और संसारकी निःसार ममतापर प्रेम न था। दीन दुखियोंको दुःख मुक्त करनेके लिये वे सदा चिन्तित रहते थे। वे अपने धन और जीवनका मूल्य समझते थे और व्यर्थही नष्ट न कर, उनका उचित उपयोग करते थे। प्रजाका पुत्र समान पालन कर उन्होंने उसकी प्रीति सम्पादन की थी। नित्यकर्म्म करनेमें वे सदा दृढ़ चित्त रहते थे। उनका धन विद्वान, धर्म्मिष्ट और दीन हीन मनुष्योंको आश्रय देनेमें व्यय होता था।

राजा रघुने विश्वजित नामक यज्ञ किया था। उसकी दक्षिणामें उन्होंने अपना समूचा धन भण्डार खाली कर दिया था। जिस समय वे अपना सर्वस्व दान कर चुके थे, उस समय वरतन्तु ऋषिका कौत्सुक नामक शिष्य उनके पास आया। उसे गुरु दक्षिणा चुकानेके लिये धनकी आवश्यकता थी। रघुके पास उस समय केवल मृत्तिका पात्र शेष था तथापि उन्होंने उद्योग कर कठिनाईके साथ उसकी इच्छा पूर्ण की।

रघुकी उदारता और सत्याचरणके ऐसेही अनेक उदाहरण हैं। उनके विषयमें जितना लिखा जाय उतनाही कम है।

एक दिन उनके राजमन्दिरमें एक वृद्ध और विद्वान ब्राह्मण याचना करने गया। राजाने उसकी अनेक प्रकारसे अभ्यर्थना की और राजाने समूचा राज्य अर्पण कर उसकी इच्छा पूर्ण की। इसके बाद वे जङ्गलको रवाना हुए। मार्गमें उन्हें एक दिव्य फलकी प्राप्ति हुई। उस फलके भक्षणसे वृद्ध तरुण हो सकता था। रघुको उसे देखकर वृद्ध ब्राह्मणकी याद आ गयी। वह उसे खाकर तरुण हो सुख भोग करे, इस विचारसे वह लौट आये और उसे ही वह फल अर्पण किया। उनके परमार्थकी यहां परामवधि हो गयी। ऐसा सद्भाव उदय होना कोई सामान्य बात नहीं है। अन्तमें इसी सत्यनिष्ठाके कारण ईश्वरकी कृपासे उनका राज्य उन्हें वापस मिल गया।

राजा रघु पर दुःख-भञ्जक और दान-वीर थे। उन्होंने सूर्य्यवंशी राज्यका इतना उत्कर्ष किया और इतनी कीर्ति प्राप्त की, 'कि सूर्य्यवंश रघुवंशके नामसे पुकारा जाने लगे। जिस वंशमें ऐसे महापुरुष उत्पन्न हों, उस वंशको धन्य हैं। अनेक महापुरुषोंकी जीवनियोंसे सिद्ध होता है, कि शुद्ध और स्वाश्रयी वीर पुरुष द्रव्यके सम्पादन और दानमें समानही शूर वीर और समर्थ होते हैं। सज्जनोंकी सम्पत्ति सार्वजनिक होती है, इसमें कोई सन्देह नहीं। ईश्वरपरायण और दानवीर रघुने दीर्घकाल पर्य्यन्त राज्य किया और वृद्धावस्थामें अजको

शासन भार दे उन्होंने वनकी [illegible]हली। वहीं तप करते हुए वह सद्‌गतिको प्राप्त हुए। क्या वास्तवमें वह संसारसे चले गये? नहीं, महापुरुष अमर होते हैं। पार्थिव शरीर न रहने पर भी उनकी कीर्त्ति-देह अमर है!

यस्य कीर्त्तिः स जीवति।

राजा भरत

भरत चन्द्रवंशी पुरुकुलोत्पन्न राजा दुष्यन्तके पुत्र थे उनकी माताका नाम था शकुन्तला। शकुन्तला कण्व ऋषिके आश्रममें रहती थी। वहीं दुष्यन्तने उनसे गान्धर्व विवाह किया था। भरतका जन्म और प्रतिपालन भी वहीं तपोवनमें हुआ था। उनके जातिकर्म्मादि संस्कार स्वयं कण्व मुनिने किये थे।

भरतके दक्षिण हस्तमें चक्र और पदोंमें कमलका चिह्न था अपनी बाल्यावस्थामें ऋषि आश्रमके पासही एक दिन वे सिंह शावकके साथ क्रीड़ा कर रहे थे। उसी दिनसे सबको विश्वास हो गया था कि यह परमप्रतापी और शक्ति सम्पन्न होंगे। भरत धर्म्मनिष्ठ, विद्वान और ज्ञानी थे। देव, धर्म्म और ब्राह्मणोंपर उनकी अत्यन्त श्रद्धा थी। दुष्यन्तके बाद उनका यथाविधि अभिषेक हुआ। अभिषेक होतेही उन्होंने किरात, यवन, अन्ध्र, कङ्क और शक जातीय अधर्मी नरेशोंको पराजितकर अपने राज्यका विस्तार बढ़ाया। शक्तिशाली दैत्य देवताओंको पराजित कर उनकी स्त्रियां हर ले गये थे। भरतने उनके साथ युद्धकर देवताओंको स्त्रियां वापस दिलायीं।

उन्होंने अधर्म और अत्याचारका मूलोच्छेदकर धर्म और नीतिकी वृद्धि की। अन्तमें दिग्विजयकर भरतने चक्रवर्ती पद धारण किया और सब नरेशोंने उनकी अधीनता स्वीकार की

भरतने अपने सर्व मनोरथ परिपूर्ण किये थे। उन्होंने सब मिलाकर एकसौ तैंतीस अश्वमेध यज्ञ किये थे। इन यज्ञोंके अतिरिक्त भी उन्होंने अनेक वेदोक्त कर्म किये थे और सुवर्ण अलङ्कारोंसे भूषितकर अगणित गायें दान की थी। विद्या कला और उद्योगकी उन्नतिके लिये भी उन्होंने अपरिमित धन व्यय किया था। ऋषि मुनि और विद्वान ब्राह्मण उन्हें परामर्श देते थे। उनका मन्त्रीमण्डल भी विद्वान और चतुर था। देशका शासन कार्य्य योग्यताके साथ सुचारु रूपसे होता था। भरत जिस प्रकार दान, धर्म, कर्म और पराक्रममें श्रेष्ठ थे। उसी प्रकार उनका ऐश्वर्य्य भी अतुलनीय था।

भरतने दिग्विजयकर अपना संवत् प्रचलित किया था और वह द्वापरके अन्ततक चला था। उसके बाद युधिष्ठिरने अपना संवत चलाया का। उनके एकाधिपत्यके कारण आर्य्यावर्त भरतखण्ड किंवा भारतवर्षके नामसे पुकारा जाने लगा।*

भरतने विदर्भ कुलकी तीन कन्याओंसे विवाह किया था, परन्तु सन्तान न होनेके कारण चिन्तातुर रहते थे। कण्व ऋषिके आदेशानुसार उन्होंने मरुत्सोम यज्ञ किया। यह

× इसविषयमें मत भेद है। कुछ विद्वानोंका कथन हैं कि यह ऋषभ देवके पुत्र जड़ भरतके नाम परसे पड़ा है।

के प्रभावसे भरद्वाज नामक प्रतापी पुत्रकी प्राप्ति हुई। भरतने बादको उसका नाम वितथ रखा। जब वितथ बड़ा हुआ भरत उसे शासन भार दे तपस्या करने चले गये। तप करते हुए कुछ दिनोंके बाद वे परम पदको प्राप्त हुए।

भक्तराज अम्बरीष।

अम्बरीष राजा दिलीपके पौत्र और सर्यातिके पुत्र थे। उनका जन्म त्रेतायुगमें हुआ था। वे दानवीर और भगवद्भक्त थे। उन्होंने अपने अपूर्व पराक्रमसे सातही दिनोंमें समस्त भारत और सप्तद्वीपों पर अधिकार जमा लिया था। वे प्रबल सैन्य और अक्षय धन-भण्डारके अधीश्वर थे। उनका ऐश्वर्य्य अतुलनीय था। यह सब होने पर भी उन्हें किसी बातका मोह न था। वे विद्वान शूरवीर, दयालु और नीतिज्ञ थे। उन्हें इतिहासका भी अच्छा ज्ञान था। क्षत्रिय जाति और विजयी पुरुषोंके विषयमें वे बहुत कुछ जानते थे। जैसे वे धर्म-निष्ठ थे वैसेही व्यवहार दक्ष, कर्त्तव्य परायण और शासन-कला-कुशल थे। विद्वानोंको आश्रय दे, उन्होंने विद्या और धर्म्मनीतिकी वृद्धि की थी।

राजा अम्बरीष ऐसे न्यायी और नीतिमान थे, कि प्रजा और पुत्रमें लेश मात्र भी अन्तर न रखते थे। प्रजाके अग्रणियोंको वे बड़े प्रेमसे बुलाते और उनका सत्कार करते थे। निर्धनसे वह राजस्व न लेते थे। प्रजासे जो धन मिलता, वह प्रजाहीके कार्य्य में व्यय होता था। भूमिको उर्वरा बना कर वह खेती कराते

और उसकी उपजसे राजधनमें वृद्धि करते। भूमिसे जो उत्पन्न होता उसेही वे वास्तविक आय समझते थे। अन्य उपायोंसे धनोपार्जन करना, वे हेय समझते थे। प्रजासे अधिक कर लेना, उसे दुःख देना समझते थे। उनके व्यवहारसे प्रजा सन्तुष्ट और सुखी रहती थी। देशमें विद्या, व्यवसाय और लक्ष्मीकी वृद्धि हुई थी। उनके राज्यमें किसीको किसी प्रकारका कष्ट न था और सब लोग उठते बैठते उनकी शुभ-कामना किया करते थे।

अम्बरीष भी निरन्तर प्रजाके हित चिन्तनमें लीन रहते थे। वे कहते थ, कि ईश्वरने प्रजाके सुख देनेके लियेही राजकुलमें मेरा जन्म दिया है। मैं केवल कर्त्तव्य-पालन करता हूं। मुझे सर्व प्रथम प्रजाका हित चिन्तन करना चाहिये। ऐसा न करना ईश्वरका अपमान और उनकी आज्ञाका लोप करना है।

इस प्रकारकी बातें अम्बरीष प्रसंगवश कहा करते और तदनुसार आचरण भी करते थे। वास्तवमें राजा ऐसाही होना चाहिये। संसारका सुख दुःख और शान्ति राजाही पर निर्भर है।

अम्बरीष प्रजापालनमें जिस प्रकार त्रुटियां न होने देते थे, उसी प्रकार आवागमनसे मुक्त होनेके लिये ईश्वर भक्तिमें भी लीन रहते थे। विस्तृत राज्य, अक्षय धन और अतुल ऐश्वर्य्यको वे नाशवान एवम् स्वप्नवत् मानते थे। ऐश्वर्य्यके मोहमें पड़कर मनुष्य कर्त्तव्य भ्रष्ट हो जाता है, यह जानकर वे उससे विरक्त रहते थे। जिस प्रकार जलमें रह कर भी कमल

उसमें लीन नहीं होता, उसी प्रकार अम्वरीष ऐश्वर्य्य और सांसारिक सुखोंसे दूर रहते थे।

अम्बरीषने वशिष्ठ, असित और गौतमादि ऋषियोंकी प्रधानतामें सरस्वतीके तटपर अनेक यज्ञ किये थे। उन्होंने अपना अधिकांश धन दान और दक्षिणामें व्यय कर दिया था। "यथा राजा तथा प्रजा" इस नियमानुसार उनकी प्रजा भी सुख भोग और ईश्वर भजनमें लीन रहती थी। अम्बरीषकी निष्कपट भक्तिसे प्रसन्न हो विष्णु भगवानने उन्हें अपना सुदर्शन चक्र दिया था। उसके भयसे उनके शत्रु संत्रस्त रहते थे।

एक वार अम्वरीष और उनकी रानीने अभया वैतरणीका व्रत किया। दोनोंने नियमानुसार एक वर्ष उसका पालन किया। वर्षान्तमें द्वादशीके दिन पारण करना स्थिर हुआ। उसीदिन उनकी परीक्षा लेनेके लिये शिष्य मण्डली सहित दुर्वासा मुनि आ पहुंचे। अम्वरीषने उनकी अभ्यर्थना की। अतः मुनिने उनका अतिथ्य ग्रहण करना स्वीकार किया। उस दिन द्वादशी केवल एकही घड़ी थी आतेही दुर्वासा मुनि नदीमें स्नान करने चले गये। द्वादशी वीत चली, परन्तु वे न लौटे। अम्वरीष बड़ी द्विविधामें पड़ गये। उन्हें नियमानुसार द्वादशीमें ही पारण करना चाहिये था। ऐसा न करनेसे व्रत भङ्ग होता था और दोष लगता था। दूसरी ओर अतिथिको विना खिलाये खाना भी न्याय सङ्गत न था। अम्वरीष बड़े सङ्कटमें पड़ गये। अन्तमें ब्राह्मणोंने बतलाया, कि विष्णुका चरणामृत ग्रहण क-

रिये। ऐसा करनेसे पारण-विधि पूर्ण हो जायगी और भोजन करनेका दोष भी भी न लगेगा।

अम्बरीषने ऐसाही किया। जब दुर्वासा मुनि लौट कर आये तब उन्होंने उनका सत्कार किया, परन्तु वे क्रुद्ध होकर कहने लगे,—"अतिथिको भोजन करानेके पूर्वही तूने पारण कर लिया? तू अपराधी है। तूने मेरा अपमान किया। तुझे इस अपराधका दण्ड मिलना चाहिये।"

यह कह कर दुर्वासाने मृत्युको बुलाया। मृत्यु अम्बरीष की ओर अग्रसर हुई, परन्तु विष्णुदत्त सुदर्शनने उनकी रक्षा की। अम्बरीष ऋषिके चरणोंपर गिर पड़े और क्षमा प्रार्थना करने लगे। दुर्वासा मुनि उनकी नम्रता और भक्ति भाव देख कर प्रसन्न हो उठे। अम्बरीषने उन्हें प्रेम पूर्वक भोजन कराया। ऋषिने चलते समय कहा—राजन् स्वर्गको देवियां तुम्हारा गुण गान करेंगी और मृत्युलोकमें मनुष्य तुम्हारा यश कीर्तन करेंगे वास्तवमें ऐसाही है। भक्तराज अम्बरीषका अद्यपि संसारमें यश कीतन हो रहा है।

अम्बरीषके विरूप, केतुमान और शंभु—यह तीन पुत्र थे। वे भी अपने पिताके समान पराक्रमी और नीतिज्ञ थे। अम्बरीषने दीर्घकाल पर्य्यन्त राज्य किया। अन्तमें पुत्रको शासन भार दे कर स्त्री सहित वनको चले गये और वहीं तप करते हुए पर म पदको प्राप्त हुए।

प्रियदर्शी अशोक.

अशोक मौर्यवंशी राजा चन्द्रगुप्तके पौत्र और बिन्दुसारके पुत्र थे। वे मगध साम्राज्यके अधीश्वर थे। पाटलीपुत्र (वर्तमान पटना) उनकी राजधानी थी। अपने पिताके राजत्वकालमें अशोक उज्जैनके शासकका काम करते थे। उनका बड़ा भाई तक्षशिलामें शासन करता था। बिन्दुसारकी मृत्यु होने पर राज्यके लिये दोनों भाइयोंमें घमासान युद्ध हुआ। युद्धमें अशोक विजयी हुए। उनका भाई मारा गया। वे प्रियदर्शी नाम धारण कर मगधके सिंहासन पर आरूढ़ हो, शासन करने लगे। कुछही दिनोंमें कलिङ्ग वासियोंसे युद्ध छिड़ गया। युद्ध कई वर्ष तक होता रहा। अन्तमें उन्हें पराजितकर अशोकने वह देश अपने राज्यमें मिला लिया। उत्तरमें हिमालय, दक्षिणमें, कृष्णानदी पश्चिममें बलख और पूर्वमें बङ्गालकी खाड़ी तक अशोकका राज्य फैला हुआ था।

राजा अशोक पराक्रमी, शूरवीर, दयालु, धर्मनिष्ठ, उत्साही विद्वान, उदार और प्रजाप्रिय थे। पहले वे वेद मतानुयायी थे। ब्राह्मणोंको भोजन कराते थे और उन्हें दान दक्षिणा देते थे। वेद और पुराणोंको मानते थे। बादको वह बौद्ध धर्मके

सिद्धान्तोंमें विश्वास करने लगे और अन्तमें उसीके अनुयायी बन गये।

अशोक अपने राज्यविस्तार और सुशासनके लिये जितने विख्यात हैं, उससे कहीं अधिक बौद्ध धर्मकी उन्नति और प्रचार करनेके लिये विख्यात हैं। उन्होंने उसे राज्य-धर्म निश्चित कर सर्वत्र उसका प्रचार कराया। वे चौंसठ हजार यतियोंका पालन करते थे। उनके रहनेके लिये उन्होंने बहुतसे विहार बनवाये। विहारोंकी अधिकताके कारण उसी समयसे वह प्रदेश "बिहार" कहलाने लगा। (बौद्ध साधुओंको श्रमण और उनके निवासस्थानको विहार कहते हैं)

अशोकने बौद्धधर्मका प्रचार तलवारके जोरसे नहीं, किन्तु उपदेश द्वारा, लोगोंका विश्वास बदल बदलकर कराया। बौद्धधर्मका निश्चित स्वरूप निर्धारित करनेके लिये उन्होंने एक हजार महापुरुषोंकी महापरिषद् सङ्गठित की। उसमें धर्म्म सिद्धान्त निश्चित हुए और धार्म्मिक ग्रन्थोंका संशोधन हुआ। उन्होंने दूर दूर धर्मप्रचारकोंको भेजा और धर्म्म-प्रचार कराया। स्वयं उनकी कन्या और पुत्रने लङ्कामें जाकर प्रचार किया और वहांके शासकको बुद्ध मतावलम्बी बनाया। काश्मीर, चीन और भारतके प्रत्येक भागमें बौद्ध साधु भ्रमण और धर्म्म प्रचार किया करते थे।

अशोकने अपने साम्राज्यमें ऐसे शासन पत्र प्रकाशित किये, जिनमें बौद्धमतके उच्च सिद्धान्तोंका उल्लेख था। उन्होंने वे

लेख मागधी किंवा पाली भाषामें स्तूप, चट्टान और कन्दराओं में खुदवा दिये। ऐसे ४० शिलालेख अबतक पाये जाते हैं, जो भारतके भिन्न भिन्न भागोंमें खुदे हैं।

धर्मकी पवित्रतापर दृष्टि रखने और उसका प्रचार करने के लिये अशोकने एक राजकीय विभाग स्थापित किया था। लोगोंके आचार व्यवहार और गार्हस्थ्य जीवन पर दृष्टि रखने और स्त्रियों तथा युवकोंमें सुशिक्षा फैलानेके लिये भी उन्होंने कर्म्मचारी नियत किये थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने सड़कें बनवायीं, उन पर वृक्ष लगवाये, कुएं और तालाब खुदवाये, धर्म्म शालायें निर्म्मित कीं, ताकि थके हुए पथिकोंको आराम मिले। पशुओंके लिये पशुशाला, निराश्रितोंके लिये अनाथालय, श्रमणोंके लिये विहार और रोगियोंके लिये चिकित्सालय स्थापित किये।

अशोक समस्त मानव जातिको बौद्ध धर्म्ममें दीक्षित कराना चाहते थे, परन्तु तदर्थ उन्होंने तलवार किंवा क्रूरताका प्रयोग न किया, प्रत्युत उपदेशसे काम लिया। यही कारण है कि उसका सबसे अधिक प्रचार हुआ। एवम् आज दिन भी वह संसारके प्रधान धर्म्मोंमें गिना जाता है और उसको सबसे अधिक अनुयायी रखनेका सौभाग्य प्राप्त है।

अशोकने सिद्धान्तोंकी पवित्रताको अक्षय रखनेके लिये बौद्ध धर्म्मग्रन्थोंका मागधी भाषामें एक प्रामाणिक अनुवाद भी कराया था। उनकी कन्या और पुत्रने उसीके आधार पर

लङ्कामें धर्मप्रचार किया था और वहांसे वह सुमात्रा, जावा और ब्रह्मदेश पहुंचा था।

बौद्धोंमें दो बड़े सम्प्रदाय पाये जाते हैं। अशोकके बाद कनिष्कने एक महापरिषद् सङ्गठित की थी। उसने फिरसे धार्म्मिक ग्रन्थोंका संशोधन कराया था। उत्तर एशिया वाले उसका और दक्षिण एशिया वाले बौद्ध अशोकका संस्करण प्रामाणिक मानते हैं। उत्तरवालोंका सम्प्रदाय उत्तर किंवा महायन और दक्षिणवालोंका दक्षिण किंवा हीनायन नामसे विख्यात है। ई० स० ११२ में उत्तर पंथ चीनका राजधर्म्म हो गया था। तबसे चीन, तिब्बत, जपान और तातार प्रभृति देशोंमें उसका प्रचार हुआ और आज भी वहां वही धर्म्म माना जाता है।

अशोकके शिला लेखोंमें ग्रीस प्रभृति देशोंके राजाओंका नामोल्लेख है। उनका प्रभाव इतना बढ़ा हुआ था, कि दूर दूर देशके राजाओंने उनके प्रचारकोंको अपने राज्योंमें प्रचारकी आज्ञा दे दी थी। शिला लेखोंमें जिनका नामोल्लेख है, उन्होंने उनके प्रचारकोंका स्वागत किया था और उन्हें अपने राज्योंमें प्रचारकी आज्ञा दे दी थी।

अशोकने अनेक छोटे छोटे राज्य अपने राज्यमें मिला लिये थे। पाण्डव वंशके अन्तिम राजा क्षेमकको-जिसे लक्ष्मीदेव भी कहते थे—उनके वीरसेन नामक मन्त्रीने मार कर दिल्लीका सिंहासन हस्तगत कर लिया था। आगे चलकर मेवाड़, मार

वाड़ और भाटिया इत्यादि राज्यों पर भी अपना प्रभुत्व स्थापित किया।

अशोकने पहाड़ोंमें गुफायें बनवाई थीं। जैन ग्रन्थोंको देखनेसे पता चलता है, कि अशोक प्रबल सेना लेकर दक्षिण की ओर गये थे। नर्म्मदाके उस पार बेहोल नामक स्थानमें वह ठहरे थे और एक पहाड़ीपर देवगढ़ नामक किला बनवाया था। इसके बाद अनेक स्थानोंमें किले और कन्दरायें तय्यार करायीं। अन्तमें महाराष्ट्र पर आक्रमण किया। यहां सुदर्शन नामक शक्तिशाली राजा राज्य करता था। उससे वासा नामक स्थानमें युद्ध हुआ। युद्धमें सुदर्शन मारा गया और अशोक विजयी हुए। उन्होंने नगरको राजधानी बनाकर वीरबाहु नामक बौद्धको वहांका शासक नियत किया।

अशोकने अपने सरदारोंकी अधिनायकतामें सैन्य भेज कर बिहार, बंगाल, पाण्ड्य, केरल, तारल प्रभृति देशों पर अधिकार जमा लिया था। विजित प्रदेशोंपर उन्होंने बौद्ध शासक नियत किये थे। राज्य विस्तार, धर्म्म प्रचार और गुफायें बनवानेके लिये ही वे दक्षिण गये थे। जब तक यह काम पूरे न हुए, तब तक वे देवगढ़में रहते रहे और वहींसे अपने राज्यका प्रबन्ध करते रहे। बारह वर्षमें यह काम समाप्त हुए इसके बाद वे पाटलीपुत्र लौट आये।

देवगढ़के पास नदीकी एक चट्टानमें अशोकको अपरिमित धन प्राप्त हुआ था। सम्भवतः वह किसी नन्दवंशी राजाका गुप्त

भण्डार था। अशोकने यह धन किले और गुफायें बनवाने तथा धर्म्म प्रचार करनेमें व्यय किया था।

अशोकने अपनी चौदह आज्ञायें पेशावरसे पास कपर्दी गिरिमें, कटकके पास धवलीमें, गिरनारकी उपत्यकामें, दिल्ली, प्रयाग, बकारा, रधिया और तिरहुत प्रभृति स्थानोंमें कन्दरा, स्तूप और बड़ी बड़ी चट्टानोंपर खुदवाई थीं। वे सब एकही साथ अङ्कित नहीं हुई। ज्यों ज्यों बौद्ध धर्म्म पर अशोककी श्रद्धा बढ़ती गयी, ज्यों ज्यों धर्म्म सिद्धान्त स्पष्ट होते गये, त्यों त्यों उनमें परिवर्तन होता गया। बारहवीं आज्ञा केवल गिरनार हीमें पाईजाती है। अशोकने इन लेखोंमें अपना प्रियदर्शी नाम अङ्कित कराया है। पाठकोंके हितार्थ उनका भावार्थ नीचे दिया जाता है।

(१) प्रियदर्शी राजाकी आज्ञा है, कि पशु वध बन्द कर दिया जाय। हिंसा महा दुष्कर्म्म है। अतः पूजा किंवा समाजके लिये भी पशु बध न हो। पाकशाला और यज्ञशालाओंमें— आहार और पुण्य प्राप्तिके लिये लक्षावधि प्राणियोंका संहार हुआ है। यद्यपि पुण्यके लिये पशु बध होना चाहिये या नहीं, इसका अभी ठीक निर्णय नहीं हुआ, तथापि मेरा आज्ञा है, कि अब जीवहिंसा न हो।

(२) राजा प्रियदर्शीके विजित अर्थात् चौल, पाण्ड्य, केरल ताम्रपर्णी (लङ्का) इत्यादि देश और पृथ्वीमें राजा एन्टियोकस इत्यादि जो मित्र हैं उन्हें विदित हो कि प्रियदर्शीको

दो बातें प्रिय है—सड़कों पर वृक्ष लगवाने और कूप खुदवाने।

(३) चाहे मेरीप्रजा हो चाहे अन्यकी, जो लोग धर्मका पालन करते हों उन्हें पांच वर्षके बाद प्रायश्चित करना चाहिये। प्रायश्चितके समय माता, भाई, बन्धु, पुत्र, कलत्र, ब्राह्मण और श्रमण सबोंको अपने अपने कर्त्तव्यसे मुक्त होना चाहिये। उदारता अच्छी वस्तु है। अहिंसा सुन्दर है। अपवित्रता और पिशुनता बुरी है।

(४) सैकड़ों वर्षसे जीव-हिंसा हो रही है। लोग ब्राह्मण और श्रमणोंकी बात नहीं सुनते। अब राजा डङ्केकी चोट पर कह रहा है, कि जीवहिंसा बन्द हो।

(५) धर्म्म पालन कठिन कार्य्य है। मैंने धर्माध्यक्ष नियत किये है। वे सब साधारण और पाखण्डियोंमें, धर्म्म प्रचार करेंगे।

(६) आज तक ऐसा न हो सका, परन्तु अब मैं चाहता हूं कि मैं चाहे अतः पुरमें होऊं या अन्यत्र, प्रत्येक समय प्रजाकी फरियाद सुन सकूं। तदर्थ मैंने कर्म्मचारी नियत किये हैं। वे प्रजाकी बात मुझ तक पहुंचायेंगे और मेरी आज्ञानुसार प्रबन्ध करेंगे।

(७) चाहे जिस धर्मका साधु हो और चाहे जहां रहता हो, उससे कोई छेड़ न करे, क्योंकि सबका एक मात्र उद्देश्य ईश्वरको प्रसन्न करना है।

(८) पहलेके राजा द्यूत और शिकार खेलनेमें व्यस्त रहते थे, परन्तु मैं ब्राह्मण, श्रमण, साधुसन्त और महन्तोंसे मिलने और पुण्य कर्म्म करनेमें व्यस्त रहता हूं।

(९) पुत्रोत्पत्ति, विवाह, शिष्टाचार तथा अन्यान्य प्रसङ्गों पर लोग खुशी मनाते और दावतें करते हैं, परन्तु यह सब व्यर्थ हैं। कल्याण तो केवल धर्म्म मङ्गलसे होता है। स्वामीकी सेवा, गुरुकी भक्ति, ब्राह्मण श्रमणको दान और ऐसेही अन्यान्य कर्म्म धर्म्म मङ्गल कहे जाते हैं।

(१०) नाम और देहका स्वरूप मिथ्या है। धर्म्म पर प्रेम रखना यही सच्चा स्वरूप है।

(११) प्रियदर्शी राजाका कथन है, कि धर्म्मदानसे बढ़कर कोई दान नहीं है। सेवक और आश्रितोंका प्रतिपालन, माता पिताकी सेवा, मित्र और कुटुम्बियोंका हित और ब्राह्मण तथा श्रमणोंको सहायता देना यही धर्म्मदान है। जीवोंकी रक्षा करना यह भी स्तुतिपात्र है।

(१२) प्रियदर्शी सब धर्म्मोंका आदर करते हैं। सबको अन्य अन्य धर्म्मोंका निरादर न कर अपने धर्म्मपर प्रीति रखनी चाहिये।

(१३) प्रियदर्शीकी, प्राणियोंको कष्ट न देने और उन्हें तुष्ट करनेकी आज्ञा, जहां पहुंचती है वहीं विजय प्राप्त करती है। मिश्र, यूनान और अन्यान्य देशोंके टालोमी, पन्टीगोन, मगस और अलक्षेन्द्र इत्यादि राजा भी उसे मानते हैं। यह बड़े आन

न्दकी बात है। सद्‌गुणकी विजय होती है और उसीसे सच्चा सुख मिलता है। इह लोक और परलोकके लिये ऐसेही सुखकी कामना की जाती है। इस सुखका प्रलयकाल तक नाश नहीं होता।

(१४) देवताओंके प्रिय राजा प्रियदर्शी, यह आज्ञायें अङ्कित कराते हैं।

इस प्रकार परम प्रतापी अशोकने धर्म्म प्रचार और प्रजा-शासन कर अन्तमें इस नश्वर शरीरका त्याग किया। उनके बाद मगधके सिंहासन पर उनका सुयशा नामक पुत्र अधिरूढ़ हुआ। उनके वंशजोंने कुछ काल पर्य्यन्त वहां शासन किया, परन्तु अशोकके बाद वह साम्राज्य उत्तरोत्तर क्षीण होता चला गया। अशोकके शासन कालमें प्रजाको वह सुख और वह शान्ति मिली जो महाभारतके बाद आज तक और कभी नहीं देखी गयी। अशोक "महान्" कहे जाते है, परन्तु अन्य महान कह-लाने वाले अधीश्वरोंमें शायदही कोई और उनके समान महत्व-का अधिकारी हुआ हो। धन्य है, प्रजाप्रिय प्रियदर्शी महान् राजा अशोकको।

भर्तृहरि

विख्यात मालवपति राजा भर्तृहरि ई० स० पू० ५० के करीब उज्जैनमें राज्य करते थे। उनके पिताका नाम था गन्धर्वसेन। परदुःख भञ्जन राजा वीर विक्रमादित्य उनके छोटे भाई थे। उनके गुरूका नाम था चन्द्राचार्य चतुराया। उन्होंने उनके निकट व्याकरणादि शास्त्रोंका अध्ययन किया था और उनमें निपुणता प्राप्त की थी। वे संस्कृत भाषाके कवि और विद्वान भी थे।

भर्तृहरि तीन हरिके गुणोंसे युक्त थे। वीरतामें हरि-श्रीकृष्णके समान, सम्पत्तिमें हरि—इन्द्रके समान, और सौन्दर्य्यमें हरि—सुर्य्यके समान। इसके अतिरिक्त वे व्यवहारिक कार्य्योंके अनुभवी, सङ्गीत शास्त्रमें कुशल, मिथ्याभिमानसे रहित, सत्यासत्यके परक्षीक, सूक्ष्म भेदके ज्ञाता, बुद्धिमान, विवेकी और न्याय नीतिज्ञ थे। उन्होंने शत्रुओंका विनाश कर देशमें सद् गुण और धर्म्मकी वृद्धि की थी। दया, क्षमा, शान्ति, सन्तोष और विनय इन गुणोंसे युक्त थे।

भर्तृहरिके आठ मन्त्री थे। वे सभी विद्वान थे। सेनापति भी शूरवीर और विद्वान था। राजसभा विद्वानोंसे परि-

पूर्ण थी। राज्य-शासन न्यायनीति पूर्वक होता था। किसी पर अत्याचार न होता था। प्रजा सन्तुष्ट रहती थी। उपदेश देनेके लिये धर्म्माचार्य्य नियत थे। सर्वत्र पाठशाला और चिकित्सालयोंका प्रबन्ध था। किसीको किसी प्रकारका कष्ट न था। लोग भर्तृहरिके राज्यको रामराज्य कहते थे।

संसारमें कोई सर्वगुण सम्पन्न नहीं होता। भर्तृहरिमें अनेक गुण होनेपर भी एक महान दुर्गुण था। वे स्त्रियोंके मोह जालमें इस प्रकार उलझे रहते थे, कि राजकाजके लिये भी उन्हें अवकाश न मिलता था। कोई कहते हैं, तीन और कोई कहते हैं, कि उनके तीन सौ रानियां थी। पिङ्गला उन सबोंमे श्रेष्ठ थी। उसका रूप लावण्य अद्भुत था। भर्तृहरि अहर्निश उसीके प्रेममें व्यस्त रहते थे। उनका अधिकांश समय अन्तःपुरमें ही व्यतीत होता था। वे उसके सौन्दर्य्यजालमें इस प्रकार जकड़ गये थे, कि उनकी सारासार विचार शक्ति नष्ट हो गयी थी। पिङ्गलाने उन्हें अपने प्रेमजालमें उलझा लिया था और वे उसे अनन्यभावसे चाहते थे। परन्तु वह एक दुराचारिणी दासीके दुःसङ्गसे एक अश्वपालसे प्रेम करने लगी थी। कामान्ध भर्तृहरिको इसका कुछ भी पता न था।

महापुरुषोंका कथन है, कि जो मुखपर भूल बतलाता है, वही सच्चा मित्र है। भर्तृहरिके ऐसे मित्र अनेक थे। बार बार उनके शुभचिन्तकोंने उन्हें सूचना दी, परन्तु भर्तृहरिने उनकी बातपर ध्यान न दिया। मन्त्रियोंके समझाने पर भी उनकी

वही दशा रही। न उन्होंने राजकाजही पर विशेष ध्यान दिया न अन्तःपुरका रहनाही कम किया।

विक्रमादित्य भर्तृहरिके छोटे भाई थे। वे विद्वान, नीतिमान, शूरवीर, और धर्म्मिष्ट थे। प्रजा उन्हें आदरकी दृष्टिसे देखती थी। भर्तृहरिको वे सलाह और शासन कार्य्योंमें सहायता दिया करते थे। भर्तृहरि भी उनसे बड़ा प्रेम करते थे। उनके भले और भोले स्वभावको वे अच्छी तरह जानते थे। विक्रमादित्य, भर्तृहरिको पिता और उनकी स्त्रियोंको माता समान समझते थे। यही कारण था कि वे उनके अन्तःपुरमें बिना किसी आपत्तिके बराबर जा आ सकते थे। कितनेही राजकीय विभागोंपर उनका आधिपत्य था। अश्वविभागके भी वही निरीक्षक थे वे अपने चातुर्य्य-बलसे चोर प्रमाणिक व्यभिचारी और दुराचारी कर्म्मचारियोंका पता लगा कर उन्हें दण्ड दिया करते थे। पिङ्गला जिस अश्वपालको प्रेम करती थी वह अश्वशालमें नौकर था। विक्रमने कईबार ठीकसे काम न करनेके लिये उसे डांट डपट दिखायी थी। उन्हें उसके आचरणपर भी सन्देह हो गया था, परन्तु कोई प्रमाण न मिलनेके कारण अद्यपि कुछ न कहा था।

एक दिन भर्तृहरिने विक्रमादित्यको बुलाकर कहा—"विक्रम मैं तुम्हारी धर्म्मवृत्ति और कर्त्तव्यपरायणता देखकर अत्यन्त प्रसन्न हूं। तुम शासन करने योग्य हो। प्रजाके हित-चिन्तन में ही तुम सदा लीन रहते हो। मेरी इच्छा है, कि तुम विशे

प रूपसे राजकाजमें भाग लो। मुझे विश्वास है, कि तुम सब काम योग्यताके साथ करोगे।

यह कहकर भर्तृहरिने विक्रमको कितनेही अधिकार प्रदान किये। विक्रमादित्य उनके आदेशानुसार शासनकर अपनी योग्यताका परिचय देने लगे। दुराचारी अश्वपालको यह देखकर बड़ी चिन्ता हुई। वह अपने दुराचारके कारण उनसे भीत रहा करता था। विक्रमको देखतेही उसे प्रतीत होता था मानो अभी यह कुछ कहना चाहते हैं।

इस भयको निर्मूल करनेके लिये उसने पिङ्गलाकी शरण ली। पिङ्गलाने अपने प्रेमीकी बात मानली। उसने विक्रमपर दोषारोपणकर उन्हें निकलवा देना स्थिर किया। भर्तृहरिको उसने एक दिन समझाया, कि विक्रमादित्यने मुझपर अत्याचार किया है।

पिङ्गलाकी बात सुन कर भर्तृहरिको बड़ा आश्चर्य हुआ। विक्रमपर उन्हें पूर्ण विश्वास था। वह जानते थे, कि वह ऐसा काम नहीं कर सकता, तथापि पिङ्गला पर मुग्ध होनेके कारण उनकी विचार शक्ति नष्ट हो गयी और उन्होंने उसकी बात सच मान ली। उन्होंने विक्रमको बुलाकर कटु वचन कहे और उनका तिरस्कार किया। भाईकी बातें सुन, विक्रम दङ्ग रह गये। उन्होंने कहा,—"आप यह कैसी बात कहते हैं? मैंने स्वप्नमें भी बुरा विचार नहीं किया। मैंने भूलकर भी नीति विरुद्ध आचरण नहीं किया। मुझे आपकी बात सुनकर बड़ा

आश्चर्य्य होता है। मेरी नीतिरीतिसे आप जानते हैं। आपका सन्देह निर्मूल है। मैं ऐसा पाप कदापि नहीं कर सकता। शिव! शिव!! अन्तःपुरमें मेरा अनीति-आचरण! आप क्या कहते हैं?"

"अभी समुद्रने मर्य्यादा नहीं तजी। अभी सूर्य्य पश्चिममें नहीं उदय होते। अभी सिंह घास नहीं खाता। अभी हंस कागकी चाल नहीं चलता। अभी काष्ठ जलमें नहीं डूबता। अभी सन्तोंने दया और चन्द्रने शीतलता नहीं तजी। अभी प्रलय नहीं हुआ। मै माता समान पिङ्गला पर अत्याचार कैसे कर सकता हूं? आपके हृदयमें यह सन्देह क्यों उत्पन्न हुआ? मैं तो सदा आपकी सेवा करता रहा हूं। आपको पिता और पिङ्गलाको माताके समान समझता रहा हूं। श्रुति स्मृति और नीतिके अनुसार आपके प्रति जो मेरा कर्तव्य है, वह निरन्तर मैं पालन करता रहा हूं। उसके विपरीत आचरण मैंने स्वप्नमें भी नहीं किया। आपके शब्दोंने वज्र प्रहारका काम किया है। मेरा हृदय टूक टूक हो रहा है। मैं आपके पुत्र समान हूं। मुझपर ऐसा सन्देह न करिये।"

भर्तृहरिने पूछा—"कल तू अन्तःपुरमें गया था कि नहीं?"

विक्रमने कहा,—"नहीं, कल मैं गया ही नहीं। आपसे राज सभामें भेट हो चुकी थी, अतः वहां जानेकी आवश्यकता ही नहीं पड़ी। साथही कल शिवरात्रि थी अतः मैं शिवपूजन करता रहा, मुझे समय भी न था, जो मैं वहां जाता।"

भर्तृहरिने कहा,—"यदि यही बात है तो तू महाकालेश्वरका महोत्सव देखने क्यों न गया था ?"

विक्रमने कहा,—"मैं एकान्तमें शिवपूजन करता हूं, यह तो आप जानतेही हैं। मुझे अवकाश न मिला। अवकाश मिलता तो मैं अवश्य वहां जाता।"

दोनों भाइयोंमें इसी प्रकारकी बातें हुईं, परन्तु भर्तृहरिका सन्देह दूर न हुआ। पिङ्गलाकी बात उनके हृदयमें बैठ गयी थी। उन्हें विक्रमकी बातें असत्य प्रतीत हुईं विक्रमको उन्होंने उज्जैनसे निकल जानेकी आज्ञा दी।

विक्रमने दुःखित हो कहा,—"रामचन्द्र पर जैसी भरत और लक्ष्मणकी भक्ति थी, युधिष्ठिर पर जैसी अर्जुन और भीमकी भक्ति थी, वैसीही आप पर मेरी भक्ति है। आप विचार शून्य हो, मुझ पर दोषारोपण करते हैं यह देखकर मुझे बड़ा दुःख होता है। दण्ड तो मुझे आप ऐसे भी दे सकते हैं। मैं आपका दासानुदास हूं और आप मेरे माता, पिता, स्वामी, भ्राता, सभी, कुछ हैं। अन्तःपुरमें मैं आज तीन रोजसे नहीं गया। पिङ्गलाकी दासीको मैंने देखा तक नहीं। यह सब प्रपञ्च जाल है। मुझे मिथ्या कलङ्क लग रहा है, अतः परिताप हो रहा है। आप समान विचारवानकी बुद्धि पलटते देखकर मुझे कुशङ्का हो रही है। कहीं मालव देशका अकल्याण न हो। आप पर कोई आपत्ति न आ पड़े। विपत्ति आनेके पूर्व मनुष्यकी बुद्धि इसी प्रकार पलट जाया करती है।

भर्तृहरिने क्रुद्ध हो कर कहा—"बस विक्रम, अधिक न बोल! तेरे असत्य भाषणसे मेरे श्रवण अपवित्र हो रहे हैं। मैं तेरी एक भी बात नहीं सुनना चाहता। तू इसी समय मालव भूमिसे निकल जा!"

विक्रमने कहा—"अवश्य मै मालव भूमिका त्याग करूंगा। अब मैं यहां एक घड़ी भी नहीं ठहर सकता। जिसके अन्तः करणमें कुविचार तक नहीं उत्पन्न हुआ, जो भाईको पिता और उसकी स्त्रीको माता समझ कर पुत्रवत् आचरण करता रहा, जो अपनेको आदित्यवत् शुद्ध समझता है, जो अखण्ड ब्रह्मचर्य्य पालन करता है, उस पर नीच प्रपञ्ची और शास्त्र निन्दित स्त्रीकी बात सुन, दोषारोपण करना घोर अन्याय है। कुछ भी हो, मुझे आपकी आज्ञा शिरोधार्य्य है। मैं मालवभूमिका त्याग करनेके लिये तय्यार हूं। दैव योगसे यदि कभी सत्य सत्य मालूम हुआ तो आपको बड़ा पश्चाताप होगा। और कुछ नहीं कहना चाहता। ईश्वर आपका कल्याण करे!"

इतना कह कर विक्रमादित्य नगरसे निकल पड़े। जनता हाहाकार करने लगी। सेनापति, मन्त्री मण्डल और उच्च पदाधिकारियोंको बड़ा खेद हुआ। सब लोग शोक सागरमें निमग्न हो गये। जो यह बात सुनता वही व्याकुल हो उठता। चारोंओर पिङ्गला और मतिभ्रष्ट भर्तृहरिकी निन्दा होने लगी।

विक्रमादित्यके न रहनेके कारण राज्यमें अव्यवस्था दिखाई देने लगी। भर्तृहरिका अब भी वही हाल था। मन्त्रियोंने उन्हें

बारम्बार समझाया, परन्तु कोई फल न हुआ। राजकाजकी ओर उनका ध्यानही न था। प्रजाको उनके दर्शनही न होते थे। जिस दिन वे राजा सभामें उपस्थित होते, वह दिन बड़े सौभाग्यका समझा जाता था।

एक दिन भर्तृहरि न्यायासन पर बैठे हुए थे। इधर उधरकी बातें हो रही थीं। इतनेमें कलावन्ती नामक वेश्याने एक अमर फल लाकर उन्हें भेंट दिया। वह फल देखकर भर्तृहरिको बड़ा आश्चर्य हुआ। एक बार पहले भी वह उनके पास आ चुका था। उन्होंने वह पिङ्गलाको दे दिया था।

वह फल शान्तिराम नामक ब्राह्मणको किसी ऋषिने दिया था। ब्राह्मण दरिद्री था। उसने विचार किया, कि यह फल मैं खाऊँगा तो अमर होकर मुझे अन्त तक भिक्षा मांगनी पड़ेगी। इसे भर्तृहरि समान राजाको देना चाहिये, जिससे वह अमर हो प्रजाको सदा सुख देते रहें।

शान्तिरामने यह विचार कर वह फल भर्तृहरिको भेंट दिया था। भर्तृहरिने विचार किया, कि यह पिङ्गलाको देना चाहिये। पिङ्गला खाकर अजर अमर रहेगी तो सदा सुख देगी। पिङ्गलाने उसे ऐसाही विचार कर अश्वपालको दिया। अश्वपालने कलावन्तीको दिया और कलावन्तीने फिर उसे भर्तृहरिको दिया।

उसने सोचा, कि यह फल खानेसे मुझे अमर हो सदा वेश्यावृत्ति करनी पड़ेगी, अतः यह भर्तृहरिको देना चाहिये।

वास्तवमें भर्तृहरि ही वह फल खाने योग्य थे अतः लौट

लौट कर वह उन्हींके पास आया। उन्होंने जब वेश्यासे पूछा, तब उसने बतलाया, कि मुझे अश्वपालने दिया था। अश्वपालसे पूछने पर भीत हो उसने भी सच्चा हाल बतला दिया। भर्तृहरिने उसी समय पिङ्गला और उसके गुप्त प्रेमका भी पता लगा लिया। पिङ्गला की एक दासी द्वारा भी यह बात प्रमाणित हुई। भर्तृहरिके क्रोधका वारापार न रहा। उनके हृदयमें पिङ्गला और संसारके प्रति एक साथही घृणा उत्पन्न हो गयी।

पिङ्गलाको इन बातोंका अभी पता न था। भर्तृहरि भावको छिपा कर नियमानुसार उसके पास गये। बातही बातमें उन्होंने अमर फलकी बात नीकाली। पिङ्गलाने कहा—"उसे तो मैं उसी समय खा गयी थी।"

भर्तृहरिने जब सन्देह प्रकट किया, तब वह शपथ लेकर उन्हें विश्वास दिलाने लगी। भर्तृहरिको उसका यह चरित्र देखकर बड़ा क्रोध आया। उन्होंने अमरफल उसके सम्मुख रख दिया। अमरफल देखकर पिङ्गला झेंप गयी और दासीको दोष देने लगी। अन्तमें दासी और अस्वपालकी बातोंसे उसका अपराध प्रमाणित हो गया। पिङ्गला यह सब देखकर सूख गयी। उसके पापका घड़ा फूट गया। अपने बचनेका कोई उपाय न देखकर, प्रार्थना करने लगी।

भर्तृहरिने क्रुद्ध हो कहा,—"हे व्यभिचारिणी ! तुझे धिक्कार है! तू बड़ी दुष्टा निकली। मैंने तुझे अपना तन मन धन अर्पण कर दिया था। अपने प्राणसे अधिक समझ तुझे

यह अमर फल दिया था। तू पापिनी है, यह तेरे योग्य न था, मैंने बड़ी भूल की थी। परमात्माने मुझे सावधान करनेके लिये ही यह सब किया है। पिङ्गला! तूने किञ्चित भी विचार न किया? सब रानियोंका मुझपर समान अधिकार था। सब पर मुझे समान भाव रखना चाहिये था। मैंने सबोंका निरादर किया। किसीकी ओर आंख उठाकर भी न देखा। तुझी को सब कुछ समझा। तुझे ही अपना तन मन अर्पण किया। तुझे प्राणसे अधिक चाहता रहा, परन्तु तूने मुझे धोखा दिया, तूने मुझसे कपट किया। तूने मेरे प्रेमको कुछ न समझा और नीच अश्वपालको प्रेमी बनाया। इसमें दासीका कोई दोष नहीं। पतिव्रताको ब्रह्मा विष्णु और महेश भी विचलित नहीं कर सकते। सच्चे वज्रमय अन्तःकरणको विचलित करने की किसीमें सामर्थ्य नहीं है। तू स्वयं दुराचारिणी है। तेरा मुख देखना भी पाप है। तूने दोनों कुल कलङ्कित कर दिये। तेरे मोह-जालमें पड़कर मैंने बड़ा पातक किया है। अब मैं इस पापका प्रायश्चित करूंगा। तूने मुझे आज अमूल्य शिक्षा दी है। तेरा भी कौन दोष! सारा दोष मेरा है। मैंने पत्थर को हीरा और मुलम्मेको सोना समझा। बस अब मैं तेरा मुंह नहीं देखना चाहता। तूने मेरी मोह-निद्रा भङ्गकर दी। अब मैं सदाके लिये जाता हूं। महल तेरा और अश्वपालका है। बस, और कुछ नहीं कहता।"

यह कह कर भर्तृहरि पिङ्गलाके पाससे चले आये। उन-

के हृदयमें भयङ्कर अन्दोलन हो रहा था। किसी क्षण वे पिङ्गलाका और किसी क्षण अपना दोष निकाल रहे थे। तरह तरहके विचार उठते और लोप होजाते थे। उन्हें इस समय विक्रमादित्यका स्मरण हो आया। उन्हें विश्वास हो गया, कि वह निर्दोष था। रह रहकर वे पश्चाताप और खेद करने लगे। एक एक करके विक्रमकी सब बातें उन्हें याद आ गयीं। वे कहने लगे—"अहो! मैंने बड़ा बुरा किया। उस समय मेरी बुद्धिपर पत्थर पड़ गये थे। मैंने पिङ्गलाकी बात मान ली। मैंने अकारणही उसे निर्वासित किया। विचारे विक्रमको मालव भूमि त्याग करनी पड़ी। न जाने आज वह कहां और किस दशामें हो। हे विक्रम! आज तेरी बातें सत्य निकलीं। मैंने भयङ्कर भूल की। पिङ्गलाने मुझे वास्तवमें धोखा दिया। मैंने व्यर्थही निरपराध पर दोषारोपण किया। उस धर्म-मूर्ति बालकको निर्वासितकर मैंने घोर पाप किया है। हे विक्रमादित्य! आज तेरे कथनानुसार ही मुझे पश्चाताप हो रहा है। हे बन्धो! आज मैं शोक सागरमें डूब रहा हूं। मुझे तेरी बातें याद आ रहीं हैं। मैंने तुझे न कहने योग्य बातें कहीं। वास्तवमें तेरा हृदय टूक टूक हो गया होगा। मैंने बड़ा अनुचित कर्म्म किया। मेरी बुद्धि वास्तवमें भ्रष्ट हो गयी थी। हे विक्रम! तेरा कथन सर्वथा सत्य था। रामचन्द्र पर जैसी लक्ष्मणकी भक्ति थी, वैसी ही मुझ पर तेरी भक्ति थी। लक्ष्मणके मूर्च्छित होने पर रामको जैसा दुःख हुआ था, आज तेरे लिये भी मुझे वैसाही दुःख होरहा

है। रामचन्द्रने ठीकही कहा था, कि स्त्री और मित्र अनेक मिल सकते हैं, परन्तु सगा भाई नहीं मिल सकता। हे रघुवीर! आपके वचन सत्य है। मैंने स्त्रीके लिये अपने भाईको खो दिया।

इस प्रकार पश्चात्ताप कर भर्तृहरि कहने लगे—"हे मन! तू विषय-लोलुप था। तेरी तृष्णाका वारापार न था। तुझे आज यह उचित शिक्षा मिली है। चल, अब एकान्तमें महेश्वरका ध्यान कर! राज पाटका मिथ्या मोह छोड़ दे। अब विलम्ब करना व्यर्थ है। अभी कुछ नहीं बिगड़ा। पापका प्रायश्चित हो सकता है। अभी समय है। देर न कर, फिर क्या होगा?"

इसके बाद भर्तृहरिने वह अमरफल खा लिया और कौपीन धारण कर वन जानेकी तैयारीकी। उसी समय सेनापति और मन्त्रीगण आ पहुंचे। उन्होंने उन्हें वन न जानेके लिये बहुत समझाया, परन्तु कोई फल न हुआ। भर्तृहरिने कहा— "इस मायामय संसारमें कोई किसीका नहीं है। कोई वस्तु सच्ची नहीं दिखाई देती। सभी मिथ्या है। राज झूठा, राजका काज झूठा, स्त्री झूठी, स्त्रीका स्नेह झूठा। जितने रूप रङ्गवाले दृश्य पदार्थ हैं, वे सभी झूठे हैं। ऐसी कौन वस्तु निर्भय है, जिसका मैं आश्रय लूं! भोगमें रोगका भय, कुलमें पतित होनेका भय, द्रव्यको नाशका भय, बलमें शत्रुका भय, गुणमें खलका भय, रूपमें वृद्धत्वका भय, शरीरको मृत्युका भय इस प्रकार सब वस्तु भयान्वित है। भय

रहित है तो केवल वैराग्य। मैं उसीका आश्रय ग्रहण करूंगा अब मैं गङ्गाके तट पर बैठकर तप करूंगा, जिससे यह आवागमन-जन्म मरणका बन्धन छूट जाय। पिङ्गलाने आज मेरी मोह-निन्द्रा भङ्गकर दी है। मुझे आज कर्त्तव्य पथ सूझ पड़ा है। मैंने जो निश्चय किया है, वही करूंगा, बस अब और अधिक कहने सुननेका समय नहीं है।

न वैराग्यात्परं भाग्यं, न बोधाद् परःसखा।
न हरेर परस्त्राता, न संसारात्परो रिपुः॥

वैराग्यसे उत्कृष्ट सौभाग्य नहीं है, ज्ञानसे बढ़कर और मित्र नहीं है। महेश्वरके अतिरिक्त और कोई रक्षक नहीं है और संसारसे बढ़कर कोई शत्रु नहीं है।

यह कह कर भर्तृहरि जङ्गलकी ओर चल पड़े। चारों ओर हाहाका मच गया। प्रजा दर्शनार्थ उमड़ पड़ी। रानियां विलाप करने लगीं। पिङ्गला भी रोने पछताने और पछाड़े खाने लगी, परन्तु भर्तृहरिने किसीकी ओर ध्यान न दिया। लोग बड़ी दूर तक उनके साथ गये और अन्तमें समझाने बुझाने पर लौट आये, सर्वत्र उदासीकी काली घटा छा गयी। नगर शून्य और श्रीहीन मालूम होने लगा। लोगोंके मुख मण्डल पर विषादकी कालिमा प्रदर्शित होने लगी।

भर्तृहरिके मन्त्रीगण सुयोग्य और कार्य्यदक्ष थे। उन्होंने विक्रमादित्यकी खोज करायी और जब तक वे न मिले तब तक राज्यका प्रबन्ध करते रहे। विक्रमने आकर शासनकी बागडोर

अपने हाथमें ली। राज्यकी अवस्था उस समय अच्छी न थी। चारों ओर अव्यवस्था और विश्रृंखलता दिखाई दे रही थी। विक्रमके प्रबन्धसे शीघ्रही उसकी दशा सुधर गयी। पुनः उज्जै नगरी लक्ष्मी मूर्त्ति बन गयी।

भर्तृहरिने नगरसे निकल कर कर बीहड़ वनकी राह ली। अरण्यमें मच्छेन्द्रनाथ और गोरखनाथका आश्रम था। वे प्रसिद्ध हठयोगी सिद्ध थे। भर्तृहरि उनके पास गये, पहले गोरख-नाथने उनके वैराग्यकी परीक्षा ली। बादको मच्छेन्द्रनाथने एक शिष्यके साथ रानियोंके पास उन्हें भिक्षा मांगने भेजा। भर्तृहरिका वैराग्य अटल था। वे निर्विकार भावसे भिक्षा मांग लाये। गोरखनाथ और मच्छेन्द्रनाथको जब विश्वास हो गया, कि भर्तृहरिका वैराग्य क्षणिक नहीं है, तब उन्होंने उन्हें मान्त्रोपदेश दिया। राजेन्द्र भर्तृहरि योगाभ्यासमें प्रवृत्त हुए और ब्रह्मानन्दमें लीन रहने लगे।

उज्जैनके पास एक गुफ़ा है। वह भर्तृहरिकी गुफाके नामके विख्यात है। भर्तृहरि उसमें कुछ काल तक तप करते रहे थे। इसके अरिरिक्त वे कुछ दिन सौराष्ट्रमें भी रहते थे। सौराष्ट्र वर्तमान काटियावाड़के अन्तर्गत है। वहां प्रभासपाटनमें विख्यात सौमेश्वर किंवा सोमनाथ महादेवका मन्दिर है। वहां से सात आठ मिल पर गोरखमढ़ी नामक ग्राम है। उत्तरा-वस्थामें गोरखनाथका आश्रम वहीं था। भर्तृहरि भी उनके पास वहां योगाभ्यास करते रहे थे।

भर्तृहरि विद्वान, आस्तिक और ज्ञानी पुरुष थे। पिङ्गलाके दुर्व्यवहारने उनकी मोह-निद्रा भङ्ग कर दी। उन्होंने पिङ्गला के साथही राजपाट, ऐश्वर्य्य और संसारका भी त्याग कर दिया। वे ज्ञानी थे। अतः उन्हें आत्म-कल्याणका पथ ग्रहण करते देर न लगी, परन्तु सब लोग वैसा नहीं कर सकते। जो लोग विषय सुखकोही सर्वस्व समझते हैं, जिनमें सारासार विचार शक्ति नहीं है, जो यह नहीं जानते, कि आत्म-कल्याण किस प्रकार हो सकता है, वे आजन्म स्त्रियोंके मोह-जालमें उलझे रहते हैं और दुःखमय जीवन व्यतीत करते हैं।

संसारमें पति-पद-रता पतिव्रता साध्वी स्त्रीयां भी होती हैं, तथापि एकाएक बिना परीक्षाके उनका विश्वास न करना चाहिये। मनुष्यका चित्त चञ्चल होता है। यदि उसे धर्म्म और नीतिका सतत उपदेश मिला करता है, यदि उसका समय सत्सङ्गमें व्यतीत होता है, तब तो वह सदाचारी रहता है, अन्यथा उसे पलटते देर नहीं लगती। मन मनुष्यको नीचेकी ओर ले जाता है। यदि उसे सदाचारी और सद्गुणी बनानेका उद्योग न किया जाये तो वह आपोआप दुर्गुणी और दुराचारी बन सकता है। स्त्रियोंको नियममें रखनेके लिये उन्हें सर्वदा सत्यनीति और धर्म्मका उपदेश देते रहना चाहिये। सद्ग्रन्थों-का पठन, धर्म्मशास्त्रोंका श्रवण और सत्सङ्ग-यह तीन बातें रहनेसे स्त्रियां पतित नहीं हो सकती। उनकी रक्षाका यही सर्व श्रेष्ठ और सरल उपाय है।

भर्तृहरि नीति, शृंगार और वैराग्यमें पूर्णताको पहुंच चुके थे। इन तीनों विषयके वह ज्ञाता, अनुभवी और प्रवीण पण्डित थे। उन्होंने तद्विषयक तीन शतकोंकी रचना की है। उनके शतक भाव और भाषामें अद्वितीय हैं। उनकी सरलता उत्तमता और गम्भीरता वही समझ सकते हैं, जो उन्हें जानते हैं। उनमें अनुपम उपदेश, हृदय स्पर्शी बातें और मार्मिक वर्णन कूट कूटकर भरा है। भर्तृहरिका यह काव्य उच्च विचारोंसे परिपूर्ण है। उनकी रचना और वर्णन शैली सरल है। उनमें किसी प्रकारकी खींचतान नहीं की गयी। संस्कृत भाषामें अनेकानेक ग्रन्थ हैं, परन्तु शतकोंके समान सरल और विचार पूर्ण बहुत कम हैं। उन्हें जितनाही पढ़िये, उतनाही अधिक आनन्द प्राप्त होता है। बारम्बार पढनेपर भी जी नहीं भरता और फिर पढ़नेकी इच्छा होती है।

जिस पुरुषका संसारमें जी न लगता हो, उसे शृंगारमें प्रवृत्त करनेके लिये भर्तृहरिका शृंगारशतक पर्य्याप्त है। सुभाषित वक्ताके लिये नीतिशतक और वैराग्यवान मनुष्यके लिये वैराग्यशतक सर्वस्व है। शतकोंके अतिरिक्त वाक्य प्रदीप नामक व्याकरण विज्ञानका एक अमूल्य ग्रन्थ भी उन्होंने रचा है। पाणिनि व्याकरणके पातञ्जलिकृत महाभाष्यपर उनकी कारिका है। भट्टीकाव्य भी उनके नामसे प्रसिद्ध है, परन्तु उसके कर्त्ताके विषयमें मतभेद है। कुछ भी हो भर्तृहरि विद्वान, कवि और ज्ञानी पुरुष थे। पृथ्वीपति बहुधा मूढ़ और लोलुप होते हैं।

भर्तृहरिकी विद्वता और निस्पृहता देखकर अवाक् रह जाना पड़ता है। अमरफल खानेके कारण वे अमर बतलाये जाते हैं। इसमें सन्देह हो सकता है, परन्तु यह तो स्वीकार करना ही होगा, कि उनका नाम अमर है।

वीर विक्रमादित्य।

पर-दुःख-भञ्जन वीर विक्रमादित्य मालव पति गन्धर्वसेनके पुत्र थे। भर्तृहरिके छोटे भाई थे और उन्हींके संरक्षणमें प्रतिपालित हुए थे। चन्द्राचार्य्यने उन्हें भी भर्तृहरिके समान ही उच्चकोटिकी शिक्षा दी थी। उज्जयनीमें जितने वीर और विद्वान राजा हुए, उन सबोंमें विक्रमादित्य श्रेष्ठ कहे जा सकते हैं। वे विद्वान, श्रेष्ठवक्ता, महाशूर वीर, पराक्रमी, नीतिज्ञ, धर्म्मनिष्ठ, सत्यासत्यके परीक्षक, सूक्ष्म भेदोंके ज्ञाता, बुद्धिमान, विवेकी, साहसी, उत्साही और परोपकारी थे।

भर्तृहरि अवस्थामें विक्रमादित्यसे बड़े थे, अतः वेही राज्यके स्वामी और शासक थे। विक्रमादित्य उन्हें राजकाजमें बड़ी सहायता पहुंचाते थे और प्रसङ्गवश सलाह भी दिया करते थे। भर्तृहरि सदा उनसे प्रसन्न और सन्तुष्ट रहते थे। उन्होंने उन्हें बहुतसा अधिकार भी दे रक्खा था। विक्रम प्रत्येक कार्य्य योग्यताके साथ करते थे। चोर और दुराचारियोंके तो वह शत्रु थे। उन्हें वे खोज खोजकर दण्ड देते थे। उनके

कार्य्योंसे प्रजाको बड़ा लाभ होता था। सभी उन्हें प्रेम और आदरकी दृष्टिसे देखते थे।

विक्रमादित्यका प्रारम्भिक जीवनकाल इसी प्रकार आनन्दसे व्यतीत हुआ। कुछ दिनोंके बाद भर्तृहरिको प्रिय प्रजा पिङ्गलाने दोषारोपणकर उन्हें मिथ्या कलङ्क लगाया। अन्तमें (देखो भर्तृहरि चरित्र) उसीके कारण उन्हें निर्वासित होना पड़ा। भर्तृहरिकी अनुचित आज्ञा शिरोधार्य कर उन्होंने मालव भूमित्याग दी।

मालवभूमिका त्यागकर वे चारों ओर भ्रमण करने लगे। कुछ ही दिनोंके बाद पिङ्गलाकी दुश्चरित्रतासे क्षुब्ध हो भर्तृहरिने राजपाट छोड़ दिया। लोगोंके समझाने बुझाने पर भी वे उज्जैनमें न रहे और अरण्यमें जाकर तप करने लगे। मालव भूमिका कोइ स्वामी न रहा। वैतालने बड़ा उत्पात मचाया। मन्त्रियोंने विक्रमकी खोज करायी। वे उन दिनों गुजरातमें थे। वहांसे आकर उन्होंने शासन भार ग्रहण किया और राज्यमें शान्ति स्थापित की।

वीर वैतालने बड़ा उत्पात मचा रक्खा था। विक्रम उसका सब हाल सुन चुके थे। विक्रमने युक्तिसे काम लेना स्थिर किया। उसे भोजनादिक दे, वह बहुत दिनों तक सन्तुष्ट करते रहे अन्तमें वह उनका सहायक बन गया और उन्हें समय समय पर सहायता देने लगा।

इसके बाद विक्रमने यथाविधि अपना अभिषेक कराया। अभिषेकके बाद कई विद्रोहियोंको पराजित कर अपने बाहु

वलका परिचय दिया। इतनाही कर वह बैठ न रहे उन्होंने उत्कल, वङ्ग कच्छ और गुजरात प्रभृति देशोंको अधिकृत कर अपने राज्यका विस्तार बढ़ाया। उन दिनों भारतमें शक जातिका प्रावल्य बढ़ता जा रहा था। शक लोग मध्य एशियाके निवासी थे। भारत उनसे आक्रान्त हो रहा था। एकके बाद एक प्रदेशोंपर वे अधिकार जमाते जा रहे थे। उत्तरीय भारतमें प्रायः उन्हीका अधिकार था। दिल्ली उनकी राजधानी हो रही थी। विक्रमादित्यने उन लोगोंकी गति रोकनेमें बड़ा काम किया। केवल उनकी गति ही नहीं रोकी, बल्कि उन्हें अपने बाहु-बलसे भारत वर्षसे मार भगाया। दिल्लीके पश्चिममें विक्रमादित्यका शक लोगोंसे एक महा संग्राम हुआ। उसमें उन्होंने उनकी शक्तिका सर्वनाश कर दिया। इस विजयसे विक्रमके गौरवमें बड़ी वृद्धि हुई। उन्होंने इसी विजयके हर्षमें अपना संवत् चलाया, जो विक्रम संवतके नामसे विख्यात है और समस्त भारतमें व्यवहृत होता है। हमारा दीपावली त्योहार सम्भवतः उसी विजयका वार्षिकोत्सव है।

विक्रमादित्य केवल अपनी वीरताहीके लिये नहीं विख्यात हैं। वीरताके साथही उनमें विद्वता और प्रेम भी था। उन्होंने देशमें संस्कृत भाषा और अन्यान्य विद्याओंका जोरोंके साथ प्रचार किया। अनेक विद्वान, कवि और तत्ववेत्ताओंको आश्रय-प्रदान कर उन्होंने उन्हें काव्य रचना और ग्रन्थ प्रणयनके लिये उत्साहित किया।

ज्योतिर्विद्या भरण नामक ग्रन्थ देखनेसे ज्ञात होता है, कि ८०० छोटे छोटे राजा विक्रमके अधीन थे और इन्हें कर देते थे। उनकी राज सभामें १६ वाचाल पण्डित, १० ज्योतिषी ६ वैद्य और १६ वेदपाठी विद्वान थे। उनमें भी धन्वन्तरि, क्षपणाक, अमरसिंह,वैताल भट्ट, घट खर्पर, कालिदास, वराहमिहिर वररूचि और शङ्कु यह मुख्य थे और वे सभाके नवरत्न कहे जाते थे। उनकी सेनामें १० करोड़ अश्वारोही ३ करोड़ पदचर, २४३०० हाथी और नौका सैन्यमें ४ लाख सैनिक थे। इसी प्रबल सेनासे ९५ शक सरदारोंको पराजित कर उन्होंने शकारि नाम धारण किया था।

विक्रमादित्यके राज्यमें प्रजा इतनी सुखी हुई कि सुशासनमें भी वे अद्वितीय हो गये। देशको शत्रुओंसे बचाने, विद्या-प्रचार करने, विद्वानोंको आश्रय देने और राज्यकी व्यावस्था करनेके कारण उन्होंने बड़ी ख्याति प्राप्तकी। लोग उनके राज्यकी राम राज्यसे तुलना करने लगे और देशान्तरोंमें भी उनका नाम हो गया।

विक्रम निरन्तर प्रजाहितमें प्रवृत्त रहते थे। उनके राज्यमें कोई दीन और दुखी न रहने पाता था। किसीपर अत्याचार न होता था। सभी उनके व्यवहारसे सन्तुष्ट रहते थे। वे स्वयं रात्रिको वेश बदल कर नगरमें घूमते और दुराचारियोंको दण्ड देते थे। कहीं अन्याय और अनीतिका नाम भी न सुनाई देता था। राज-कर्म्मचारी प्रजाको कष्ट न दे सकते थे। कोई रिश्वत
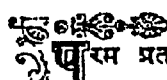
न ले सकता था। प्रजा सब तरहसे सुखी थी। प्रजाका कष्ट दूर करनेके लिये विक्रम स्वयं बड़ा कष्ट उठाते थे। कोई दीन और दुखी दिखाई देता तो वे जिस तरह होता, उसका कष्ट दूर करते। यहीकारण था, कि लोग उन्हें पर दुःख-भञ्जन कहते थे।

प्रजाको सन्तुष्ट करनेसे राजाका जितना नाम होता है, उतना और किसी बातसे नहीं होता। विक्रम यह समझते थे और तदनुसार आचरण भी करते थे। उनका सुयश दिग्दिगन्तमें व्याप्त हो रहा था। रोम देशके आगस्तस सीज़र नामक राजासे उनकी मित्रता थी। उन्होंने ग्रीक भाषामें एक पत्र लिख कर अपने दूतद्वारा उनके पास भेजा था। दक्षिण भारतके लोग उन दिनों उस देशके साथ व्यापार करते थे। विक्रमका इसी प्रकार अन्य देशोंसे भी सम्बन्ध था और युरोपके बड़े बड़े राजे महाराजे उनके मित्र थे।

उन दिनों भारतमें बौद्ध धर्म्मका प्राबल्य था, परन्तु विक्रमादित्य शैव मतावलम्बी थे उनकी कोई ऐसी विश्वस्त जीवनी नहीं मिलती, जिससे विशेष हाल जाना जा सके। आज दो हजार वर्ष व्यतीत होने पर भी उनकी कीर्ति नष्ट नहीं हुई, इसीसे उनके गौरवका अनुमान किया जा सकता है। आज भी उत्तरीय भारतके प्रत्येक आर्य्यगृहमें उनका नाम बड़े आदरके साथ स्मरण किया जाता है और बच्चोंको उनके पराक्रमकी कथायें बड़े अनुरागसे सुनाई जाती हैं।

राजा भोज

परम प्रतापी अवन्तिराज भोज विक्रमादित्यके ही वंशज थे। उनके पिताका नाम सिन्धुल और माताकी नाम पद्मावती था। उन दिनों मालवदेशकी धारानगरी राजधानी थी। भोजका जन्म सिन्धुलकी वृद्धावस्थामें हुआ था। सिन्धुलके मुञ्ज नामक एक छोटा भाई था। जब भोजकी अवस्था पांचही वर्ष की थी, तब सिन्धुलका शरीरान्त हुआ। मृत्युके समय सिन्धुलने विचार किया, कि भोजको राज्य देनेसे मुञ्ज असन्तुष्ट हो जायगा और सम्भव है, कि वह उसे मार भी डाले, अतः मुञ्जकोही राज्य देना चाहिये और भोजको उसके संरक्षणमें रखना चाहिये। तदनुसार उन्होंने व्यवस्था भी कर दी। भोजको सौंपकर उन्होंने मुञ्जसे कहा—"इसे अपना ही पुत्र समझना। मेरा उत्तराधिकारी यही है। मेरे बाद इसीका अभिषेक होना चाहिये। परन्तु यह अभी अबोध बालक है। जब तक यह बड़ा न हो, तब तक तुम राज्य करो। जब बड़ा हो तब राज्य इसे सौंप देना। मुझे विश्वास है, कि तुम मेरी इस अन्तिम आज्ञाका पालन करोगे।"

यहकहा सिन्धुलने प्राण त्याग दिये। उनके बाद

सिंहासनारूढ़ हो मुञ्ज राज्य शासन करने लगा। उसके जयन्त नामक एक पुत्र था। भोज उसीके साथ रहने और विद्याभ्यास करने लगे। मुञ्जके हृदयमें अबतक किसी प्रकारका दुर्भाव न उत्पन्न हुआ था। जयन्तके समान ही वह भोजका प्रति पालन करता था। भोज बड़े मेधावी थे। अपनी प्रखर बुद्धिके कारण वे कुछही दिनोंमें अनेक शास्त्रोंके ज्ञाता हो गये। वे बड़े होनहार दिखाई देते थे। उनकी बुद्धि और चञ्चलता देख कर लोग चकित हो जाते थे। समस्त जनता उन्हें प्रेम और आदरकी दृष्टिसे देखती थी।

एक दिन मुञ्जकी राज सभामें एक ज्योतिषी उपस्थित हुआ। मुञ्जने उसे भोजकी जन्मपत्रिका दे उनका भविष्य पूछा। ज्योतिषीने ग्रह गणना कर कहा—"राजन्! मैं तो एक साधारण ब्राह्मण हूं। भोजके सौभाग्यका स्वयं विधाता भी वर्णन नहीं कर सकते। यह परम प्रतापी और यशस्वी होंगे। ५५ वर्ष ७ मास और तीन दिन दक्षिण सहित गौड़ देशमें राज्य करेंगे।"

मुञ्जको यह सुनकर तत्काल बड़ा हर्ष हुआ। उसने ज्योतिषीको सन्तुष्ट कर विदा कर दिया। कुछ दिनोंके बाद उस की मति पलट गयी। भोज अब कुछही दिनोंमें राज्य ले लेगा—यह जानकर वह चिन्तित हो उठा। उसके हृदयमें राज्यका लोभ समा गया। ज्यों ज्यों समय बीतता गया, त्यों त्यों उसकी चिन्ता बढ़ती गयी। भोजको देखतेही वह सूख जाता था। उनकी विद्वत्ता और वीरता देखकर हर्षके बदले परिताप

होने लगा। अन्तमें उसने भोजको मरवा डालनेका निश्चय किया। उसने वत्सराजको यह कार्य्य करनेकी आज्ञा दी।

वत्सराज मुञ्जका विश्वासपात्र मित्र था। उसने मुञ्जको यह कार्य्य न करनेके लिये बहुत समझाया, परन्तु जब उसने न माना तब वह भोजको एक एकान्त वनमें लिवा ले गया। वहां उसने भोजको मुञ्जकी आज्ञा कह सुनायी। भोजकी अवस्था तो उस समय अधिक न थी, परन्तु वे समझदार अवश्य थे। मुञ्जकी आज्ञा सुनकर वे विचलित न हुए। उन्होंने एक श्लोक लिखा और वत्सराजको देते हुए कहा,—"यह मुञ्जको दे देना। आप परवश हैं, अतः खेद न करें। जो दैवकी इच्छा होती है, वही होता है। मैं मरनेके लिये तय्यार हूं। आप अपना कर्त्तव्य पालन करिये।"

वत्सराजने श्लोक लेकर खलीतेमें रख लिया। वह निरा हृदयहीन न था। उसे भोजपर दया आ गयी। उनके निर्भीक शब्दोंने उसके हृदयमें प्रेम उत्पन्न कर दिया। उनका निर्दोष मुख देखकर उसका हृदय द्रवित हो उठा उसके हाथसे तलवार छूट पड़ी। भोजको उसने किसी सुरक्षित स्थानमें छिपा दिया, और मुञ्जको दिखानेके लिये एक हरिणकी आंखें निकाल लीं।

वत्सराज विश्वासपात्र मनुष्य था अतः मुञ्जको किसी प्रकारका सन्देह न हुआ। कुछ दिनोंके बाद एक दिन उसने वत्सराजसे पूछा, कि भोजने मरते समय कुछ कहा तो न था?

वत्सराज मुञ्जको वह श्लोक देना भूल गया था। आज यह प्रश्न सुनकर उसे उसका स्मरण हो आया। उसने कहा— हां, यह लीजिये, भोजने यह श्लोक लिख दिया था।
मुञ्जने बड़ी उत्कण्ठाके साथ वह कागज वत्सराजके हाथ से ले लिया उसमें निम्न लिखित श्लोक लिखा हुआ था।

"मान्धाता च महीपतिः कृतयुगालङ्कार भूतोगतः।
सेतुर्येन महोदधौ विरचितःकासौ दृशा स्यान्तकः॥
अन्येचापि युधिष्ठिर प्रभृतियो याताद्वियं भूपते।
नैकेनापिसमङ्गता वसुमती मुंजत्वया यास्यति॥"

अर्थात्, सत्ययुगमें परमप्रतापी मान्धाता पृथ्वीपति थे परन्तु वे न रहे। त्रेतामें समुद्रपर सेतु बनाया, वे रामचन्द्र भी परलोक गामी हुए। द्वापरमें युधिष्ठिर थे, परन्तु वे भी गत हो गये। हे मुंज! बड़े बड़े राजा चले गये, पृथ्वी किसीके साथ न गयी, परन्तु आपके साथ अवश्य जायगी।

मुञ्जको यह श्लोक पढ़कर बड़ा दुःख हुआ। वह अपने कियेपर पश्चात्ताप करने लगा। उसे सिन्धुलकी बात याद आ गयी। वह रोने और शिर पटकने लगा। अन्तमें उसे इतना अधिक परिताप हुआ, कि वह अग्नि प्रवेश कर अपने पापका प्रायश्चित करनेको तय्यार हुआ।
वत्सराजने उसे आश्वासन दे आत्मघात करनेसे रोका और अवसर देखकर भोजको उसके सम्मुख उपस्थित किया। भोज को देखतेही वह उन्हें भेंट पड़ा और अपना परिताप प्रकट करने

लगा। भोजने सारा दोष देयका बतलाया और सान्त्वना दे उसे शान्त किया। मुंज उसी दिन उन्हें राज्य सौंपकर पत्नी सहित तपस्या करने चला गया।

भोज सिंहासनारूढ़ हो न्याय नीति पूर्वक प्रजा पालन करने लगे। वे विद्वान, शूरवीर, और उदार थे। उनका प्रताप देख उनके शत्रु कांप उठे। किसीकी विद्रोह किंवा युद्ध करनेकी हिम्मत न पड़ी। भोजको भी अपनी वीरता दिखानेका अवसर न मिला। वे लोगोंको अपनी विद्वता और विद्या प्रेमका परिचय देने लगे। उनकी राज-सभामें जो विद्वान जाता, उसकी मनोंकामना अवश्य पूर्ण होती। वे कवि और पण्डितोंको मुक्त हस्तसे धन प्रदान करते थे। उनके संसर्गमें आकर अनेक विद्वान् धन और कीर्ति उपार्जन करने लगे। रातदिन उनके यहां इस विषयकी चर्चा हुआ करती थी। साधारण मनुष्य भी उनकी संगतमें पड़कर कवि बन जाता था। ज्यों ज्यों समय बीतता गया त्यों त्यों भोजदेवकी कीर्ति वृद्धिगत होती गयी। उनकी उदारता और काव्यप्रियताका हाल सुन कर, दूर दूरके कवि राजसभामें उपस्थित होने लगे। भोज आदर सत्कार कर उनकी इच्छा पूर्ण करते। कोई खाली हाथ या निराश होकर न लौटता। कुछही दिनोंमें उनके इन गुणोंके कारण, सर्वत्र उनका गुणगान होने लगा।

कहते हैं कि धारा नगरीमें उस समय एक भी मनुष्य मूर्ख न था। भोज प्रबन्धमें अनेक कवि और पण्डितोंके नाम दृष्टि-

गोचर होते हैं। उसमें उनकी कविता और उसपर दिये हुए पु-रस्कार अङ्कित हैं। उसके उल्लेखानुसार भोजकी राज-सभामें कालीदास (द्वितीय) भवभूति, वल्लाल मिश्र, माघ मल्लिनाथ, वररुचि, सुवन्धु, बाणभट्ट, मयूर, रामदेव, हरिवंश, शङ्कर, दण्डी, कपूर, विनायक, मदन, विद्याविनोद, कोकिल, तारेन्द्र, प्रभृति, कविशेखर, रामेश्वर, लेकदेव, भास्कर, और शाण्डिल्य प्रभृति १४०० विख्यात पण्डित और कवि थे।

बुद्धिसागर नामक एक पुराने मन्त्रीको मुंजने निकाल दिया था। वह अनुभवी और विद्वान था, अतः भोजने पुनः उसे उस के पदपर नियुक्त किया था। फणीन्द्र नामक उनके गुरुने उन्हें राजनीतिका उपदेश दिया था। अपने शासनके तीसरे या चौथे वर्ष एक दिन उन्होंने निम्न लिखित आज्ञा पत्र प्रकाशित किया था।

(१) कल एक महती सभा होगी। उसमें समस्त पदाधिकारी उपस्थित हों (२) प्रत्येक अधिकारीसे शास्त्रानुसार कई प्रश्न किये जायँगे। यदि वह उनका सन्तोष प्रद उत्तर न दे सकेगा, यदि यह सिद्ध हो जायगा की इसे अपने कर्त्तव्योंका ज्ञान ही नहीं है, तो वह अयोग्य समझा जायेगा। और पदच्युत किया जायगा (३) राज्यमें जितने पण्डित हों वे उपस्थित होनेकी कृपा करें। उन्हें योग्यतानुसार स्थान प्रदान किये जायेंगे (४) मेरे नगरमें जो मूर्ख हों वे सब काम छोड़ कर पढ़ना लिखना सीख लें। उन्हें एक वर्षका समय

दिया जाता है। इतने समयमें यदि वे ऐसा न करेंगे तो नगरसे निकाल दिये जायंगे और बाहरसे आये हुए विद्वान उनके घरोंमें बसाये जायेंगे।

भोजकी इन आज्ञाओंका बड़ा प्रभाव पड़ा। जिनमें कार्य्य करनेकी योग्यता थी, वेही पदाधिकारी रह सके और जो मूर्ख थे, सब निष्कासन भयसे पढ़ लिख कर विद्वान हो गये। उन्होंने एक दिन जिस शालामें शिक्षा प्राप्त की थी, उसका निरीक्षण किया। विचरपति नामक उनका एक सहपाठी बड़ा विद्वान् था। उन्होंने उसे प्रधानाध्यापक नियत किया और जीविकाके लिये उसे एक ग्राम प्रदान किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने समस्त विद्यार्थियोंको निःशुल्क शिक्षा देनेका प्रबन्ध किया और उनके भोजन वस्त्रादिका व्यय भी राजकोषसे देना स्थिर किया।

यह सब देख कर मणिमिश्र नामक विद्वानको बड़ा आनन्द हुआ। उन्होंने राज-सभामें उपस्थित हो भोजकी बड़ी प्रशंसा की और कहा—"अभी आपको सिंहासनारूढ़ हुए अधिक समय नहीं हुआ, परन्तु इतनेही दिनोंमें युगान्तर हो गया है। नगरमें पढ़ने लिखनेके अतिरिक्त और कोई चर्चाही नहीं होती। आपकी अवस्था केवल पन्द्रह वर्षकी है, परन्तु इससे क्या? प्रतापी पुरुषोंका स्वभावही प्रतापका कारण होता है, वय पर प्रताप निर्भर नहीं करता।"

भोजने यह सुनकर कहा—"मेरी इच्छा है, कि मेरे नगरमें

कोई मूर्ख न रहे। सब लोग पढ़े लिखे और विद्वान हों। खोजने पर भी कहीं मूर्ख न मिले।"

इन सब बातोंसे भोजका उज्ज्वल विद्या-प्रेम प्रकट होता है वे जैसे विद्वान थे, वैसेही आत्मज्ञानी भी थे। उनकी दान वीरता देखकर मन्त्रीको बड़ी चिन्ता हुई। उसने उन्हें साव-धान करनेके लिये उनकी बैठकके सामने दीवार पर एक श्लोक का पद लिख दिया—"आपदार्थे धनं रक्षेत्"—आपत्तिकालके लिये धनकी रक्षा करनी चाहिये।

भोज उसे पढ़कर समझ गये, कि यह मेरे किसी हितैषीने मुझे सावधान करनेको लिखा है। उन्होंने उसके पासही उसका उत्तर लिख दिया—"श्रीमतां कुत आपदः"—श्रीमानों पर आपत्ति कैसी?

दूसरे दिन भोजराजने आकर देखा तो वहां यह लिखा था— "कदाचिच्चलिता लक्ष्मी"—कभी लक्ष्मी चलित हो गयी शायद दुर्भाग्यने आघेरा तब? भोजने इसके सामने लिख दिया— "सञ्चितोपि विनश्यति"—तब सञ्चय किया हुआ धन भी नष्ट हो जाता है।

अर्थात् उन्होंने कहा, कि धन सञ्चय मेरे लिये व्यर्थ है। लक्ष्मी चञ्चल है। वह एक क्षण आती और दूसरे क्षण चली जाती है। जब वह रुष्ट हो जाती है, तब सञ्चित धन भी नष्ट हो जाता है, अतः उसका सदुपयोग करनाही श्रेयस्कर है।

मन्त्रीको उत्तर पढ़ कर भोजके मन्तव्योंका पता लग गया।

उसने फिर कभी बाधा देनेका विचार भी न किया। उसे ज्ञात हो गया, कि भोज जो करते है, वह समझ बूझ करही करते है।

कालिदास पर भोजका बड़ा प्रेम था। राज सभामें वह सर्व श्रेष्ठ समझे जाते थे और उनका बड़ा सम्मान होता था। कुछ प्रपञ्चियोंने प्रपञ्च रचना कर उन दोनोंमें मनोमालिन्य करा दिया। कालिदासने असन्तुष्ट हो राज-सभा त्याग दी। वह अपने जन्म स्थानको चले गये और वहीं कालयापन करने लगे।

भोजको कालिदासका वियोग असह्य प्रतीत होने लगा। वे वेश बदल कर उसके पास गये। कालिदास उन्हें न पहचान सके। भोजने कापालिक साधुका वेश धारण किया था। बात चीत होने पर भोजने धारानगरीको अपना निवासस्थान बतलाया। कालिदासने उत्कण्ठित हो भोजका कुशल समाचार पूछा। भोजने उन्हें बतलाया, कि उनका शरीरान्त हो गया। यह दुःखद समाचार सुन कर कालिदास व्याकुल हो उठे। उनके नेत्रोंसे अश्रुधारा बह चली! वे कहने लगेः—

अद्यधारा निराधारा निरालम्बा सरस्वती।
पण्डिताः खण्डिताः सर्वे भोजराजे दिवंगते॥

अर्थात् भोजके परलोक वाससे धारानगरी निराधार हो गयी। पण्डित खण्डित हो गये और सरस्वतीका अवलम्ब जाता रहा।

कालिदासकी व्याकुलता भोजराजसे अधिक समय तक न देखी गयी। उन्होंने शीघ्रही अपना परिचय दिया। कालि-

दास प्रसन्न हो उन्हें भेंट पड़े। उन्होंने अपना पूर्वोक्त श्लोक उसी क्षण बदल दिया। वह बोले:—

अद्यधारा सदाधारा, सदालम्बा सरस्वती।
पण्डिताः मण्डिताः सर्व, भोजराजे भुवंगते॥

अर्थात् भोजराजके अस्तित्वसे धारानगरी आधार युक्त हो गयी। पण्डित मण्डित हो गये और सरस्वतीको अच्छा अवलम्ब मिल गया।

इसके बाद भोजराज उन्हें अपने साथ धारानगरी लिवा लाये। वहां वे अपनी उत्कृष्ट रचनाओं द्वारा उनका मनोरञ्जन करते रहे। अन्तमें भारतका यह अन्तिम विद्या प्रेमी आर्य्य नृपति ई० स० १०८२ में सद्‌गतिको प्राप्त हुआ। उनके बाद न कोई ऐसा पृथ्वी पति हुआ न होनेकी आशाही की जा सकती है। वे स्वयं विद्वान थे और विद्वानोंको आश्रय भी देते थे। संस्कृत भाषाकी उन्होंने जितनी उन्नतिकी उतनी शायदही और किसीने की हो। संस्कृतके अच्छे अच्छे काव्य और साहित्य ग्रन्थ उन्हींके समयमें लिखे गये। उनके नगरका एक साधारण मनुष्य भी अपनी पद्य रचना द्वारा लोगोंको चकित कर सकता था। भोजकी उदारता और काव्य प्रियताने चारों ओर कवि और विद्वान उत्पन्न कर दिये। उन्होंने पण्डितोंको आश्रय और सहायता देनेसे कभी मुंह नहीं मोड़ा। एक एक श्लोक पर उन्होंने लक्ष लक्ष रुपये पुरस्कार दे दिये हैं। लक्ष्मी और सरस्वतीका ऐक्य उन्हींके समयमें देखा गया। विद्वानोंको

अपनी जीविकाके लिये कोई चिन्ता न करनी पड़ती थी। भोज-राजका धनभण्डार सर्वदा उनके लिये खुला रहता था। विद्वा-नोंको आश्रय देकर जो कीर्ति भोजने लाभ की है, वह और किसीको भी नसीब नहीं हुई।

भोजराजने भोजचम्पु और भोज प्रबन्ध इन दो ग्रन्थोंके कई प्रकरण लिखे थे। बादको उन्हें कालिदासने पूर्ण किया था। उन्होंने योग सूत्र पर व्याख्या की थी। काव्य और नाटकोंके सम्बन्धमें पहला ग्रन्थ उन्होंने लिखा था। उसे सरस्वती कण्ठा भरण कहते हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने अमरटीका, राजवार्त्ति क (राजमार्त्तण्ड) और चारुचार्य नामक ग्रन्थोंकी रचना की थी। मुञ्ज प्रतिदेशव्यवस्था नामक मुञ्ज विरचित ग्रन्थको संशो-धित कर उन्होंने "भोजप्रतिदेशव्यवस्था" के नामसे प्रकाशित किया था। वे शिल्प शास्त्रके भी अच्छे ज्ञाता थे और तद्-विषयक उन्होंने एक अच्छे ग्रन्थकी रचना की थी। उसमें उन्होंने घड़िया, काष्ठके घोड़े, वायुयान, जलयन्त्र प्रभृति अनेक यन्त्रोंकी रचना विधि लिखी थी और उनके चक्रोंको यथा-स्थान प्रयुक्त करनेकी बातें विस्तार पूर्वक बतलाई थीं। संसारमें जब तक संस्कृत साहित्य विद्यमान रहेगा, तब तक उनका नाम अमर रहेगा। धन्य है अवन्ति राज भोजको! उनके समान विद्याप्रेमी न हुआ है न होगा।

ग्रन्थ प्रेमियोंको

शुभ सूचना ।

इस ग्रन्थका दूसरा भाग भी छपकर तय्यार है। इस भागमें भगवान् बुद्धदेव, स्वामी शङ्कराचार्य्य, रामानुज, वल्लभाचार्य्य महावीर स्वामी, चैतन्य, नानक, कबीर, स्वामीदयानन्द सरस्वती, राजा राममोहन राय प्रभृति महान् धर्म्म प्रवर्त्तक, मच्छेन्द्रनाथ गोरखनाथ, जड़भरत प्रभृति योगेश्वर, कालिदास, माघ, भवभूति, चन्द, सूर, तुलसी प्रभृति कवि, प्रहलाद, और नरसिंह मेहता प्रभृत ईश्वरभक्त, भास्कराचार्य्य, वराहमिहिर प्रभृति ज्योतिर्विद, चाणक्य प्रभृति राजनीतिज्ञ और बीरबल तथा तानसेन जैसे नर रत्नोंकी करीब ४० जीवनियां बड़ी सरल और सुबोध भाषामें लिखी गयी हैं। ग्रन्थ प्रेमियोंको तथा पुस्तकालयोंको यह ग्रन्थ शीघ्र मगांकर पढ़ना और संग्रह करना चाहिये इस जोड़का ग्रन्थ आज तक हिन्दी भाषामें नहीं छपा। मुल्य २॥) रेशमी जिल्द ३।)

मिलनेका पता—

भारत के महापुरुष
D. Barua